साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२२ अंक-२ ❖ पृष्ठ ९२ | भाद्रपद-आश्विन, संवत्-२०७३ | सितंबर २०१६

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२

फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय

राजभाषा-राष्ट्रभाषा हिंदी ४

प्रतिस्मृति

हिंदीमय जीवन/ *विद्यानिवास मिश्र* ५

आलेख

राजभाषा की लड़ाई : बिना खड्ग बिना ढाल/ *बुद्धिनाथ मिश्र* ८

हिंदी में समाहित अध्यात्म, ज्ञान और विज्ञान/ *मृदुल कीर्ति* १३

हिंदी : विश्वभाषा की ओर अग्रसर/ *बद्री नारायण तिवारी* २०

डेढ़ दशक बाद भी कितने लोग जानते हैं यूनिकोड को/ *बालेंदु शर्मा दाधीच* २९

राजा लक्ष्मण सिंह'''/ *कुश चतुर्वेदी* ४०

छायावादी कविता का प्रस्थान बिंदु 'इंदु'/ *कुमुद शर्मा* ६२

कहानी

कम्मो/ *आचार्य मायाराम पतंग* १०

सूरज/ *प्रमोद कुमार अग्रवाल* १८

गृहस्थी/ *राजेंद्र परदेसी* २६

चाचीजी/ *माया मिश्र* ३५

शादीनामा/ *रहिला रईस* ५१

वह अजनबी/ *सरिता कुमारी* ६६

लघुकथा

पत्थर और पानी/ *ओमप्रकाश बजाज* ९

तोड़ियाँ/ *सेवा सदन प्रसाद* २८

संवेदनाएँ मर रहीं/ *सेवा सदन प्रसाद* ४२

डर/ *सेवा सदन प्रसाद* ६१

सरल स्वभाव/ *ओमप्रकाश बजाज* ७२

भ्रष्टाचार/ *सीताराम गुप्ता* ८३

कविता

नीम खड़ा रोता है/ *शरद नारायण खरे* १५

आत्म-संवाद के दोहे/ *विनय मिश्र* २५

प्रकृति का नाद/ *जय प्रकाश पांडे* ३७

सत्यं शिवं सुंदरम्/ *रूपनारायण काबरा* ५७

मनवा आठों याम/ *कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'* ६५

हिंद देश की भाषा हिंदी/ *शिवनंदन कपूर* ७३

स्मरण

डॉ. हरदयाल : विनम्र विद्वत्ता/ *हेमंत कुकरेती* १६

मेरे पिता का संगीत प्रेम/ *शोभा शुक्ला* ५८

व्यंग्य

करतब जमूरों के/ *अश्विनी कुमार दुबे* ३२

सास की अटकी साँस/ *सुनीता शानू* ८२

राम झरोखे बैठ के

बेहतर श्वान या इनसान/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३८

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

अब दुःख नहीं है/ *वाई. गोपाल कृष्णन* ५६

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

एक माँ की कहानी/ *हंस क्रिचन ऐंडरसन* ७०

लोक-साहित्य

लोकगीतों में पति-पत्नी प्रेम/ *अरविंद मिश्र* ७४

साँझी पर्व संजा सहेलड़ी/ *सुधा तैलंग* ८४

यात्रा-संस्मरण

अथ श्रीगोवर्धन तीर्थ-कथा/ *प्रेमपाल शर्मा* ७६

बाल-संसार

पापा बोलो तो!/ *संजीव ठाकुर* ८५

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८६

वर्ग-पहेली ८७

साहित्यिक गतिविधियाँ ८८

संयुक्त संपादकीय

राजभाषा-राष्ट्रभाषा हिंदी

'हिंदी राजभाषा है, हिंदी राष्ट्रभाषा है, हिंदी विश्वभाषा है'; जिन लोगों के रोजगार या सरोकार हिंदी से जुड़े हैं, वे वैचारिक द्वंद्व के बाद सरल ढंग से इन निष्कर्षों तक पहुँचते हैं या उनसे असहमत होते हैं। साहित्यिक और महादेश की संपर्क भाषा के रूप में या किसी भी दृष्टिकोण से देखें तो असल में हिंदी जनभाषा है। भारतीय ही नहीं, दुनिया की तमाम भाषाओं को अपनी शब्दावली से समृद्ध करती हिंदी स्वाभाविक तौर पर इतनी उदार है कि बेहिचक इन भाषाओं से काफी कुछ ग्रहण भी करती है। इससे शब्दार्थ के धरातल पर हिंदी अधिक सक्षम है तथा आसानी से अपने क्षेत्र का विस्तार करती है।

कुछ लोग यहाँ तक कहते हैं कि इसे देवनागरी की बजाय रोमन लिपि में लिखा जाना चाहिए! उनका तर्क है कि रोमन आसान लिपि है! आसान या कठिन की बजाय यह देखें कि क्या कालांतर में इससे हिंदी एक भाषा के रूप में बची भी रहेगी? भाषिक इतिहास ने हमें यह समझ दी है कि जिन भाषाओं को मूल लिपियों की जगह दूसरी लिपि में लिखा गया; वे अंततः नष्ट हो गईं, लुप्त हो गईं! उत्तर-औपनिवेशिक मानसिकता के अवशेष अभी प्रभावी हैं—बड़ी चालाकी से वे ऐसे 'बौद्धिक परामर्श' देते रहते हैं। देवनागरी जैसी वैज्ञानिक लिपि को बदलने की आवश्यकता नहीं है। हिंदी को लगातार समसामयिक बनाते रहने की जरूरत है। 'हिंग्लिश' बनाने से भी उसे बचाना होगा। हिंदी के रास्ते में यह भी एक बाधा है, लेकिन अपनी जीवटता के चलते हिंदी इससे भी मुश्किल राह के रोड़े आसानी से हटाती रही है।

हिंदी की वर्तमान दशा और दिशा से पता चलता है कि अंग्रेजीदां भी मानने लगे हैं कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा होने का सामर्थ्य रखती है। लगभग सौ साल पहले सन् १९१७ में गांधीजी पहचान गए थे कि हिंदी में ही विभिन्न भाषा-भाषी परिवारों में बँटे भारतीयों को जोड़ने की अद्‌भुत शक्ति निहित है और केवल हिंदी ही भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित कर सकती है। उनके शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, 'मैं कहता हूँ कि एक सांस्कृतिक अपहारक के रूप में अंग्रेजी को भी हमें उसी तरह निकाल फेंकना चाहिए, जिस तरह हमने अंग्रेजों के राजनीतिक शासन को सफलतापूर्वक उखाड़ फेंका।' जिन नीति-नियामकों को यह कार्य करना था, वे अपने निहित स्वार्थों या परास्त मानसिकता के कारण ऐसा नहीं कर सके, लेकिन भारतीय जनमन ने यह काम किया।

हिंदी का वर्तमान परिदृश्य आशा से भरा है। सबसे अधिक पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित होती हैं। कम-से-कम प्राथमिक स्तर तक अगर हिंदी या मातृभाषा को शिक्षा का आध्यम अनिवार्य कर दिया जाए तो क्रांति हो जाएगी।

आज सरकारी हिंदी भी सरल और व्यावहारिक हो गई है। हिंदी साहित्य भी भाषिक धरातल पर बेहद आसान शब्दावली में लिखा जाता है। अभिजात अंग्रेजी के सामने हिंदी पहले की तरह नतशिर नहीं रही—सीना तान कर खड़ी है। आज हिंदी रचनाओं और विज्ञापनों के अंग्रेजी अनुवाद होते हैं; यह पूर्ववर्ती स्थिति से एकदम उलट है।

वैश्विक स्तर पर हिंदी अपनी गति से आगे बढ़ रही है। ध्यान देने की बात यह है कि सरकारों ने अपनी ओर से लोगों पर अंग्रेजी थोपने की पुरजोर कोशिश की और पिछली दो शताब्दियों में लगातार दबावों और प्रयासों के बावजूद मात्र दो प्रतिशत लोग ही इसे सीख पाए हैं। अगर इसके बोलने और इस्तेमाल करनेवालों की गिनती देखेंगे तो वह और भी कम बैठेगी। यह सर्वमान्य सत्य है कि सरकारें कभी राष्ट्र नहीं बनातीं, वे तो एक देश पर अच्छा या बुरा शासन कर सकती हैं। जब प्रश्न भाषा का आता है तो जनता की भागीदारी और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। लोगों की बोली, उनकी आवाज ही भाषा बनती है और सरकार को उसी का प्रयोग करना पड़ता है। जनता के प्रयासों का ही सुखद परिणाम है कि हिंदी सब बंधनों के बावजूद पूरे देश की भाषा बन पाई है। अगर सरकारें ही भाषा तय करतीं तो सदियों पहले ही फारसी पूरे देश की भाषा बन गई होती या अंग्रेजी राज में अंग्रेजी पूरे भारत में छा गई होती, परंतु ऐसा नहीं हुआ। अतः चिंता का कोई कारण नहीं है, हिंदी प्रगति-पथ पर निरंतर अग्रसर है, वह राजभाषा बनकर ही रहेगी। आसेतु-हिमाचल हिंदी बोली, समझी और लिखी जा रही है। दक्षिण भारतीय भी अब हिंदी के महत्त्व को पहचानते हैं और वहाँ निरंतर हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। हिंदी के राजभाषा बनने से भारतीय भाषाएँ समृद्ध ही होंगी, उनका शब्द भंडार बढ़ेगा, यह समझ आने लगा है।

□

संपादक आदरणीय त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदीजी अस्वस्थता के कारण अस्पताल में हैं; इसलिए इस अंक का संपादकीय नहीं लिख पाए हैं। वे स्वस्थ होकर जल्दी लौटें, यह कामना है। सुधी पाठक पूर्व की भाँति धैर्य और सहयोग बनाए रखेंगे।

—हेमंत कुकरेती
(संयुक्त संपादक)

हिंदीमय जीवन

● विद्यानिवास मिश्र

पुण्यश्लोक श्रद्धेय भैया साहब (पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी) एक संपूर्ण युग की दास्तान थे, वे हिंदी की संघर्ष-यात्रा के अपराजेय योद्धा थे। मरते दम तक उन्होंने हिंदी के स्वाभिमान की लड़ाई लड़ी और किसी भी सत्ता के आगे हिंदी के प्रश्न पर झुके नहीं। मैं उन्हें हिंदी का मूर्तिमान स्वाभिमान मानता हूँ। जब वे ब्रिटिश हुकूमत की सरकारी नौकरी में थे, अपनी योग्यता से आगे बढ़े। उन्हें कई बार अपने उच्च अधिकारियों से हिंदी के प्रश्न पर सीधे लोहा लेना पड़ा और वे अपने तर्क-कौशल के कारण विजयी रहे।

पहली बार उत्तर प्रदेश के गवर्नर मार्स के सलाहकार ने उनसे कहा कि आप शिक्षा-प्रसार की हिंदी पुस्तकें रोमन में छपवाइए।

वे हिंदुस्तान की फौज की नौकरी से आए थे। वहाँ रोमन का इस्तेमाल होता था।

भैया साहब ने कहा, ''अब इतिहास को पीछे नहीं ले जाया जा सकता है। आप ही की हुकूमत में हिंदी की शिक्षा-व्यवस्था देवनागरी में सौ वर्ष से चल रही है और देवनागरी लिपि में ही हिंदी की पुस्तकें छपती रही हैं। अब इतनी सामग्री को गंगा की धारा में विसर्जित तो किया नहीं जा सकता और नए सिरे से रोमन लिपि की व्यवस्था करने में इतना खर्च आएगा कि उसे बजट सँभाल नहीं सकेगा।

खीझकर मार्स ने हार मान ली।

दूसरी घटना है द्वितीय विश्वयुद्ध की, जब भैया साहब एक पत्रिका निकालते थे। उसमें युद्ध के विषय में जानकारी दी जाती थी। उन्होंने स्व. वेंकटेश नारायण तिवारी से लेख लिखवाए। तिवारीजी कांग्रेस के प्रतिष्ठित नेता थे। वे राजनीति शास्त्र और अर्थशास्त्र के बड़े मेधावी जागरूक अध्येता थे।

भैया साहब से सफाई माँगी गई, ''आप ऐसे व्यक्ति से क्यों लेख लिखवाते हैं ?''

भैया साहब ने उत्तर दिया, ''लेख उसी से लिखवाया जाएगा, जो उस विषय का जानकार हो। यदि लेख में प्रामाणिक जानकारी है और उसमें शासन के विरुद्ध कोई बात नहीं है, तो लेखन का प्रश्न गौण हो जाता है।'' बाद में काफी उलझनें आईं पर भैया साहब तनिक भी विचलित नहीं हुए।

स्वाधीन भारत में मानद हिंदी अधिकारी के रूप में सरकारी दफ्तरों के लिए सर्वोच्च थे। उन्होंने २० वर्षों तक 'सरस्वती' का संपादन करते हुए समसामयिक राजनीति, अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक-सामाजिक परिस्थितियों पर तथ्यपूर्ण और सुविचारित टिप्पणियाँ निर्भीक भाव से लिखीं और किसी भी सत्ता की अनुकूलता-प्रतिकूलता की चिंता उनको कभी प्रभावित न कर सकी।

उन्होंने उर्दू को द्वितीय राजभाषा बनाने के प्रश्न पर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'भारत-भारती' पुरस्कार ठुकरा दिया। वे राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन के हिंदी-आंदोलन में दाएँ हाथ थे और उन्होंने टंडनजी से ही नि:स्पृह हिंदी सेवा की दीक्षा पाई थी।

उन्हें लोगों ने पूरी तरह कभी समझा नहीं। कुछ लोगों ने उन्हें हास्य-विनोद का अवतार माना और उस हास्य-विनोद में छिपी गंभीरता की पहचान बड़े-बड़े साहित्यकारों को भी नहीं हो सकी। उन्हें हिंदी का दुराग्रही और उर्दू का विरोधी माना, पर वास्तविकता यह थी कि वे जितनी अच्छी हिंदी जानते थे, बोलते थे, उतनी ही अच्छी उर्दू और अंग्रेजी भी जानते थे, बोलते थे। उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण शैक्षिक सर्वेक्षण लिखा था, जो उनकी पैनी दृष्टि का तो प्रमाण है ही, उनकी साफ-सुथरी अंग्रेजी का भी ज्वलंत प्रमाण है। उन्होंने उर्दू साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। उर्दू के अनेक लेखक और कवि उनके अंतरंग मित्र थे। उनके मन में संस्कृत भाषा के प्रति विशेष आदर-भाव था, पर वे भारतीय जनता की आकांक्षा के अनुरूप हिंदी को प्राथमिकता देते थे। वे किसी दूसरी भाषा का विरोध नहीं करते थे, बल्कि उन्होंने तो उन भाषाओं के साहित्य के इतिहास लिखवाए और अपने द्वारा स्थापित वाङ्मय निधि माध्यम से प्रकाशित करना शुरू किया, जिसमें तमिल का इतिहास छप चुका है। वे संपूर्ण भारत के भाषा-साहित्य और रीति-रिवाजों में एकता के भाव देखते थे और हिंदी को उस भाव की अभिवृद्धि में कारक घटक बनाना चाहते थे, क्योंकि ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हिंदी इस भूमिका के लिए सदियों में सबसे उपयुक्त भाषा रही है।

जो लोग उनके शैक्षिक प्रशासन से परिचित नहीं हैं, वे उनका कठोर अनुशासन प्रिय रूप नहीं जानते और जो उनके अनुशासन पक्ष से ही परिचित हैं, वे उनके कोमल वत्सल पक्ष को नहीं जानते। अपने

परिवार में भी विरल अवसर आता था, जब उनका स्नेह शब्दों के द्वारा व्यक्त हुआ हो; पर जब वह अवसर आता था तो उस समय उनका कंठ रुँध जाता था।

उनका परिवार बहुत बड़ा था। उसमें निज और पर का भेद नहीं था। भाइयों के लड़के अपने लड़कों से कुछ अधिक ही स्नेह-भाजन थे। यही नहीं, सैकड़ों मेरे जैसे अत्यंत सामान्य व्यक्ति जो उनके पास आए, बैठे और उनसे कुछ सीखने की कोशिश की, उनको भी उनका ऐसा ही स्नेह प्राप्त था। उनके स्नेह का लक्षण था—डाँट-फटकार और सदैव कर्तव्य की जागरूकता के लिए उलाहना। वे लोकप्रियता की चिंता नहीं करते थे, पर वैचारिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे।

मैं उन भाग्यशालियों में नहीं हूँ जो उनके हाथ से सँभलाया हुआ दीप आगे ले जाने की क्षमता रखता हो। मैं तो उनके आदेश का पालन करता था। मैं उनके रास्ते पर चलने का दंभ नहीं करता, न उनके कार्य को सँभालने का दंभ करता हूँ। उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष पद दिया। मैं इनकार करने का साहस नहीं कर सका। उनकी उपस्थिति न रहने पर मेरा उसमें कोई उत्साह नहीं रह गया। इसी प्रकार उन्होंने अनेक कामों में नियोजित किया, मैं उनकी आज्ञा यथा-शक्ति पालन करता रहा।

उनके घर का वह बड़ा कमरा, जिसमें फर्श पर बिस्तर लगवाकर वे सोते थे, उन्मुक्त अभिव्यक्ति का स्थान था। वहाँ वर्षों स्व. नागरजी, स्व. भगवतीचरण वर्मा, स्व. अशोकजी, स्व. यशपालजी, स्व. योगींद्रपति त्रिपाठी बैठते और राजनीति, समाज-व्यवस्था, धर्म, संस्कृति सबके बारे में खुली बहस होती थी। कभी-कभी बहस बड़ी तीखी हो जाती थी, फिर उन्मुक्त हास-परिहास होता। इन सबके होते हुए भी भैया साहब की अपनी निष्ठा थी, धर्म था, आचार और मूल्य थे, जिनके बारे में वे समझौता नहीं करते थे। दूसरों की बात सुनते थे, अपनी बात कहते थे, लेकिन कभी भी आग्रह नहीं करते थे कि मेरी बात सही है। हाँ, जहाँ कहीं ऐसा प्रश्न आता था, जो देश और भाषा के स्वाभिमान को आहत करनेवाला हो, वहाँ उनका क्रोध भभक उठता था; साथ ही जहाँ-कहीं कर्तव्य में प्रमाद होता था, वहाँ पुराने जमाने के हेडमास्टर की तरह कड़क उठते। वे जो काम देते, उसमें प्रमाद या विलंब सह नहीं सकते थे।

मेरा सौभाग्य रहा कि उन्होंने समय-समय पर अनेक काम सौंपे और हर बार सुनना पड़ा कि अभी काम पूरा नहीं हुआ। कभी-कभी मैं खीझता और नाराज भी होता था। मैं इतना ढीठ था कि अपनी नाराजगी व्यक्त करता था। पर जानता था कि कहीं भीतर विश्वास है, तभी वे काम सौंपते हैं। उनके जाने पर अब कोई काम सौंपने वाला ही नहीं है। ऐसे दुर्धर्ष, पर भीतर से बड़े ही कोमल व्यक्ति के बारे में कुछ भी कहने के लिए साहस जुटाना पड़ता है।

मैं उन भाग्यशालियों में नहीं हूँ, जो उनके हाथ से सँभलाया हुआ दीप आगे ले जाने की क्षमता रखता हो। मैं तो उनके आदेश का पालन करता था। मैं उनके रास्ते पर चलने का दंभ नहीं करता, न उनके कार्य को सँभालने का दंभ करता हूँ। उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष पद दिया। मैं इनकार करने का साहस नहीं कर सका। उनकी उपस्थिति न रहने पर मेरा उसमें कोई उत्साह नहीं रह गया। इसी प्रकार उन्होंने अनेक कामों में नियोजित किया, मैं उनकी आज्ञा यथा-शक्ति पालन करता रहा।

उनकी प्रामाणिक जीवनी जरूर लिखना चाहता हूँ। अभी अपने को सँभाल नहीं पाया कि उनके जीवन के इतने आयामों को एक छोटी-सी पुस्तक में समेटने की स्थिर एकाग्रता प्राप्त कर सकूँ, पर मुझे किसी-न-किसी दिन लिखना है।

उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के एक-एक पक्ष के बारे में बहुत विस्तार से बात की जा सकती है। मैंने केवल संक्षेप में उनके हिंदी-सेवी के रूप की चर्चा की। उन्होंने हिंदी भाषा को ठेठ और सशक्त मुहावरा दिया है और ये जो हिंदी का टकसाली रूप है, उनके द्वारा ढला है। उसका मूल्यांकन करने के लिए गहरी छानबीन आवश्यक है। उनकी भाषा सीधी और कसी हुई है, उसमें अनावश्यक सजावट नहीं है, पर तर्क का बल इतना है कि वह भाषा मनवा लेती है। वे तथ्य को बहुत पवित्र समझते थे और क्योंकि वे इतिहास के विद्यार्थी थे और उसके साथ ही विज्ञान के विद्यार्थी रहे, उनकी भाषा में बिना किसी आयास के प्रखरता थी, ओज था और सहजता थी। भाषा का यह संस्कार उन्होंने बड़े अभ्यास और अध्यवसाय से पाया था। इसीलिए वे अपेक्षा करते थे कि हिंदी-भाषी क्षेत्र का शिक्षित व्यक्ति ये संस्कार अध्यवसाय प्राप्त करे। उनका दूसरा आग्रह यह था कि भाषा सामान्यजन की पहुँच के भीतर हो। मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त था, पर उनका एक उलाहना भी था कि तुम विशिष्ट जनों के लेखक हो, सामान्य-जनों के लेखक नहीं हो। मैं उनके व्यापक संप्रेक्षण की चिंता को समझते हुए भी उनकी अपेक्षा तक नहीं पहुँच पाता था।

उनका दूसरा बड़ा अवदान है—विद्या और ज्ञान के प्रति ग्रहणशील भाव, जिससे आचार-विचार में अपने से बिल्कुल विपरीत लोगों को भी वे आदर का आसन देने में संकोच नहीं करते थे। उन्होंने श्रद्धेय राहुल जी और यशपालजी—जैसे भिन्न विचारधारा के लोगों को आदर दिया। वे लोग आजीवन भैया साहब के प्रशंसक बने रहे। अनेक कवियों और लेखकों को प्रोत्साहित मात्र नहीं किया, क्योंकि वे आश्रयदाता भाव नहीं रखते थे, उन्होंने अपना कर्तव्य जानकर बड़े-बड़े लेखकों से पुस्तकें लिखवाईं, उनका प्रसार किया और अपने भीतर गहरा परितोष पाया कि मैं हिंदी की ऐसी प्रतिभाओं से कुछ लिखा पाने में समर्थ हुआ, जिनके कारण हिंदी समर्थ और समृद्ध हुई। ऐसे लोगों में स्व. रायकृष्णदास, आचार्य शुक्ल, डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के नाम का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहता हूँ। इन्होंने भैया साहब के बार-बार कहने पर लिखा और ऐसा लिखा कि हिंदी की शोभा बढ़ा दी। निरालाजी ने उनकी प्रेरणा से 'तुलसीदास' की रचना की और यह

रचना उन्हें समर्पित भी की।

भैया साहब ने अश्रु गद्‌गद कंठ से बताया था कि मरने से कुछ दिन पूर्व निरालाजी अत्यंत अस्वस्थता में उनके इलाहाबाद वाले घर में उनसे होली मिलने आए थे। उनसे सीढ़ियों पर चढ़ा नहीं जा रहा था। वे रेंग-रेंगकर सीढ़ियों पर चढ़े। ऊपर गए, ऊपरवाले कमरे में जहाँ भैया साहब रहते थे। वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते निरालाजी हाँफने लगे थे। उन्हें देखकर भैया साहब बिफर पड़े कि यह आपने क्या अन्याय किया, मैं स्वयं आपके पास आता।

निरालाजी ने विगलित भाव से उत्तर दिया, ''आज होली का दिन था। आज मुझे ही प्रणाम करने आना था। आज के दिन प्रणाम कर लेने दीजिए।''

भैया साहब ने यह वृत्तांत सुनाया था, तो वे एकदम भर उठे।

वे गया श्राद्ध करने गए थे। अपने साथ हिंदी के सेवकों और साहित्यकारों की लंबी सूची ले गए थे और जिनके गोत्र का पता चल सका था, उनके गोत्र के नाम भी लेते गए थे, पिंडदान करने से पहले उन्होंने सूची थमा दी थी और निर्देश दिया कि कोई नाम छूटने न पाए और कोई छूट गया हो, तो जोड़ दो। सूची बहुत लंबी थी। भैया साहब बड़ी श्रद्धा से उसी तरह पिंडदान करते रहे, जिस तरह अपने पूर्व पुरुषों का उन्होंने पिंडदान किया था। ऐसे बड़े परिवारी थे भैया साहब।

जब कभी किसी साहित्यकार का निधन होता, वे विचलित हो जाते थे। अज्ञेयजी के निधन पर बहुत ही विचलित हुए थे और जब वे अज्ञेयजी को दिया जानेवाला 'भारत-भारती सम्मान' इलाजी को दे रहे थे तो एकदम भाव-विह्वल हो उठे थे। यह स्वीकारी भाव ही उन्हें ऊर्जा देता रहा कि वे दुर्धर्ष होकर अपनी निष्ठाओं के लिए संघर्ष करते रहे।

मैं यह तो नहीं कहता कि मैं उनके सबसे अधिक समीप था, पर इतना समीप जरूर था कि उनके एकांत में झांकने का अवसर मिला है। उनके विषाद, अवसाद और चिंता के क्षणों को बंटाने का अवसर मिला, वह सब आज नहीं लिख पाऊँगा। कभी आगे समय आएगा जब मैं अपने को बटोर लूँगा, तब लिखूँगा। अभी उनकी विदाई मन से स्वीकार नहीं होती, इसलिए वे स्मृति के विषय नहीं हो पाते। जब ये सारी बातें स्मृति के रूप में सहेज दी जाएँगी, तब लिखने का समय आएगा, तब तक चुपचाप अपने भीतर यही अनुभव चाहता हूँ कि भैया साहब हिंदी सेवा के प्रकाशस्तंभ के रूप में जो रहे वे रहे, एक हृदयवान व्यक्ति के रूप में जो थे वह भीतर भरा रहे।

उनका एक और विशिष्ट अवदान रहा, वह है साहित्य सर्जन के क्षेत्र में, जिसकी नितांत उपेक्षा की गई। वे हिंदी के श्रेष्ठ व्यंग्यकार ही नहीं थे, सहज विनोद के माध्यम से गहरी-से-गहरी बात अभिव्यक्त करनेवाले और मानवीय संवेदना को छूनेवाले श्रेष्ठ गद्यकार थे। इसके साथ ही उनकी साहित्य की समझ बड़ी पैनी और व्यापक थी। हिंदुस्तानी एकेडमी में आधुनिक हिंदी पर जो व्याख्यान दिए और जो कालांतर में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए, उनकी एक-एक सूक्ष्म और व्यापक समीक्षा दृष्टि के प्रमाण हैं। 'सरस्वती' में संपादक के रूप में उनकी सांस्कृतिक और साहित्यिक विषयों पर टिप्पणियाँ ऐसी संक्षिप्त, सारगर्भित और मर्मस्पर्शी हैं कि वे सामयिक संदर्भों से जुड़ी होती हुई भी शाश्वत साहित्य बन गई हैं। पुरातत्त्व, इतिहास और शिक्षाशास्त्र के बारे में उनका चिंतन-मनन ऐसे स्तर का है जिस पर राहुलजी जैसे मनीषी उनके बड़े प्रशंसक बन गए थे।

परंतु इन सभी भिन्नताओं को उन्होंने हिंदी-सेवा के अधीन कर दिया था, इसलिए महत्त्वपूर्ण होती हुई भी वे लोगों का ध्यान उतना नहीं खींच सकीं, क्योंकि उनका हिंदी-सेवी और हिंदी-अभिमानी रूप इतना भास्वर रहा कि उस प्रकाश में उनके दूसरे रूप लोगों की आँखों से ओझल होते रहे, लेकिन आज उनके पार्थिव शरीर के न रहने पर उन सबका मूल्यांकन होना चाहिए, तभी उनके प्रति श्रद्धांजलि पूर्ण होगी।

इतनी बात तो मैं इसलिए कर सका कि यह सार्वजनिक पक्ष था। उनका तो जीवन ही परार्थ था। वे कहते थे कि बुढ़ापे को रोकने का एक ही नुस्खा है, अपने बारे में मत सोचो। उन्होंने अपने असन-वसन किसी की भी चिंता नहीं की। जीवन के अंतिम वर्ष को छोड़कर कभी अपने लड़कों से भी सेवा नहीं ली। अपना बनाते-खाते थे, स्वयं ही अपना कमरा साफ कर लिया करते थे और ९५ वर्ष तक उनमें ऐसी फुरती थी कि कोई संदर्भ याद आता तो अलमारी से पुस्तक निकालने चल देते। उस अवस्था में भी उनकी आवाज में ऐसी कड़क थी कि ऊपरवाली मंजिल पर वह आवाज पहुँच जाती थी। ऐसा परार्थ जीवन मैंने कम देखा है, जो दूसरों को खिलाने-पिलाने में इतना आग्रही हो और स्वयं खिचड़ी खाकर संतुष्ट हो जाता हो। वे ऐसे निर्लोभ थे कि जो कुछ भी पाते, किसी-न-किसी धर्मार्थ मद में डाल देते। अपनी रॉयल्टी की राशि उन्होंने हिंदी वाङ्मय निधि में दे दी थी। पर इस सार्वजनिक व्यक्ति का एक निजी एकांत था, बड़ा सीमित, बड़ा संक्षिप्त, पर बहुत ही भाव-प्रवण। मेरा सौभाग्य था कि मैं लगभग ४५-४६ वर्षों तक उनकी स्नेह-छाया में रहा। उन्होंने बिल्कुल अपने लड़के की तरह माना, चिंता की और उसी भावना से अनुशासन भी किया। मैं यह तो नहीं कहता कि मैं उनके सबसे अधिक समीप था, पर इतना समीप जरूर था कि उनके एकांत में झाँकने का अवसर मिला है। उनके विषाद, अवसाद और चिंता के क्षणों को बँटाने का अवसर मिला, वह सब आज नहीं लिख पाऊँगा। कभी आगे समय आएगा, जब मैं अपने को बटोर लूँगा, तब लिखूँगा। अभी उनकी विदाई मन से स्वीकार नहीं होती, इसलिए वे स्मृति के विषय नहीं हो पाते। जब ये सारी बातें स्मृति के रूप में सहेज दी जाएँगी, तब लिखने का समय आएगा, तब तक चुपचाप अपने भीतर यही अनुभव चाहता हूँ कि भैया साहब हिंदी सेवा के प्रकाशस्तंभ के रूप में जो रहे, वे रहे, एक हृदयवान व्यक्ति के रूप में जो थे, वह भीतर भरा रहे।

राजभाषा की लड़ाई : बिना खड्ग बिना ढाल

● बुद्धिनाथ मिश्र

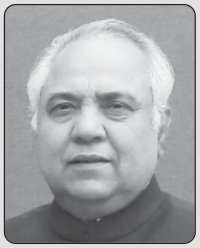

सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं राजभाषा विशेषज्ञ।

तीस साल पहले जब मैंने काशी में हिंदी पत्रकारिता की अच्छी-खासी भूमिका छोड़कर, कोलकाता जाकर राजभाषा अधिकारी की कुरसी पकड़ी, तब मुझे पता नहीं था कि इस देश में स्वदेशी और स्वभाषा की बात करना पानी पर लकीर खींचना है। तब तक मुझे यह भी मालूम नहीं था कि सरकारी कार्यालयों में राजभाषा का काम एक नया महाभारत है, जिसमें पांडवों को कौरवों से निहत्था लड़ना है। पिछली आजादी 'बिना खड्ग बिना ढाल' भले ही जीत ली गई हो, मगर भाषा की आजादी की लड़ाई को जीतना उतना आसान नहीं है। हमारी प्रारंभिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक आज भी अंग्रेजी की मुहताज है या बना दी गई है। बल्कि धीरे-धीरे हमारी पूरी शिक्षा-पद्धति अंग्रेजी के मकड़जाल में और अधिक फँसती जा रही है। गाँव-गाँव में इंगलिश मीडियम में अपने बच्चों को पढ़ानेवाले अभिभावक ज्यादा आगे आ रहे हैं। 'स्कूल' नाम को कलंकित करनेवाली, सुविधा-विहीन उन झोंपड़पट्टियों में बच्चों को 'ए माने सेब, बी माने बैल, 'सी' माने बिल्ली और 'डी' माने कुत्ता' पढ़ाते भी सुना गया है। यह हुआ अंग्रेजी का भारतीयकरण। बच्चे को कुछ आए न आए, उसके मुँह से 'टिंकिल टिंकिल लिसलिस टार' सुनकर ही उसके माँ-बाप, दादा-दादी निहाल हो जाते हैं और किसी मेहमान के आने पर अपने लाड़ले को वही कविता, जिसका भारतीय संस्कारों से कुछ भी लेना-देना नहीं है, सुनवाकर गौरवान्वित होते हैं। उसे देवनागरी वर्णमाला पढ़ाना या हिंदी पहाड़ा रटाना उसे गँवार बनाना है। ऐसी स्थिति में हिंदीभाषी राज्यों के नवनियुक्त कार्मिक भी यदि गर्व से यह घोषणा करते हैं कि मुझे हिंदी नहीं आती, तब बेचारा हिंदी अधिकारी क्या करे! हिंदीतरभाषी कार्मिकों को हिंदी पढ़ाने के लिए भारत सरकार की प्रोत्साहन योजना है, मगर हिंदीभाषियों को भी हिंदी सिखानी पड़ेगी, यह किसी ने सोचा न था।

बहरहाल, पूरा ऑफिस आज भी अंग्रेजी में काम करता है, इसलिए नहीं कि सभी कार्मिकों को अंग्रेजी आती है, बल्कि इसलिए कि सभी कार्मिकों को अब तक अंग्रेजी में लिखी फाइलों को अंग्रेजी में नकल उतारने में सुविधा होती है। यदि वह हिंदी में काम करेगा तो उसे पुराने दस्तावेजों की अंग्रेजी को समझकर हिंदी में प्रारूप तैयार करना होगा। अतएव कोई कार्मिक अपनी बुद्धि और योग्यता का प्रयोग कर नई भाषा की पहल नहीं करना चाहता। वह नौकरी करने के लिए आया है, खटने नहीं। वह राजसेवक है, देशसेवक नहीं। इसलिए पूरा दफ्तर अगर पश्चिम दिशा की ओर जा रहा है तो जाने दो। किसी को टोको मत, लेकिन पूरे ऑफिस को पश्चिम से पूरब की ओर ले जाने की जिम्मेदारी हिंदी अधिकारी को सौंपी गई है, अनुवाद के जरिए। यदि एक ऑफिस में तीन सौ लोग अंग्रेजी में काम कर रहे हैं तो उन सबका हिंदी अनुवाद करना-कराना हिंदी अधिकारी का परम कर्तव्य है। तिस पर तुर्रा यह कि जिस दस पेज के प्रारूप को तैयार करने में सभी बड़े साहबों ने मिलकर पूरे डेढ़ मास लगाए, उसका अनुवाद सिर्फ डेढ़ घंटे में हो जाना चाहिए! हिंदी विभाग तक पहुँचने से पहले ही हर कागज बेहद अर्जेंट हो जाता है। किसी कागज का अनुवाद करने के लिए कितना समय, कितनी जनशक्ति और कितनी योग्यता चाहिए, यह न तो सत्तामद में मद कोई बड़ा अधिकारी सोचता है, न सुनना चाहता है। वह अनुवाद की तकनीक से निरा अनजान है, इसलिए उसकी नजर में अनुवाद का काम लगभग स्टेनोग्राफी जैसा है। इधर बोलते जाइए, उधर टाइप होता जाएगा। सरकार में बैठे हुक्मरानों ने भी अनुवाद को लिपिकीय काम ही माना, इसलिए सरकारी दफ्तरों में अकसर अनुवादकों की नियुक्ति लिपिक वर्ग में होती है, जबकि वे दो-दो भाषाओं में डिग्रीधारी हैं। क्या किसी क्लर्क के पास हिंदी और अंग्रेजी का इतना ज्ञान होता है कि वह अनुवाद कर सके? क्या ऊँचे-ऊँचे पदों पर बैठे सर्वाधिकार संपन्न सचिव एक दिन में उस एक पेज का हिंदी से अंग्रेजी या अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद कर सकते हैं, जिस तरह के दस पेज के अनुवाद की अपेक्षा वे चंद घंटों में अनुवादकों से करते हैं? इसीलिए जो कृत्रिम (अनूदित) हिंदी सरकारी दफ्तरों से आम लोगों तक पहुँचती है, वह यदि उन्हें नहीं समझ में आती है तो इसके लिए मंत्रालयों में राजभाषा की नीति-निर्धारण करनेवाले सचिवों, उपसचिवों और निदेशकों की गरदन वे पकड़ें, न कि हिंदी स्टाफ को दुतकारें। सभी प्रकार से नख-दंतविहीन असहाय हिंदी स्टाफ को बैंगन पकाने के लिए देकर उससे मुर्ग-मुसल्लम की माँग करना बेहूदा है।

लगभग तीन दशक तक अपनी कारयित्री प्रतिभा को राजभाषा के काम में लगाकर आज मुझे यही अनुभव होता है कि मैंने पानी पीटकर जीवन बिता दिया। इतना समय और ऊर्जा यदि अध्यापन पर खर्च करता तो अपनी गिनती हिंदी के महाविद्वानों में होती। दो-चार प्रकाशक मेरे आगे-पीछे फिरते। दो-चार शोध-प्रबंध मेरे लेखन पर हो गया होता। दो-चार शिष्य अग्रगण्य विद्वानों के रूप में निकलते। सैकड़ों शिष्य मेरे पाँव छूते, मगर हिंदी अधिकारी भी विद्वान् हो सकता है, यह कोई सपने में भी नहीं सोचता। वैसे भी राजभाषा अधिकारियों का जन्म श्वान योनि में होता है। जरा भी उनकी गली से होकर गुजरे कि वे गुर्राने लगेंगे, इस डर से कि कहीं मेरे बड़े अधिकारियों की नजर में यह श्रेष्ठतर न हो जाए। एक

असुरक्षा की भावना से जिंदगी भर वह जूझता रहता है। आई.ए.एस./आई.पी.एस. संवर्ग में यदि कोई एक दिन का भी वरिष्ठ है, तो उसकी वरिष्ठता का सम्मान न करना अनुशासनहीनता में गिना जाएगा। राजभाषा संवर्ग में ऐसा कुछ नहीं है। हिंदी अधिकारी का महत्त्व उसके कार्यालय के महत्त्व पर निर्भर करता है।

भारत सरकार के कार्यालयों, अनुसूचित बैंकों और सार्वजनिक उपक्रमों में हिंदी के कार्यान्वयन का दायित्व गृह मंत्रालय को दिया गया है, मगर उसके राजभाषा विभाग के सारे अधिकारी प्रतिनियुक्ति के आधार पर आते हैं। जो खुद तदर्थ पद पर आसीन हैं, वह स्थायी नीति क्या बनाएगा? वह तो इस विभाग के काम को ठीक से जानता भी नहीं! बस हंटर फटकारकर हिंदी की नौकरी कर लेता है। राजभाषा का काम विशेषज्ञता की अपेक्षा करता है। इसमें योगदान करना आइ.ए.एस. अधिकारियों के वश की बात नहीं है। इसीलिए पहले रामधारी सिंह दिनकर जैसे साहित्यकारों को इसका प्रधान पद सौंपा गया था और इस विभाग में जो भी रचनात्मक कार्य हुए, वे उसी दौरान हुए। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संसदीय राजभाषा समिति ने राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के शीर्ष पद पर पुन: किसी वरिष्ठ साहित्यकार और राजभाषाविद् को नियुक्त करने की संस्तुति की थी, मगर विभाग में बैठे चतुर अधिकारियों ने उस संस्तुति को ही गोल कर दिया। बाद में संसदीय समिति का ध्यान राजभाषा हिंदी के विकास से हटकर सरकारी दफ्तरों के दौरे कर कीमती उपहार लेने और पाँच सितारा होटलों की अय्याशी में रम गया, इसलिए वह अपनी महत्त्वपूर्ण संस्तुतियों को भी भूल गई। अब जब वही स्वार्थलिप्त हो गई तो राजभाषा कार्यान्वयन कार्यालयों के छुटभैये अधिकारी भी क्यों न औकात भर जीभ लपलपाएँ!

इस समय सबसे बड़ा सवाल यह है कि किसी भी सरकारी उपक्रम में पिछले दो दशकों से राजभाषा संवर्ग में कोई स्थायी पद सर्जित नहीं हो रहा है। इस संवर्ग को यदि जिंदा रखना है तो इसे 'यंग ब्लड' पर्याप्त मात्रा में चाहिए। विश्वविद्यालयों में प्रयोजन-मूलक हिंदी में स्नातकोत्तर डिग्री भी दी जाने लगी है, जो राजभाषा संवर्गों के लिए विशेष उपयुक्त हैं। पहले एम.ए. (हिंदी) में सूर-तुलसी या मुक्तिबोध-अज्ञेय पढ़कर आनेवाले अभ्यर्थी इस पद के साथ न्याय नहीं कर पाते थे। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा ने इस वर्ष से एम.ए. (प्रयोजन-मूलक हिंदी एवं राजभाषा प्रबंध) प्रारंभ किया है, जो कई दृष्टियों से नव्यतम और व्यावहारिक है। पहली बार इसका पाठ्यक्रम शिक्षाविदों ने मिलकर बनाया है, जिसमें राजभाषा के प्रबंधन संबंधी विषयों के अलावा डबिंग, दुभाषिया, संवाद और भाषण लेखन जैसे वैकल्पिक विषय सम्मिलित किए गए हैं।

वैश्वीकरण के चंगुल में पूरी तरह फँसी भारत सरकार को राजभाषा की प्रगति से आज भी कोई सरोकार नहीं है। वह चाहती है कि उसके ऑफिस वर्ष के सारे दिन अंग्रेजी में काम करें और एक दिन यानी १४ सितंबर को राजभाषा हिंदी का श्राद्ध दिवस मना लें (श्रद्धया श्राद्धम्)। संयोग से यह दिन श्राद्ध पक्ष के अंतर्गत पड़ता है, जिसमें लोग अपने मृत पितरों को याद करते हैं और जिसमें कौओं को खिलाया जाता है। राजभाषा हिंदी के इस श्राद्ध-पक्ष में भी लगभग वही सब होता है। भारतीय बाजार की संपर्क भाषा हिंदी का वर्चस्व विदेशी चैनलों, विश्वविद्यालयों और कंपनियों को तो दिखता है, मगर सरकारी डालों से लटके चमगादड़ों को नहीं, क्योंकि उन्हें रोशनी में कुछ दिखाई नहीं देता।

देवधा हाउस, ५/२ वसंत विहार एन्क्लेव,
देहरादून-२४८००६

पत्थर और पानी

लघुकथा

● ओमप्रकाश बजाज

जबलपुर का भेड़ाघाट विश्व प्रसिद्ध पर्यटनस्थल माना जाता है। दूर-दूर से लोग इसे देखने आते हैं। प्रकृति की अद्‌भुत कारीगरी को निहार दाँतों तले उँगली दबाने पर विवश हो जाते हैं। संगमरमर की रंग-बिरंगी ऊँची-ऊँची चट्टानों के बीच से कल-कल करके बहती हुई माँ नर्मदा को देख और २०० फीट से अधिक की ऊँचाई से गिरते और अपने नाम के अनुरूप वातावरण में धुँआ बिखेरते धुँआधार प्रपात को सामने पाकर कौन ऐसा होगा, जो रोमांचित और मंत्रमुग्ध न हो जाए!

जबलपुर वाले अपने घर आनेवाले मेहमानों को गर्व और उत्साह से भेड़ाघाट घुमाने ले जाते हैं। और उनके मुँह से पर्यटनस्थल की प्रशंसा सुन फूले नहीं समाते। कुछ दिन पहले हम भी इसी परंपरा का निर्वाह करते हुए अपने यहाँ पधारे एक दंपति को उत्साहपूर्वक भेड़ाघाट ले गए।

४-५ घंटे उन्हें वहाँ घुमाने-फिराने के बाद थक-हारे, किंतु सुंतुष्ट लौटे तो हमारी पत्नी ने सामान्य वार्त्तालाप की दृष्टि से उन मैडम से पूछा कि उन्हें भेड़ाघाट का धुँआ कैसा लगा? उनका उत्तर सुनकर हमारा सारा उत्साह पानी-पानी हो गया, जब उन्होंने सपाट लहजे में दो टूक कहा, 'क्या है वहाँ, केवल पत्थर और पानी! पता नहीं लोगों को उसमें क्या खास नजर आता है? बेकार में पूरा दिन बरबाद हो गया। थकावट हुई सो अलग!'

पो.बॉ. नं.-५९५
जी.पी.ओ. इंदौर (म.प्र.)
दूरभाष : ०९८२६४९६९७५

कम्मो

● आचार्य मायाराम पतंग

''मैडम, आप मुझे बंगालन काहे बुलाती हैं। मैं बंगालन नहीं हूँ।''

''अच्छा, तो क्या कहूँ?'' मालकिन ने पूछा।

''मेरा नाम है कामिनी, आप कम्मो बुला सकती हैं।'' मैंने कहा तो मालकिन मेरे पास आ गई। बोली, ''बंगालन कहने से तेरा क्या बिगड़ गया री! जरा जल्दी से सफाई कर, आज शाम को मेरी सासू माँ आनेवाली हैं। उनके आगे अपनी जुबान कम ही खोलना और हाँ, घर की कोई भी बात मत बताना, समझी।'' मैं कुछ बोली नहीं पर सोचती रही। ऐसी क्या बात है, जो मैडम छिपाने को कह रही हैं। मैं सफाई करती रही।

शाम छह बजे बाबूजी आए। उनके साथ एक बुढ़िया थी—साफ-सुथरी, गोरी-चिट्टी। दरवाजा खोलते ही मैंने नमस्ते की। मैं समझ गई, ये मालकिन की सासू माँ हैं। सोफे पर बैठते ही उन्होंने कमरे में चारों ओर नजर घुमाई, फिर मेरी ओर देखकर बाबूजी से पूछा, ''ये कौन है?''

बाबूजी ने कहा, ''ये बेचारी बंगालन लड़की है। घर के काम के लिए रखी है।''

बुढ़िया बोली, ''क्यों? तेरी बहू के क्या हाथ टूट गए हैं? दो कमरे का घर भी साफ नहीं कर सकती?''

बाबूजी घबरा गए, ''ये और भी काम में हाथ बँटा देती है।''

''और क्या करती है? क्या रसोई में भी घुसा लिया इसे? तुमने तो धर्म भ्रष्ट कर लिया। अब मेरा भी ईमान बिगाड़ोगे क्या? पता नहीं कौन जात है ये काली-कलूटी।''

मुझे बहुत बुरा लग रहा था, पर चुप ही रही। मालकिन ने चुप रहने को पहले ही कह दिया था, फिर बाबूजी भी डर रहे थे। धीरे से बोले, ''रसोई में कुछ नहीं करवाते। बस सफाई करती है, कपड़े धो देती है। बेचारी बँगलादेश से आई है।''

''बँगलादेश से आई है तो मुसलमान होगी। इसे वापस छोड़ के आ, जहाँ से भी लाया है। तुझे पता नहीं, तेरा दिमाग खराब कर दिया है लुगाई ने। हमारे मोहल्ले में जितने रिक्शेवाले हैं, उनमें जितने बँगलादेशी हैं, सारे मुसलमान। जितने हिंदू हैं, सारे बिहारी।'' लगातार वो बोलती रहीं। बाबूजी बोले, ''अब रात को कहाँ छोड़ूँगा। कल सुबह वापस भेज दूँगा। बेचारी लड़की···!''

जाने-माने साहित्यकार। तीन कविता-संग्रह, पाँच नैतिक शिक्षा, छह पुस्तकें शिक्षण साहित्य पर, दो गद्य-संग्रह, दो खंडकाव्य, चार संपादित पुस्तकें, छह गीत-संकलन। हिंदी अकादमी तथा दिल्ली राज्य सरकार द्वारा सम्मानित। संप्रति 'सेवा समर्पण' मासिक में लेखन तथा परामर्शदाता; राष्ट्रवादी साहित्यकार संघ (*दि.प्र.*) के अध्यक्ष; संपादक 'सविता ज्योति'।

बुढ़िया फिर बोलती रही, ''बेचारी-बेचारी क्यों कह रहा है? जितने कबाड़ी आते हैं, सब बँगलादेशी। कोई लोहे की, प्लास्टिक की चीज पड़ी रह जाए, सब उठा ले जाते हैं। पाइप को ही काट ले गए थे। तू इसे अभी छोड़कर आ।''

बुढ़िया की बात सुनकर मुझ से चुप न रहा गया। मैंने कहा, ''अम्माँजी, सुनो न! मैं बँगलादेशी हूँ, न बंगालन और न ही कुजात हूँ।''

अम्माँजी के कान खड़े हुए, ''अच्छा, तो तू नवाबजादी कौन है? इतने बड़े बाप की बेटी है तो घरों में नौकरी क्यों करने आई है?'' मन तो कर रहा था, सब कथा सुना दूँ। मैं कुछ सोचकर चुप रह गई। पर बुढ़िया तो चुप रहनेवाली थी नहीं। बोलती रही, ''अरे इसमें तो ऐंठ भी है। ऐंठ वाली नौकरानी तो टिकेगी भी नहीं। तू इसे सुबह छोड़ आना। यहाँ काम ही क्या है, जो इसके बिना पड़ा रह जाएगा।'' बाबूजी बोले, ''ठीक है। सुबह छोड़ आऊँगा। अब हाथ-मुँह धोओ। खाओ-पियो, आराम करो।''

उस समय बात रुक गई, पर मन में तो चलती ही रही। मैं भी यहाँ कल ही तो आई थी। इनकी किसी भी हालत का मुझे पता भी नहीं था। न ही और कुछ जानकारी थी। मुझे तो वर्मा एजेंसी वालों ने इन बाबूजी के साथ भेजा था। यह भी नहीं बताया था कि पगार क्या मिलेगी, काम क्या करना है।

पहले मैं जहाँ काम कर रही थी, वहाँ भी मालिक और मालकिन बात-बात पर मारते थे। कभी-कभी तो डंडे से भी पीटते थे। गाली तो हर बात पर देते थे। मैं वर्माजी से बार-बार कहती थी कि मुझे यहाँ से

निकालो, इसलिए मैं फौरन इनके साथ आ गई। वर्माजी से क्या बात तय हुई, वह भी मैंने नहीं पूछा। वर्माजी एजेंसी चलाते हैं, मेरी जैसी लड़कियों को काम दिलाते हैं। मुझे उनके पास मेरे गाँव की ही एक महिला लेकर आई थी। उसने मुझे बड़ी-बड़ी बातें कहकर बहका लिया। गाँव से चार मील दूसरे गाँव में पढ़ने जाती थी। पाँचवीं पास कर चुकी थी। मैं बड़े स्कूल में पढ़ने के लिए कहीं शहर जाना चाहती थी। मेरे निर्धन माता-पिता मुझे पढ़ाना नहीं चाहते थे। मेरी तीन बहनें मुझ से बड़ी थीं। तीनों नहीं पढ़ी थीं। तीनों का विवाह भी नहीं हुआ था। मेरे पिताजी चाय के बाग में मजदूरी करते थे। तीनों बहनों को भी वहीं काम पर लगाना चाहते थे, परंतु मेरी माँ उन्हें भेजना नहीं चाहती थी। वह भी तो पहले वहीं काम कर चुकी थी। उसे वहाँ के साथी मजदूरों पर विश्वास नहीं था। विदेशी मालिकों पर तो बिल्कुल भी नहीं। मुझे रतिया (गाँव की महिला) ने यही समझाया था।

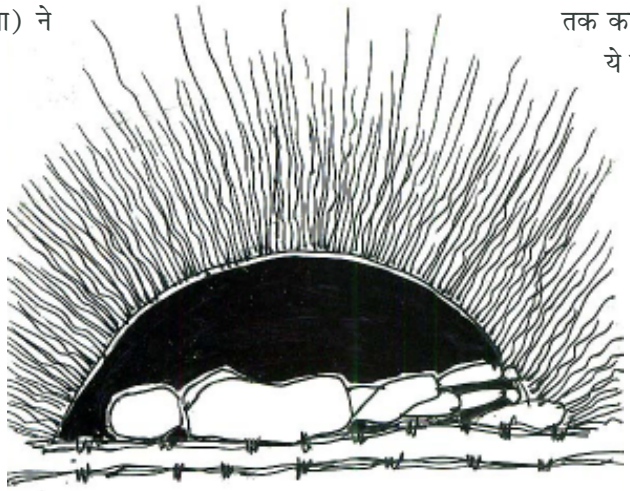

'तेरी तीन बहनें घर पड़ी हैं, तू भी यहीं पड़ी रहेगी। इनका विवाह नहीं हो सका। तेरा भी नहीं होगा। इसी गाँव में बूढ़ी होकर मर जाएगी। इस गाँव से बाहर बहुत बड़ी दुनिया है। तरह-तरह के लोग हैं, तरह-तरह के रहन-सहन। अनेक प्रकार के भोजन बनाने और खाने के तरीके। फिर तुम तो पढ़ी-लिखी हो। शहर में जाने को तुम्हारा मन नहीं करता क्या? मैं तो अनपढ़ हूँ, शहर में रहती हूँ। दो-चार साल में ही गाँव आती हूँ। अच्छे-अच्छे कपड़े पहनती हूँ। जब आती हूँ, परिवार के लिए भी कपड़े और शहर की अनेक वस्तुएँ दे जाती हूँ। यहाँ जंगल में क्या है? वही चावल हैं, सुबह खाओ, शाम खाओ या मत खाओ।'

उसने मुझे और भी बहुत सारे सब्जबाग दिखाए। मन में लालच जगाए। मैं बहकावे में आ गई और उनके साथ दिल्ली आने को तैयार हो गई। कई दिन मुझे उन्होंने अपने घर पर रखा। जब कोई पूछ लेता, 'ये लड़की कौन है?' तो बताती, 'हमारे गाँव की है। कहीं अच्छी सी नौकरी खोज रही हूँ। अच्छे घर की है, ऐसी-वैसी जगह थोड़े ही भेजूँगी।' मैं उनकी बात से मन-ही-मन बहुत खुश होती। फिर एक दिन वो मुझे वर्मा एजेंसी पर ले आई। बोली, 'वर्माजी! मैं तो इसके लिए कोई अच्छी जगह तलाश रही थी। पर चलो आप ही को सौंप रही हूँ। अब इसका ध्यान आप को ही रखना है और मेरा भी।'

मैं फिर सोचने लगी, इन चाचीजी का ध्यान रखने का क्या मतलब है? वर्मा अंकल इनका ध्यान कैसे रखेंगे? तब मेरी समझ में आ ही नहीं सकता था। बहुत बाद में समझ में आया कि चाची ने मुझे वर्माजी को बेच दिया था। वर्माजी मुझे जहाँ नौकरी पर भेजते, मेरी तय पगार का कुछ हिस्सा वर्माजी को मिलता और कुछ उस कथित चाची को। ध्यान रखने का मतलब था कि उनका हिस्सा पूरा मिले, समय पर मिले और नियमित मिले।

पता तो मुझे चल गया कि मैं जाल में फँस चुकी हूँ, परंतु कुछ कह नहीं पाई। अपने घर जाने को किराया नहीं था। एक महीने मेहनत के बाद कुल हजार रुपए पगार होती। दो सौ वर्मा के, दो सौ चाची के, बाकी छह सौ भी वर्मा मुझे देते नहीं थे। हर छह महीने में मिलेंगे, यह कहते थे। तुम्हारे हिस्से के बैंक में जमा हैं। जब घर भेजना हो तो ले लेना। कल से इस नए घर में आ गई। यहाँ सिर मुँड़ाते ही ओले पड़ गए।

अगले दिन मालकिन की सासू माँ ने सुबह से फिर चिल्लाना शुरू किया, ''नाश्ता करके इस काली को छोड़कर आ। तेरी बहू पे इतना भी काम नहीं होता। न बाल न बच्चे और काम ही क्या है? तू तो नौ बजे तक काम पर चला जाता है, शाम को आता है, ये सारे दिन क्या भाड़ झोंकती है? सारे दिन पलंग पर पड़ी टी.वी. देखती रहती है।''

बाबूजी बोले, ''अरी माँ, इसीलिए तो इसे ले आया। एक से दो भली। काम का काम हो जाएगा और सारे दिन अकेलापन भी नहीं रहेगा।'' अम्मा कहाँ चुप रहनेवाली थीं। बोलीं, ''क्या राजा रानी है? रानी का दिल लगाने के लिए इसे लाया है। क्या इसे पगार नहीं देगा?''

बाबूजी ने कहा, ''अम्माँ! मैं आपके बाद में बताऊँगा। अभी आप नहाओ-धोओ।'' मालिक ने मुझे संकेत कर दिया कि मैं वहाँ से हट जाऊँ। मैं फटाफट झाड़ू लेकर बाहर बरामदे में चली गई। परंतु मेरे कान और ध्यान वहीं लगा रहा। मैं सोच रही थी कि बुढ़िया तो माननेवाली है नहीं। हो सकता है, मुझे अभी वापस वर्मा एजेंसी जाना पड़ेगा।

बाबूजी ने अपनी माँ को धीरे से बताया, ''अम्माँ! अपनी बहू को मत बताना। वर्मा पर मेरे दस हजार रुपए उधार थे। सालभर से चक्कर काट रहा था। न ब्याज मिल रहा था न मूल। जब मैं बहुत पीछे पड़ा तो…,

''तो क्या उसने अपनी लड़की तुझे दे दी?'' अम्माँ चीखी। मैं दरवाजे के और पास आकर सुनने लगी।

''बोल, बोल, क्या किया उस कुत्ते वर्मा ने या तू जबरन उसकी लड़की उठा लाया? चुप क्यों है? सच बता…''

बाबूजी के गले में थूक अटक गया। भर्राए गले से हल्की सी आवाज सुनाई पड़ी।

''अम्माँ! वर्मा की लड़की नहीं है ये।''

''फिर वर्मा का इससे क्या मतलब?'' अम्माँ की आवाज अब भी ऊँची ही थी। बाबूजी सकपका गए।

''अम्माँ! मैं बताना नहीं चाह रहा था। वर्मा घरों में कामवाली सप्लाई करता है।''

''और पगार? कामवाली की पगार कौन देता है?'' बाबूजी की आवाज आई, ''पगार तो जिनके यहाँ काम करती हैं, वो ही देते हैं। मेरे दस हजार रुपए के बदले उसने मुझे दस महीने के लिए ये कामवाली लड़की दी है। बस काम करेगी और यहीं रहेगी। इससे पहले उसे वापस कर दूँगा तो मेरी रकम डूब जाएगी।''

अम्माँ फिर चिल्लाई, ''अच्छा! तो तू इसे खरीदकर लाया है। कल को यह बीमार हो गई, मर गई या भाग गई तो क्या होगा?'' माँ की बात सुनकर बाबूजी सचमुच घबरा गए, बोले, ''भगवान् करे ऐसा न हो, मेरी तो रकम ही मारी जाएगी।''

इधर मेरे तो पाँवों के नीचे की जमीन ही खिसक गई। मेरे सिर में हथौड़े से चलने लगे। सिर चकराने लगा। मुझे बेच दिया गया है। मुझे कोई पगार नहीं मिलेगी। इस घर में मेरे साथ कितना भी अन्याय हो, मुझे यहीं रहना होगा। अम्माँ की आवाज फिर आई, ''एक और बात पर तूने विचार नहीं किया नालायक! अगर इसके माँ-बाप पुलिस में शिकायत कर दें और पुलिस इसे खोजते हुए तेरे घर छापा मारे तो तू क्या जवाब देगा? कामवाली भी जाएगी और रकम भी। बदनामी भी होगी और सजा भी होगी।''

बाबूजी तो कहीं खो गए, गुमसुम हो गए, परंतु मुझे एक आशा की किरण दिखाई देने लगी। किसी तरह निकलने का अवसर मिल जाए तो मैं ही पुलिस में रिपोर्ट कर दूँ। वर्मा और बाबूजी दोनों जेल में चक्की पीसेंगे, परंतु न तो मुझे यह पता है कि मैं यहाँ किस कॉलोनी में हूँ? न पुलिस थाने की जानकारी है। मन में यह भी शंका है कि पुलिसवाले मेरी बात पर भरोसा करेंगे या नहीं। कहीं मुझे पुलिसवाले ही पकड़ लें और इज्जत लूट लें तो क्या होगा? अभी तक तो मैं सुरक्षित हूँ। अंत में किसी मौके की तलाश में रहना और तब तक चुपचाप इसी घर में काम करते रहने में ही मैंने अपनी भलाई समझी। यह भी सावधानी रखना जरूरी था कि मैंने उनकी बात सुन ली है। मैं चुपचाप अपने काम में लग गई। क्रोध तो मुझे चाची पर आ रहा था, जो बहकाकर मुझे यहाँ तक लाई।

बाबूजी डर तो गए थे। वर्मा के पास जाकर उन्होंने अपनी रकम वापस माँगी और मुझे वापस करने की बात रखी। पर वर्मा ने इनकार कर दिया। यह अनुमान मैंने बाबूजी की इस बात से लगाया, क्योंकि वो अम्माँ से कह रहे थे, ''क्या करें, बिका हुआ माल वापस नहीं होता।''

अम्माँ को मैंने पहली नजर में बहुत कठोर और क्रूर समझा था, पर मेरी कहानी से अम्माँ की सहानुभूति जाग गई। अम्माँ ने गाँव और गरीबी देखी थी। अम्माँ बोली, ''क्या नाम तेरा कम्मो! मैंने भी अपनी पाँच बेटी ब्याही हैं। मेरा पोता-पोती नहीं हुआ। तूने मुझे दादी कहा है तो मैं पोती की पूरी मदद करूँगी। अपनी चाची से बात कर, तू अपने गाँव जाना चाहे तो किराया मैं दूँगी। अगर रहना चाहे तो आराम से रह। कोई काम-काजी जरूरतमंद लड़का मिल जाए तो तेरी शादी करवा दूँगी। कई संस्थाएँ गरीब कन्याओं के सामूहिक विवाह कराती हैं। उसी में तेरा भी ब्याह अच्छे से संपन्न हो जाएगा।''

अम्माँ बोली, ''कोई बात नहीं, किसी और को तो बेचा जा सकता है।'' बाबूजी घबराए, ''यह काम मैं नहीं कर सकता। हम फँस जाएँगे। किसी तरह दस महीने काट लें और फिर वर्मा जाने...''

अम्माँ ने मुझे बुलाया, ''ऐ छोरी! इधर आ। सच-सच बता, तू कौन है, कहाँ की है? वर्मा के पास कैसे पहुँची?''

मुझे लगा सहानुभूति से, डर से, प्यार से या जैसे भी अम्माँ पूछ रही है तो सारी बात बता देने में ही भलाई है।

''अम्माँजी! मैं बँगलादेशी नहीं हूँ, असम की हूँ। नीच जाति की नहीं हूँ, ठाकुर हूँ। मेरी तीन बड़ी बहनें हैं, भाई नहीं है। पाँचवीं कक्षा तक पढ़ी हूँ। कमाने के लिए गाँव की एक चाची के साथ दिल्ली आ गई। उसने मुझे वर्मा के यहाँ मिलवाया। वर्मा के पास मेरे जैसी तीस-चालीस लड़कियाँ और बड़ी उम्र की औरतें हैं। वह हमें घरेलू कामवाली बनाकर काम के लिए भेजता है। कल ही मैं बाबूजी के साथ आई हूँ। जो काम आप बताएँगी, मैं वही करूँगी। मेरी पगार मुझे एक हजार रुपए मासिक बताई गई है। खाना और कपड़ा जो आप देंगे, वही लूँगी।'' अम्माँ ने टोका, ''लेकिन पगार तो तुझे मिलेगी नहीं, वो तो तेरा वर्मा पहले ही ले चुका है।'' मैंने धीरज धरकर बात बढ़ाई, ''वो देखी जाएगी। आपके घर मैं सुरक्षित तो हूँ। मालकिन और मालिक आप की इज्जत करते हैं। मैं भी आपकी पोती की तरह हूँ। आपकी सेवा करूँगी और आपका आशीर्वाद मिलेगा तो सब ठीक हो जाएगा।''

अम्माँ को मैंने पहली नजर में बहुत कठोर और क्रूर समझा था, पर मेरी कहानी से अम्माँ की सहानुभूति जाग गई। अम्माँ ने गाँव और गरीबी देखी थी। अम्माँ बोली, ''क्या नाम तेरा कम्मो! मैंने भी अपनी पाँच बेटी ब्याही हैं। मेरा पोता-पोती नहीं हुआ। तूने मुझे दादी कहा है तो मैं पोती की पूरी मदद करूँगी। अपनी चाची से बात कर, तू अपने गाँव जाना चाहे तो किराया मैं दूँगी। अगर रहना चाहे तो आराम से रह। कोई काम-काजी जरूरतमंद लड़का मिल जाए तो तेरी शादी करवा दूँगी। कई संस्थाएँ गरीब कन्याओं के सामूहिक विवाह कराती हैं। उसी में तेरा भी ब्याह अच्छे से संपन्न हो जाएगा।''

''मैं बोली, ''जब मुझे दादी मिल गई, परिवार मिल गया तो यहीं आपकी सेवा करूँगी, अपने गाँव कुछ बनकर ही जाऊँगी।''

एफ-६३, गली नंबर-३ पंचशील गार्डन,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

हिंदी में समाहित अध्यात्म, ज्ञान और विज्ञान

● मृदुल कीर्ति

आध्यात्मिक और दिव्य पक्ष : संस्कृत देवभाषा है। हिंदी संस्कृत से ही नि:सृत दिव्य भाषा है, देव वाणी है।

'अक्षरानामकारोस्मि', गीता १०/३३

वर्णमाला में सर्वप्रथम 'अकार' आता है। स्वर और व्यंजन के योग से वर्णमाला बनती है। इन दोनों में ही 'अकार' मुख्य है। 'अकार' के बिना अक्षरों का उच्चारण नहीं होता। 'अक्षरों में अकार मैं ही हूँ' वासुदेव का यह उद्घोष दिव्यता को स्वयं ही उद्घोषित और प्रतिष्ठापित करता है। बिना अकार के कोई अक्षर होता ही नहीं है। गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने 'अकार' को अपनी विभूति बताया है। अक्षरों में 'अकार' मैं ही हूँ, अकार वर्ण की ध्वनि संचेतन शक्ति है, जो वर्णों में प्राण-प्रतिष्ठा करती है और उसकी शक्ति अधिष्ठाता स्वयं ब्रह्म है, अत: 'अकार' ब्रह्म की विभूति है। दिव्य लक्षणों से युक्त होने के कारण ही इसे 'देवनागरी' कहते हैं।

'अकारो वासुदेवस्य'

'अकार' नाद तत्त्व का संवाहक है। 'अकार' के बिना शब्द सृष्टि आगे नहीं चलती और ध्वनि तरंगों से अकार ध्वनित होता है।

भागवत में लिखा है कि सर्व शक्तिमान ब्रह्माजी ने ॐकार से ही अंत:स्थ (य र ल व) ऊष्म (श ष स ह) स्वर (अ से औ तक) स्पर्श (क से म) तथा (ह्रस्व और दीर्घ) आदि लक्षणों से युक्त अक्षर साम्राज्य अर्थात् वर्णमाला की रचना की। वर्णमाला के दो भाग हैं—स्वर तथा व्यंजन।

ऋग्वेद के अनुसार : स्वर्यंत शब्दयंत अति स्वरा:।

स्वर वह मूल ध्वनि है, जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता। अन्य वर्ण की सहायता के बिना बोले जा सकनेवाले वर्ण स्वर हैं। व्यंजन बिना स्वर की सहायता के नहीं बोले जा सकते हैं। व्यंजन में 'अकार' मिलता है, तब ही आकार मिलता है। 'अक्षर' में प्राण प्रतिष्ठा नाद से होती है और नाद ब्रह्म है। अक्षरों में अकार स्वयं वासुदेव हैं। तब इसका नाश करनेवाला भला कौन है। हिंदी में 'अ' का अर्थ नहीं और 'क्षर' का अर्थ नाश है। अक्षर अर्थात् वह तत्त्व, जिसका नाश नहीं होता। अक्षर अपने में ही पूर्ण शाश्वत इकाई है। अक्षरों का क्षरण नहीं होने के कारण ही अक्षर को सृष्टिकर्ता माना गया है। अक्षर को वर्ण भी कहा जाता है। स्वर और व्यंजन के मिलने से ही शब्द सृष्टि का निर्माण

ख्यातिलब्ध लेखिका। वेद, उपनिषद्, हरिगीतिका आदि का पद्यात्मक रूपांतरण। वेदों पर शोध कार्य; अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी।

होता है।

'अकारो वासुदेवस्य उकारस्त पितामह'

वर्ण— व्-र-ण

व्-पूर्ण, र-प्रवाह, ण-ध्वनि अर्थात् वर्ण वह तत्त्व है, जिसमें पूर्णता है, ध्वनि है और ध्वनि का प्रवाह है।

वर्ण विचार - Orthography

शब्द विचार - Etymology

वाक्य विचार - Syntax

दार्शनिक पक्ष : पंच तत्त्वों में आकाश सर्वाधिक विराट्, विस्तृत और बृहत् है। व्योम की तन्मात्रा 'नाद' है और 'नाद ब्रह्म है'। सारे ही वर्ण ध्वनि जगत् का विषय हैं और ध्वनि पर ही आधारित हैं। यही नाद अथवा ध्वनि शब्द सृष्टि का आदि कारण है। नाद ब्रह्म के साधक आचार्य पाटल हैं। पंच तत्त्वों की तन्मात्राओं में आकाश का नाद तत्त्व सबसे अधिक सूक्ष्म और अनुभवगम्यता की परिधि में आता है। यह सूक्ष्म रूप में सकल आकाश में व्याप्त नाद ऊर्जा है। नाद ऊर्जा की शक्ति से ही बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की चमक की ध्वनि हम तक आती है, क्योंकि ध्वनि तरंगों में ही प्रकाश ऊर्जा का भी वास है। ब्रह्मांड और तरंगों से संचालित यह अनूठा जगत् है, इसमें तरंग वाद है। नाद कर्ण इंद्रिय का विषय है, किंतु जिसका प्रभाव पूरे मन, देह और चेतना पर होता है। वचन का प्रभाव जन्मों-जन्मों तक पीछा करता है। तभी कहा है कि वाणी की पवित्रता का नाम सत्य है। अक्षरों की दार्शनिकता को थोड़ा और गहराई से देखते हैं। अब हमें इनके उच्चारण में यौगिक पक्ष भी मिलता है।

यौगिक पक्ष : प्राण वायु के संतुलन और प्रश्वास-नि:श्वास के नियमन को योग कहते हैं। हिंदी का इससे क्या संबंध है, आइए देखते हैं।

नाभि से लेकर कंठ तक वाणी का मूल केंद्र है। नाभि से ही

बालक को गर्भ में पोषण मिलता है। मेरुदंड के अष्ट चक्रों की संरचना में नाभि के क्षेत्र को मणिपुर क्षेत्र कहा गया है। इस बिंदु पर अनेकों शक्तिरूपी मणियों के केंद्र हैं, कुंडलिनी आदि। उन्हीं में एक वाणी तंत्र है। लगता है कि वाणी कंठ से निकल रही है, किंतु मूल नाभि में है। आइए, इसे स्वयं करके ही पुष्ट करते हैं।

आप 'अ' बोलिए— अब अनुभव करिए कि आपकी नाभि अवश्य हिलती है। यही 'अकार' का उद्‌भव केंद्र है। जैसा कि पहले कहा है कि बिना 'अकार' के वर्ण आकार नहीं ले सकते। आपके बोलने की चाह करते ही नाभि केंद्र उतेजित होता है और यहीं प्राणवायु के सहारे से क्रमशः कंठ और होंठों तक ऊपर जाते हुए स्वरों का स्वरूप ही भाषा और वार्त्तालाप बनता है।

एक और महत्त्वपूर्ण अनुभव करिए—अ से अः तक बोलिए तो नाभि से उत्तेजित वाणी तंत्र क्रमशः कंठ तक जाता है। जो सबसे पहले नाभि पर दबाव पड़ता है। वह 'कपाल भाती' का ही रूप है। अं भ्रामरी का रूप है। अः श्वास को बाहर निकलने का रूप है। हिंदी और संस्कृत बोलने में प्राण वायु का सामान्य से कहीं अधिक प्रश्वास और निःश्वास होता है। यह प्राणायाम का स्वरूप है। मस्तिष्क को नासाछिद्र की श्वसन प्रक्रिया प्रभावित करती है। जब चंद्र बिंदु का उच्चारण होता है तो इसकी झंकार की तरंगें मस्तिष्क के स्नायु तंत्र तक जाती हैं। विसर्ग का उच्चारण नाभि क्षेत्र से ही है, बिना नाभि का क्षेत्र हिले स्वः नहीं बोला जा सकता है।

हिंदी के वर्णों का समायोजन अद्‌भुत है। वर्गों में विभाजित वर्गीकरण कितना वैज्ञानिक है, यह देखने योग्य है :

कंठ 'क' वर्ग क ख ग घ इस वर्ग का उच्चारण कंठ मूल से है।

तालु 'च' वर्ग च छ ज झ इस वर्ग का उच्चारण तालु से है।

मूर्धा 'ट' वर्ग ट ठ ड ढ ण इस वर्ग का उच्चारण मूर्धा (जीभ के अग्र भाग) से है।

दंत 'त' वर्ग त थ द ध न इस वर्ग का उच्चारण दोनों दाँतों को मिलाने से होता है।

होंठ 'प' वर्ग प फ ब भ म इस वर्ग का उच्चारण दोनों होंठों को मिलाने से ही होता है।

हमारे शरीर में दो प्रकार की प्राण और अपान नाम की वायु (वातः) चल रही है। इन सबका संयमन और नियमन का समीकरण इस पद्धति में है। यह हिंदी के 'यौगिक पक्ष' की पुष्टि है। हिंदी भाषा के मनोवैज्ञानिक, निर्दोष और व्याकरण के शाश्वत आधारों की पुष्टि है। पुरातन भाषाविद् के मनीषियों की अद्‌भुत ज्ञान की ज्ञान प्रवणता को नमन है।

ज्ञान पक्ष : जैसे बीज में चैतन्य समाहित, वैसे हिंदी के प्रत्येक शब्द में उसके भाव के गहरे अर्थ समाहित हैं। जहाँ तक नाद है, वहाँ तक जगत् है। हिंदी के शब्दों के मूल उद्‌गम स्रोत में जाओ, चकित कर देनेवाले तथ्य मिलेंगे। सारा जीवन जिन शब्दों का प्रयोग तो किया, पर वह किन पदार्थों से बने और क्या भावार्थ हैं, इनसे अनजान रहे। निहित अर्थों को जानकर अधिक आनंद पा सकते हैं।

हिंदी का प्रत्येक शब्द गूढ अर्थगर्भा है। बीज की तरह है, जिसमें कथित आशय के बीज समाहित हैं। सार्थक शब्दों और समाहित भावों के अगणित शब्द हैं। कुछ को देखिए—

प्रकृति : कृति अर्थात् रचना, प्र-कृति से प्रथम भी कोई है। अर्थात् प्रभु।

भगवान् : भ-भूमि, ग-गगन, व-वायु, अ-अग्नि, न-नीर = भगवान्, अर्थात् जो पंच तत्त्वों का अधिष्ठाता है, उसे भगवान् कहते हैं।

विष्णु : वि-विशुद्ध, ष्णु-अणु = विष्णु, अर्थात् जिसका अणु-अणु विशुद्ध है।

खग : ख-आकाश, ग-गमन, अर्थात् जो आकाश में गमन करता है।

पादप : पाद-पग, अपः-जल, जो पग से जल पीता है अर्थात् पादप, उदाहरण के लिए वृक्ष।

अग्रज : अग्र-पहले, ज-जन्म = पहले जिसका जन्म हुआ हो अर्थात् बड़ा भाई।

अनुज : अनु-अनुसरण, ज-जन्म, अर्थात् छोटा भाई।

वारिज : वारि-जल, ज-जन्म = जल में जो जन्मा हो, अर्थात् कमल, नीरज, जलज, अंबुज भी इन्हीं अर्थों के अनुमोदन हैं।

वारिद : वारि-जल, द-ददातु, अर्थात् देनेवाला = जो जल देता है अर्थात् बादल, जलद, नीरद, अंबुज भी यही अर्थ देते हैं।

जगत् : ज-जन्मते, ग-गम्यते इति जगस्तः, अर्थात् वह स्थान जहाँ जन्म होता है और जहाँ से गमन होता है, वह जगत् कहलाता है।

अर्थ गर्भा शब्दों के विस्तार में जाओ तो स्वयं में ही एक ग्रंथ बन जाए, इस लेख में इनका विस्तार कदापि संभव नहीं। मात्र कुछ शब्द पुष्टि के लिए हैं कि हिंदी कितनी रत्नगर्भा है, कितनी गूढ़गर्भा है। सभी ज्ञान शब्दों में ही तो समाहित है। प्रत्येक अक्षर का एक अधिष्ठित देवता भी है। अतः कोई अकेला अक्षर भी पूरा दर्शन और अर्थ का पर्याय है। जैसे—अ का अर्थ ना है—अजर, अमर, अपूर्ण अर्थात् जो जर्जर न हो, मरे नहीं, पूरा न हो आदि।

पाँच बाल सनकादिक मुनियों ने ब्रह्मा से जब ज्ञान लिया तो ब्रह्माजी ने तीन बार केवल 'द', द, 'द' ही कहा, जो दान, दया और दमन का संदेश है।

वैज्ञानिक पक्ष : वर्णमाला का यह वैज्ञानिक पक्ष तो महा अद्‌भुत है, सच कहें तो विस्मयकारी है।

अ से ह का संतुलन, जिसमें एक बार अकार है तो एक बार वर्ण का अंतिम अक्षर हकार आता है।

अकार और हकार का संतुलन और संयोजन—अकार में कोमल और हकार में कठोर का निरूपण है। एक बार कोमल और एक बार कठोर है। प्रत्येक वर्ग में पहला वर्ण वाद, दूसरा प्रतिवाद, तीसरा संवाद और चौथा अगति वाद है।

क ख ग घ

ka kha ga gha

च छ ज झ
cha chha ja jha
ट ठ ड ढ
ta thha da dhha
त थ द ध
ta tha da dha
प फ ब भ
pa pha ba bha

'अ' से 'ह' तक : 'अ' से 'ह' तक के सूत्र को यदि मिलाओ तो अहं बनता है। वस्तुत: सृष्टि संरचना का मूल भी अहं ही है। यहाँ अहं का अर्थ सात्त्विक है। जो अस्तित्व में आने का द्योतक है, अर्थात् किसी तत्त्व का अस्तित्व में आना। इसी अर्थ में सृष्टि संरचना हुई तो यही सात्त्विक अर्थ का निरूपण हिंदी के अस्तित्व की संरचना का निरूपण करती है। वह सृष्टि संरचना है तो यह शब्द सृष्टि संरचना है।

हिंदी अ से ह तक—अर्थात् अस्तित्व में आना।

अ और ह के ऊपर बिंदु लगते ही अहं होता है। यह बिंदु विस्तृत अर्थों में शून्य होने का द्योतक है। संकुचित अर्थों में अभिमान का द्योतक है। अहं अस्तित्व के अर्थ में कभी जाता नहीं है, इसे किसी उच्चतर लय में करना होता है। इसका पूर्ण विलय कभी नहीं होता।

एक से एक बढ़कर प्रकांड भाषाविद्, पाणिनी जैसे व्याकरण के प्रणेता ने अद्भुत ज्ञान भारतीय संस्कृति को दिया। जिसका एक अंश भी हम ठीक से समझ भी नहीं पाते हैं। हम भाषा-विज्ञान की अकूत संपदा सँजोए हुए हैं। हिंदी का मूल्यांकन सच पूछो तो किसी में कर पाने की क्षमता भी नहीं। राजनीतिक दाँव-पेंच, वोट की कुटिल नीति की बहुत बड़ी कीमत हमारी संस्कृति और भाषा को चुकानी पड़ रही है। अभी भी देर नहीं हुई है, क्योंकि जागरूक होते ही शक्ति संचरित होने लगती है। अब तो कंप्यूटर की तकनीक से सबकुछ सरल और सहज हो गया है। कंप्यूटर की तकनीक में संस्कृत को सर्वाधिक अनुकूल माना गया है। प्रवासी, जो भी हिंदी प्रेमी है, कभी एक-एक रचना को लालायित रहते थे। आज एक क्लिक से सभी महाग्रंथ सुलभ हैं। अत: हिंदी का विकास, रुचि और सजगता अब प्रगति पर ही है। हिंदी से ही तो 'मौलिक' भारत का परिचय और अस्तित्व मुखरित है। हमें गर्व है कि हिंदी जैसी दिव्य भाषा हमारी भाषा है।

4854 Kentwood Drive
Marrietta GA 30068

गीत

नीम खड़ा रोता है

● शरद नारायण खरे

दिल छोटे,पर मकाँ हैं बड़े, सारे भाई न्यारे!
अपने तक सारे हैं सीमित, नहीं परस्पर प्यारे!
दद्दा-अम्माँ हो गए बोझा,
कौन रखे अब उनको
टूटे छप्पर रात गुजारें
परछी में हैं दिन को

हर मुश्किल से दद्दा जीते, पर अपनों से हारे!
अपने तक सीमित हैं सारे, नहीं परस्पर प्यारे!

मीठा बचपन भूल चुके सब,
वर्तमान की बातें
दौलत, धरती, बैल-ढोरवा,
की ख़ातिर आघातें

अपनी करनी से बेटों ने, फैलाए अँधियारे!
अपने तक सीमित हैं सारे, नहीं परस्पर प्यारे!

खेत सींच रहे, पर दिल सूखे,
जगह-जगह हरियाली
रिश्ते तो अब रिसते हर दिन,
रची अमावस काली

कोर्ट-कचहरी रोज़ाना ही, हृदय-मुकदमे हारे!
अपने तक सीमित हैं सारे, नहीं परस्पर प्यारे!

बिलख रहीं चौपालें अब तो,
नीम खड़ा रोता है
पीपल वाला मंदिर भी तो,
रोज श्राप देता है

आज वक्त की इस देहरी पर, सब करनी के मारे!
अपने तक सीमित हैं सारे, नहीं परस्पर प्यारे!

विभागाध्यक्ष इतिहास
शासकीय महिला महाविद्यालय
मंडला-४८१६६१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४२५४८४३८२

स्मरण

डॉ. हरदयाल : विनम्र विद्वत्ता

● हेमंत कुकरेती

काव्य-लेखन से शुरुआत करनेवाले डॉ. हरदयाल ने हिंदी आलोचना में महत्त्वपूर्ण स्थान अर्जित किया। किसी जकड़बंदी में उलझे बिना उन्होंने विपुल मात्रा में लेखन किया। वे जितने बड़े लेखक थे, उनका अध्यापकीय कद भी उतना ही ऊँचा था। सच्चे अर्थों में डॉ. हरदयाल के रहन-सहन व उठने-बैठने में सादगी थी। वे कॉलेज से लगभग पाँच किलोमीटर दूर वेस्ट ज्योति कॉलोनी स्थित अपने आवास से साइकिल से ही कॉलेज आते-जाते थे। आखिरी समय तक यह चलन बदला नहीं था।

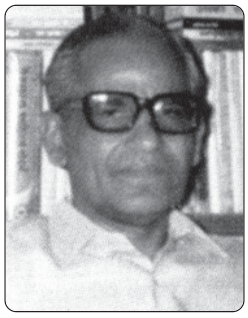

स्व. डॉ. हरदयाल

साफ-सुथरे, सामान्य वेशभूषा वाले डॉ. हरदयाल की सादगी दिखावटी या ऐसी कातिलाना सादगी नहीं थी, जो सामनेवाले को हीनता का बोध कराए। उस मामूली व्यक्ति में भी अगर कुछ गैर-मामूली है, उसे ढूँढ़ लेते थे और रेखांकित करते थे। उनका मानना था कि जिस प्रकार लेखक अपने शब्दों से अपना परिचय गढ़ता है, अध्यापक अध्यापन से अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

आजकल जबकि कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में न पढ़ाने के बहाने आविष्कृत किए जा रहे हैं। कक्षा न लेनेवाले अध्यापक सत्र के अंत में छात्रों को लोकप्रिय गाइडों की पृष्ठ-दर-पृष्ठ प्रतिलिपियाँ देकर अपने अध्यापक कर्म को 'सार्थक' कर रहे हैं, ऐसे में डॉ. हरदयाल जैसे प्राध्यापक और भी प्रासंगिक हो उठते हैं। इन पंक्तियों का लेखक उस कॉलेज में १९९१ में अध्यापक हो गया था; डॉ. हरदयाल उस कॉलेज के हिंदी विभाग की शान थे। सन् २००४ में डॉ. हरदयाल सेवानिवृत्त हुए तो लगभग डेढ़ दशक तक एक ही विभाग में उनके साथ पढ़ाने का सौभाग्य मिला। डॉ. हरदयाल कक्षा लेने में इतने पाबंद थे कि एक अंतिम उदाहरण थे! वे पूरा समय कक्षा में उपस्थित रहते। ऐसा ही एक अनुभव है—उस समय मैं शोध कर रहा था, मेरे शोध-निदेशक डॉ. नरेंद्र मोहन ने एक लेख डॉ. हरदयालजी से ले आने के लिए मुझे भेजा। जब मैं कॉलेज पहुँचा तब डॉ. हरदयाल कक्षा ले रहे थे। मैं कक्षा में घुसने लगा तो नाम पूछकर उन्होंने कहा, 'आप स्टाफरूम में चाय पीजिए; मैं कक्षा लेकर आता हूँ।' वे पूरा समय लेकर आए। अपने समूचे कार्यकाल के दौरान अध्यापन और अध्ययन-लेखन के संदर्भ में वे समय की सुनिश्चितता रहे।

एक अध्यापक के नाते हम लोग कई बार छूट ले लेते थे, लेकिन डॉ. हरदयाल के साथ ऐसा कभी नहीं देखा गया। उनकी और मेरी कक्षाएँ साथ-साथ होती थीं। छात्रों की हाजिरी जमा करते समय मैं अपने विवरण को डॉ. हरदयाल से मिला लेता था, ताकि कोई चूक न हो जाए, क्योंकि इस मामले में डॉ. हरदयाल कुछ भी झूठ नहीं लिखते थे, इसलिए हमेशा अचूक होते थे। उन्होंने किसी दिन तीन में से दो कक्षाएँ ली होतीं तो छोड़ी हुई कक्षा के सामने उन्होंने कक्षा न होने या छूटने का सही कारण स्पष्ट शब्दों में लिखा होता था। वे अकसर कहते थे—लेखक, संपादक या अध्यापक, नेता होने से या किसी और जिम्मेदारी के चलते एक अध्यापक को कक्षा न लेने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता। उसकी नैतिक भूमिका और जवाबदेही बढ़ जाती है। उनके परिचित एक सज्जन किसी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर हो गए, लेकिन वे कक्षा लेने से अधिक भाषणबाजी में व्यस्त रहते थे। कई-कई दिन तक अनुपस्थित रहते थे और कॉलेज में होने के बावजूद कक्षा की बजाय स्टाफरूम में बैठकर बड़ी-बड़ी बातें बनाया करते थे। डॉ. हरदयाल ने उनके बारे में बताया कि उन सज्जन की प्रारंभिक नियुक्ति में मेरा ही योगदान था। लेकिन डॉ. हरदयाल इसे अपने द्वारा हो गए अक्षम्य अपराध की तरह 'गिल्ट' महसूस करते थे।

जिस पद पर मेरी नियुक्ति हुई, वह काव्यशास्त्र-मर्मज्ञ डॉ. रामसागर त्रिपाठी के कई वर्ष पहले सेवाकाल समाप्ति के बाद पुनः सृजित किया गया था। इस पद को 'क्रिएट' करने में डॉ. हरदयाल और डॉ. बिंदुमाधव मिश्र का योगदान था। उस पद पर पहली तदर्थ नियुक्ति डॉ. हरदयाल की एक शिष्या की हुई। मुझे अंशकालिक प्रवक्ता के तौर पर नियुक्त किया गया। स्वाभाविक रूप से डॉ. हरदयाल एक सुपरवाइजर के नाते अपनी शोध-छात्रा को नियुक्त करना चाहते थे, लेकिन प्रो. नित्यानंद तिवारी ने स्थायी नियुक्ति के समय जब डॉ. हरदयाल से पूछा कि हम दोनों में बेहतर कौन है तो डॉ. हरदयाल ने बड़े दिल और निष्पक्षता का परिचय देते हुए मेरा नाम लिया।

वे अंत तक लिखते-पढ़ते रहे। रिटायरमेंट वाले दिन भी उन्होंने पढ़ाया। अपने समय में डॉ. हरदयाल दिल्ली विश्वविद्यालय के दायरे से ऊपर उठकर अकादमिक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण उपस्थिति बन चुके थे। दिल्ली विश्वविद्यालय के 'उपनिवेशों' में गिने जानेवाले जमनापार शाहदरा स्थित 'प्रख्यात' श्यामलाल कॉलेज के हिंदी विभाग को डॉ. हरदयाल ने अकादमिक ऊँचाइयाँ दीं। यह विडंबना ही है कि कॉलेज में उनकी नियुक्ति लगभग एक दशक तक मोदी कॉलेज में स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन करने के बाद हुई। यह भी विसंगति है कि वे वर्षों तक दिल्ली विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाते रहे, लेकिन जिस तरह डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी विभाग में रहते हुए रीडर ही रिटायर हो गए, डॉ. हरदयाल विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में नियुक्ति नहीं पा सके। इसका कारण उनकी अकादमिक प्रखरता ही थी, जिससे कई कथित विद्वानों की कथित

विद्वत्ता के झुलसने का खतरा था।

२४ मार्च, १९३९; ग्राम जगत, जिला बदायूँ (उत्तर प्रदेश) में जनमे डॉ. हरदयाल लगातार पढ़ने-लिखनेवाले अध्यापक-लेखकों में गिने जाते रहे। यह इसलिए नहीं कि वे एम.ए., पी-एच.डी., डी. लिट्., जैसी भारी-भरकम डिग्रीधारी थे बल्कि अपने चिंतन और लेखन में वे स्वयं को अद्यतन करते रहे। आधुनिक हिंदी गद्य-साहित्य; हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य, आधुनिक बोध और विद्रोह, कालजयी कथाकृति और अन्य निबंध; समकालीन अनुभव और कविता की रचना-प्रक्रिया; हिंदी कविता : आठवाँ दशक; साहित्य और सामाजिक मूल्य; हिंदी कविता की प्रकृति; आलोचना-कर्म; आधुनिक हिंदी कविता जैसे महत्त्वपूर्ण आलोचना ग्रंथ तथा अखबार में अँधेरा; फूल-पत्थर और कंकाल आग जैसे उल्लेखनीय कविता-संग्रहों के अलावा उन्होंने डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित हिंदी साहित्य के इतिहास को परिष्कृत कर उसे समकालीन बनाया।

डॉ. हरदयाल की रचना और आलोचना जीवनानुभवों से उपजी है। जीवन और लेखन में वे अच्छा-अच्छा नहीं, खरा-खरा बोलते थे। इस खरेपन की कीमत उन्होंने चुकाई थी! गुस्सा उन्हें भी आता था, लेकिन वे अपने क्रोध को ईंधन बना लेते थे। वे कहते थे कि बेवजह क्रोध व्यक्ति के अज्ञान को और भी गाढ़ा कर देता है। गुस्सा भी सही वक्त पर और उचित होना चाहिए। सुंदर की बजाय सही के पक्ष में हाथ उठानेवाला यह रचनाकार जानता था कि जो सही है, वही वास्तविक अर्थ में सबके लिए सुंदर होगा। उनकी एक छोटी कविता 'फूल और शूल' इसी जीवन-दृष्टि को प्रस्तावित करती है—

मैंने अपने घर के सामने
रोपीं बोगनबेलिया की कई टहनियाँ
सब मर गईं
जड़ पकड़ी सिर्फ एक ने
वह भी तुम्हारे द्वार के पास
बढ़ने लगी तीव्र गति से
लगा कि अब खिलेंगे
लाल-लाल फूल
इस पर
तभी एक दिन देखा
तोड़ दी हैं टहनियाँ उसकी तुमने
इस शिकायत के साथ कि
काँटे लगाए हैं हमारे द्वार पर
मैं चुप रहा यह सोचता हुआ
जहाँ मैंने देखे थे फूल
वहाँ तुम्हें दिखाई दिए शूल
सिर्फ शूल!

ऐसी उचित दृष्टि और सम्यक् दृष्टिकोण वाले डॉ. हरदयाल लिजलिजे और केंचुए किस्म के लोगों से दूरी बनाए रखते थे। उन्होंने अपनी रीढ़ हमेशा सीधी रखी—

वरिष्ठ रचनाकार। अब तक पाँच कविता-संग्रह प्रकाशित। भारत-भूषण सम्मान, कृति सम्मान, केदार सम्मान से सम्मानित। कविताएँ देसी-विदेशी भाषाओं में अनूदित। संप्रति श्यामलाल कॉलेज (दि.वि.वि.) से संबद्ध। 'साहित्य अमृत' (मासिक) के संयुक्त संपादक।

मैंने कोई अपराध नहीं किया है
सिर्फ अपना मस्तक ऊँचा रखा है
जिसे सच समझा है
उसे बेलाग कहा है,
मुझे इसी की सजा मिली है
कुरसीनशीनों ने
स्वाभिमान को विद्रोह समझा है
असहमति को अहंकार माना है।

कुरसीवादियों की असलियत उजागर करते हुए डॉ. हरदयाल कहते हैं—'उन्होंने चाहे हैं केंचुए/जिन्हें वे अपनी निर्वीर्य वीरता के नीचे/सदर्प कुचल सकें/और उन्हें डसा न जाए/मणियाँ चाहिए कुरसीनशीनों को/लेकिन मणिधरों से वे डरते हैं/जरा सा छेड़ने पर/मणिधर फन तानकर खड़े जो हो जाते हैं/जरा सा दबाए जाने पर/डस जो लेते हैं।' प्रतिभा का तेज सहना जैसे-तैसे सफल हो गए। निस्तेज लोगों के बस की बात नहीं है, क्योंकि—'वे सिर्फ मणिधर नहीं हैं/विषधर भी हैं/उन्हें गलहार बना सके जो/वह तो नीलकंठ ही हो सकता है/और आजकल नीलकंठ नहीं होते/होते हैं सिर्फ आत्मवंचित भस्मासुर।'

स्पष्ट है कि डॉ. हरदयाल आजीवन सफलता नहीं, सार्थकता ढूँढ़ते रहे।

दिनांक ६ जुलाई, २०१६ बुधवार को कॉलेज से सेवा अवकाश के लगभग १३ वर्ष बाद ७८ वर्ष की अवस्था में डॉ. हरदयाल ने उसी कॉलेज में अंतिम साँस ली। ५५ मिनट के कालांश में विभाजित नौकरी से वे २००४ में मुक्त हो चुके थे, लेकिन कॉलेज में महीने में दो दिन अवश्य आते थे। कॉलेज के पास स्थित शाहदरा सब्जीमंडी से फल इत्यादि खरीदते थे। जिसे वे 'फ्रूटफुल एक्सरसाइज' कहते थे। नए अध्यापकों से मिलते-जुलते थे, साहित्य में क्या चल रहा है और लिखने-पढ़ने के बारे में हाल-चाल देते-लेते थे। अभी उनके अंतिम संस्कार से लौटा हूँ, लेकिन लग ही नहीं रहा कि डॉ. हरदयाल चले गए। वे अकसर कहते थे कि अच्छा अध्यापक वही है, जो हमेशा तैयारी के साथ कक्षा में जाए। लग रहा है कि वे अपनी आगामी कक्षा की तैयारी करने के लिए गए हैं!

ए-३/५०, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ०९८१८५४०१८७

सूरज

● प्रमोद कुमार अग्रवाल

उत्तर प्रदेश का गाँव तिलैथा। कुल आबादी पाँच हजार। बेतवा नदी से केवल आधा किलोमीटर दूर यह गाँव प्रकृति की गोद में बसा है। इसे बेतवा के शाश्वत प्रवाह का वरदान प्राप्त है। यह गाँव छोटा भारत, इसमें सभी जातियों के निवासी हैं। समाजवादी सरकार ने इसे 'समाजवादी गाँव' घोषित कर दिया, पर गाँव में समता के चिह्न अदृश्य हैं। कुछ यादवों के पास ही गाँव की कृषि जमीन केंद्रित है। वे अन्य लोगों से खेती करवाते हैं। ब्राह्मणों के इक्का-दुक्का परिवार हैं, उनके पास थोड़ी सी जमीन है, पर वह तपशील जाति के लोगों से अधिक हैं। अल्पमत में होकर ब्राह्मण पुरोहिताई से गुजर-बसर न होने के कारण उन्होंने पास के कस्बे बरुआसागर में मुनीमगिरी जैसे छोटे-मोटे काम पकड़ लिये।

सुखलाल ब्राह्मण वंश के थे। घर की खेती कुल तीन एकड़ थी। जिस पर पच्चीस सदस्यों के तीन परिवार आश्रित थे। अत: सुखलाल ने बरुआसागर मंडी में तीन हजार रुपए माहवारी पर मुनीमगिरी कर ली। सुखलाल प्रतिदिन चार रोटी और एक सब्जी या अचार बाँधकर साइकिल से तिलैथा से आठ बजे प्रात: निकल जाते तथा रात में सात बजे घर वापस लौटते। उनका लड़का बरुआसागर स्कूल में पढ़ने पैदल ही जाता। वे कभी-कभी उसे अपने साथ साइकिल पर ले जाते। साइकिल पर या पैदल पाँच किलोमीटर का रास्ता उन्हें पसीने से तर-बतर कर देता। पर पेट के लिए सबकुछ करना पड़ता है। सुखलाल का पुत्र आदित्य पढ़ने में कुशाग्रबुद्धि निकला। वह पाँचवीं कक्षा में प्रथम रहा।

समाजवादी सरकार के शासन में आने पर असामाजिक तत्त्व सक्रिय हो जाते। जाति-बिरादरी के यदुवंशी स्वयं को सीधा मुख्यमंत्री से जोड़ते। स्थानीय सांसद या विधानसभा सदस्य से तो वे आसानी से अपना नाता-रिश्ता निकाल लेते। इस कारण पुलिस से लेकर सभी सरकारी महकमों के अधिकारी एवं कर्मचारीगण उनसे डरते। कम-से-कम वे उनसे उलझने का प्रयत्न नहीं करते।

सुखलाल का एक पशुघर था, जिसमें बीस वर्षों से उनके परिवार की गायें, बैल, भैंस बँधते। एक दिन गाँव के एक दबंग पड़ोसी ने पशुघर की जमीन के आधे भाग पर कब्जा कर लिया। सुखलाल पंडित खूब गिड़गिड़ाए, पर उस दबंग पर कोई असर नहीं हुआ। ग्राम प्रधान भी यादव था, थानाध्यक्ष भी यादव। केवल लेखपाल ही यादव नहीं था, पर उसने प्रधान की सिफारिश के बिना कोई काररवाई करने से मना कर दिया, क्योंकि उसकी बहियों में यह जमीन पंचायत के नाम चढ़ी थी। बस

भारतीय प्रशासनिक सेवा से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् साहित्य-रचना के माध्यम से समाज के उत्थान में समर्पित। हिंदी एवं अंग्रेजी में प्रायः पचास पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें तीन खंडों में प्रकाशित एक दर्जन उपन्यास भी सम्मिलित। भूमि सुधारों पर अंतरराष्ट्रीय ख्याति के विचारक। संप्रति वैश्विक साहित्य पत्रिका के संपादक तथा वैश ग्लोबल विधि प्रतिष्ठान के प्रबंध साझीदार।

सुखलाल एक दिन रात्रि में अपनी धर्मपत्नी के सामने खूब रोए, तब आदित्य सोनेवाला ही था। वह उस रात सो न सका, बिस्तर पर करवटें बदलता रहा, क्योंकि उसके माता-पिता पूरी रात दु:ख में जागरण करते रहे। सूर्योदय होने पर उसने माँ से कहा, ''मैं अपने पिता को उनका हक दिलाकर रहूँगा।'' बेटे के भीष्म निश्चय को सुखलाल ने सुन लिया। पंडित सुखलाल ने सलाह दी, ''बेटा, यह गाँव बहुत गंदा है। तुम इस कीचड़ में न फँसो। हमारे बस में इनसे लड़ने का नहीं है। तुम्हारे बस में एक ही बात है। तुम पढ़-लिखकर आई.ए.एस. बनो और इन्हें दिखा दो कि हम इनसे कितने बड़े हो गए हैं।'' आदित्य ने प्रतिज्ञा की, ''पिताजी, मैं आपके स्वप्न को साकार करूँगा।''

अब समस्या थी कि आदित्य अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए रात्रि में कैसे पढ़ाई करेगा। आदित्य के भाग्य से समाजवादी गाँव होने के कारण सरकार की ओर से सूर्य की रोशनी से चलनेवाले बिजली के बीस खंभे लगा दिए गए, जिन पर लगनेवाली बत्तियाँ रात्रि में अपने-आप जल जाती थीं। उन्हें कोई चुरा भी नहीं सकता था। वे मजबूती से खंभों में सटी थीं। आदित्य इस सूर्य रोशनी के नीचे बैठकर पढ़ने लगा। मन में कसक एवं हृदय में दृढनिश्चय उसको पुस्तकों में ध्यान केंद्रित करने में अत्यंत सहायक था। वह प्रतिदिन रात्रि सात बजे से दस तक दीप खंभों (लाइट पोस्ट) के नीचे बैठकर अध्यवसायपूर्वक अध्ययन करता। गाँव के लोग उसे 'पढ़ाकू' कहने लगे। कुछ लोग प्रशंसा से तो कुछ कटाक्ष में। जब चलते-फिरते कोई पूछता तो वह कहता, ''यह तो सूरज है। यह प्रकाश क्रांति की शुरुआत है। सुना है कि सूर्य भगवान् हमारी आवश्यकता का दस हजार गुना प्रकाश भेजते हैं। यदि हम कुछ उसका अंश ही उपयोग कर लें तो घरों में और खेतों में बिजली गुल होने की समस्या का समाधान ही हो जाएगा।''

आदित्य को देखते-देखते गाँव के दो-तीन लड़के भी सूरज के नीचे

बैठकर पढ़ने लगे। गाँव में विद्यार्थियों के माता-पिता अपने लड़के-लड़कियों को आदित्य की भाँति पढ़ने के लिए कहते, पर अध्ययन करना आसान नहीं है। जब तक एकाग्रता से अध्ययन नहीं किया जाता, वह मस्तिष्क रूपी कंप्यूटर में संगृहीत नहीं होता। आदित्य के मन में पिता के अपमान का बदला लेने का संकल्प हिलोरें मारता। उसके सामने छोटी-मोटी कठिनाइयों, असुविधाएँ तथा भूख-प्यास वाष्पित हो जाते। उसके गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर एक दिन आदित्य के पिता ने कहा, ''बेटा, इतनी मेहनत करने की जरूरत नहीं। भगवान् हमारे साथ अन्याय करनेवालों को स्वयं दंड देगा और वह भी, तुम देखना, हमारे जीते-जी।''

''पर पिताजी, बात तभी बनेगी, जब मैं, आपका पुत्र आपके साथ अन्याय का स्वयं प्रतिकार करूँगा। प्रत्येक पुत्र का कर्तव्य है कि वह पिता की इच्छा को पूरा करे। यदि पिता को उसके लिए मुँह से कहना पड़े तो पिता-पुत्र का संबंध कमजोर पड़ जाएगा। मुझे पता है कि आप अपने साथ अन्याय के कारण दिन-रात घुलते रहते हैं। न आप सुबह दूध लेते हैं और रात में खाना भी ठीक तरह से नहीं खाते हैं।''

''पर बेटा, तुम्हारा रास्ता बहुत लंबा तथा ऊबड़-खाबड़ है। अपने पड़ोस के लड़के को देखा, वह कलक्टरी के इम्तिहान में बैठा अवश्य पर बैंक का क्लर्क बन पाया। इसलिए तुम अपने हृदय में बदले की अग्नि न धधकने दो। इससे तुम्हारा शरीर खराब होगा। हम गरीब हैं। अन्याय सहना गरीब की नियति है। हमारे पूर्वज भी ऐसी ही जिंदगी गुजार गए। तुम्हें तो बहुत आगे तक जाना है। कलक्टरी की पढ़ाई करने के लिए सुना है, रात-दिन पढ़ना पड़ता है। चौबीस घंटे में से अठारह घंटे। तब तुम्हारा यह शरीर साथ नहीं देगा, तो तुम कैसे इतने घंटे लगातार बैठकर पढ़ सकोगे ? अत: मेरा बदला मुझे ही लेने दो। तुम खुश रहो, खेलो, खाओ।''

''पिताजी गाड़ी अब बहुत दूर निकल चुकी है, जहाँ से लौटना मुश्किल है। हाँ, मैं आपकी सलाह सिर-माथे पर रखूँगा तथा पढ़ाई के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखूँगा। विशेषत: अच्छी, सूरज की उचित रोशनी में ही पढ़ूँगा, कम में नहीं। यह रोशनी इसलिए कम हो जाती है, क्योंकि सूर्य-दीपक के सूर्य प्रकाश को सोखनेवाली काली सतह खराब हो जाती है अथवा इसमें लगा काँच तापीय ऊर्जा को सौर-दीपक में वापिस करनेवाला परावर्तन करनेवाली सतह खराब हो जाती है।''

जब गाँववाले आदित्य को पढ़ते देखते तो उसके पास खड़े हो जाते। आदित्य उन्हें समझाता, ''आजकल सौर-प्रकाश से तो खाना पकाया जा रहा है, होटलों में बिजली जलाई जाती है तथा स्नानघरों में गरम पानी उपलब्ध कराया जाता है। यहाँ तक कि फ्रिज भी अब सूर्य के प्रकाश से चलने लगे हैं। सरकारें क्या करें ? कोयले के भंडार समाप्त हो रहे हैं। दूसरे देश ऊँचे दामों पर कोयला देते हैं तथा नाभिकीय ऊर्जा के संयंत्र लगाए नहीं जा सकते, क्योंकि उनमें दुर्घटनाओं से आस-पास के लाखों लोग या तो मारे जाते हैं अथवा विकलांग या अक्षम हो जाते हैं। वे गंभीर बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं। इतनी प्रचंड ऊर्जा का प्रवाह तब होता है जब इलेक्ट्रॉन रूपी बंदर पृथ्वी की भाँति परमाणु नाभि के चक्कर लगाते हुए नीचे के कक्ष में चला जाता है।'' आदित्य के मुँह से सौर ऊर्जा के विषय में सुनकर हरिजन टोला, आदिवासी टोला के हरिजनों तथा आदिवासियों ने अपने घरों के छप्परों पर सौर ऊर्जा उपकरण लगा लिये। उन्हें उपकरणों पर तीन-चौथाई सरकारी सहायता प्राप्त हुई। उनके जीवन काल में प्रथम बार मिट्टी के तेल की लालटेन के बिना प्रकाश हुआ। आदित्य उन्हें समझाता, ''सूर्य भगवान् हैं। हमारे गाँव में फसलें तथा पेड़ भी सूर्य की रोशनी से अपना भोजन पकाकर खाते हैं और हमें जीने के लिए अपने जीवन का त्याग कर देते हैं।''

गाँववासी सड़कों पर सौर ऊर्जा से उत्पन्न प्रकाश से इतने कृतज्ञ हुए कि उन्होंने अपने गाँव तिलैथा में सूर्य का एक छोटा मंदिर बनवाया तथा प्रत्येक दिन सूर्य को अर्घ्य देने लगे।

परीक्षा परिणाम आया। आदित्य संपूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य में दसवीं कक्षा में दूसरे स्थान पर आया। उसकी उपलब्धि की चारों ओर प्रशंसा हुई। उसके विद्यालय की ख्याति बढ़ गई। बरुआसागर में उसका सम्मान हुआ। जिलाधिकारी ने भी उसे अपने कार्यालय में बुलाकर शाबाशी दी। गाँव के प्रधान ने जब यह देखा तो उसने भी आदित्य के सम्मान में गाँव की बैठक आयोजित करके आदित्य का सम्मान किया। अब आदित्य के पिता का आधा काम हो चुका था। उनके समर्थन में आधे से अधिक गाँव हो गया था। गाँववाले आपस में काना-फूसी करते, ''सुखलाल से पंगा नहीं लेना। उसका लड़का कुछ सालों में ही कलेक्टर बनकर आ जाएगा, तब वह हमसे गिन-गिनकर बदला लेगा। लेखपाल, तहसीलदार तथा एस.डी.एम. सब तो उसके पीछे दुम दबाकर चलेंगे।''

सुखलाल प्रसन्न था कि आदित्य ने एक झटके में ही वह कर दिखाया, जो अपने जीवनकाल में न कर सका। शक्तिवाद के सामने जातिवाद हवा हो गया। पर आदित्य उसी अध्यवसायपूर्वक पढ़ता रहा। उसे इंटरमीडिएट करने के लिए जिला झाँसी के सर्वोत्तम सरकारी कॉलेज में दाखिला मिल गया। वहाँ छात्रावास में रहकर तथा राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पाकर वह लगनपूर्वक पढ़ता रहा। कॉलेज के अध्यापक अपने कॉलेज की शान के लिए उसे बुलाकर नि:शुल्क मार्गदर्शन देने लगे। उसने उ.प्र. बोर्ड की इंटरमीडिएट परीक्षा में संपूर्ण राज्य में पाँचवाँ स्थान प्राप्त किया तथा उसे स्थानीय सम्मान के साथ-साथ इलाहाबाद विश्वविद्यालय के आई.ए.एस. कहे जानेवाले अमरनाथ छात्रावास में प्रवेश दिया गया। वह छात्रावास पूरे उ.प्र. में मेधावी छात्रों का जमघट था। वे सभी आई.ए.एस. बनना चाहते थे। छात्रावास में आई.ए.एस. छात्रों के नोट्स रहते थे। एम.एस-सी. करते-करते ही आदित्य आई.पी.एस. बन गया तथा आई.पी.एस. बनने के एक वर्ष बाद ही आई.एस.एस. बन गया।

उसके पिता को गाँव में सर्वसम्मति से अपना पशुघर प्राप्त हो गया। लेखपाल ने सुखलाल के नाम पर पशुघर का आलेखन कर सौंप दिया। संपूर्ण गाँव सौर ऊर्जा का भक्त हो गया।

४०९, मार्बल होम्स, सेक्टर-६१ नोएडा
दूरभाष : ०९६५०००२५६५

हिंदी : विश्वभाषा की ओर अग्रसर

● **बद्री नारायण तिवारी**

संसार में एक ऐसी भी भाषा है, जो किसी भी जाति विशेष की न होकर जन-जन की होकर विश्व की दूसरी और अंग्रेजी तीसरे स्थान पर स्थापित है। यह सर्वविदित हो कि १४ सितंबर, १९४९ को 'संविधान सभा' द्वारा हिंदी को सर्वसम्मति से भारत की 'राजभाषा' घोषित किया गया था। इस संविधान सभा में अधिकांश अहिंदी भाषी दूरदृष्टा राजनेता इसके सदस्य थे। 'संविधान सभा' ने सर्वसम्मति से भारत की राजभाषा घोषित करने के बाद भी राजनीतिक स्वार्थवश उसका ईमानदारी से क्रियान्वयन न करते हुए स्थगित किया गया। यहाँ प्रमुखत: विचारणीय है—क्या संविधान के 'राजभाषा संबंधी उपबंध के अध्याय-४' के हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार बढाएँ, उसका विकास करें, ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। प्रावधान को भी स्थगित व निरस्त किया गया? ज्ञातव्य है—समस्त केंद्रीय मंत्रालयों के कार्यालयों में 'हिंदी समितियों' की स्थापना इसी संवैधानिकता के आधार पर पूर्ति की जाती रही। इसी विषय पर 'लोकसभा' में व्यक्त कानपुर के सांसद श्री नरेशचंद्र चतुर्वेदी के महत्त्वपूर्ण विचार कितने सटीक हैं, 'अगर संपूर्ण संविधान लादा हुआ नहीं है तो संविधान का भाग-९७ कैसे लादा हुआ है। कैसे आप कह सकते हैं कि हिंदी नहीं लादी जाएगी, थोपी नहीं जाएगी। भारतीय संविधान के २२ भागों में आप लोगों से कहते हैं कि उसे लादा नहीं जाएगा। अगर संविधान लागू है तो राजभाषा भी लागू है। अगर संविधान लादा हुआ है तो राजभाषा भी लादी हुई है।'

अंग्रेजों के विरुद्ध पूरे स्वाधीनता संघर्ष काल में 'राष्ट्रभाषा हिंदी' भी प्रतिरोध का एक शक्तिशाली शस्त्र था। स्वयं गुजराती भाषी होते हुए भी गांधीजी की दृढ मान्यता थी, 'हिंदी भाषा ही राष्ट्रीयता और भारतीयता की एक सूत्रता की मजबूत कड़ी हो सकती है। राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है। ऐसे लोग जो अपनी भाषा को छोड़ देते हैं, वे देशद्रोही हैं और जनता के प्रति विश्वासघात करते हैं।' इसीलिए राष्ट्रभाषा हिंदी की उपेक्षा, अवमानना को मान्यता देनेवालों को महात्मा गांधी राष्ट्रघाती मानते थे। ज्ञातव्य हो—मात्र राजनीतिक स्वाधीनता के लिए नहीं, वरन् स्वदेशी, स्वभाषा, स्वसंस्कृति, स्वावलंबन, समष्टि में, भारतीय अस्मिता की प्रतिष्ठा हेतु उनके नेतृत्व में ऐतिहासिक लड़ाई लड़ी गई। उनका वास्तविक उद्देश्य था—भारत सच्चे अर्थों में भारत बने—'इंडिया दैट इज भारत' नहीं।

वस्तुत: हमारी रष्ट्रीयता की प्रतीक एवं सेतु के रूप में हिंदी का महत्त्व तथा सार्वभौमिक स्वरूप को अनेक शलाका पुरुषों, अहिंदी देशभक्त

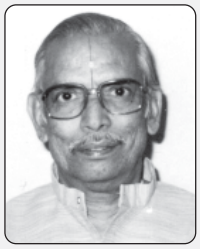

सुपरिचित लेखक। विविध विषयों पर २९ पुस्तकें एवं लगभग १५० लेख प्रकाशित। अनेक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित। कई प्रतिष्ठित सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबद्ध। मानस संगम कानपुर के संस्थापक अध्यक्ष।

मनीषियों ने भी आंतरिक रूप से स्वीकार किया था। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक तीर्थाटन और पर्यटन करनेवाले साधु-संत, सैलानी सब हिंदी माध्यम से सामान्यत: इन यात्राओं को संपन्न करते थे। संसार का सबसे बड़ा धार्मिक मेला प्रत्येक ९२ वर्ष में 'कुंभ' नाम से करोड़ों व्यक्ति विभिन्न भाषा-भाषी एकत्र होने पर कभी भाषा से व्यवधान पड़ा! उद्योग में अमेरिका के 'हॉलीवुड' के बाद द्वितीय स्थान में भारत का हिंदी सिनेमा 'बॉलीवुड' नाम से जाना-पहचाना नाम है। करोड़ों देश-विदेश के हिंदी जानने-समझने वालों से अरबों रुपए की आय भी देश को होती है। इसलामिक देशों में अधिकांशत: 'बॉलीवुड' की फिल्में देखी जाती हैं। भारत में जब विदेशी अंग्रेजी 'चैनल' प्रदर्शित हुई, जो हिंदी में रूपांतर होकर आई। इसी संदर्भ में धार्मिक प्रवचन तथा बाबा रामदेव के योग शिक्षण के कार्यक्रम क्या अंग्रेजी में आते हैं—करोड़ों हिंदू समझने-बोलनेवाले संसार के कोने-कोने में सुनते व देखते हैं।

सर्वप्रथम हिंदू धर्म, संप्रदाय, क्षेत्रीयता से परे अपनी सरलता व लचीलेपन के कारण ही हिंदी सर्वमान्य भाषा बनकर उभरी। वह जन-जन की सर्वमान्य भाषा रूप में अपनी अलग से पहचान बनी। किसी राजकीय-शासकीय बैसाखी के सहारे हिंदी नहीं पनपी। दक्षिण भारत के साधु-संतों ने अपने मत के प्रचार का माध्यम हिंदी को ही बनाया, जो 'दक्षिणी हिंदी' के नाम से चर्चित हुई। भारत की सर्वाधिक समझी जानेवाली अधिकांश भारत की भाषा हिंदी रही है। निकट भविष्य में उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने हिंदी क्षेत्रों में विशाल सफलता पाई, इसके विपरीत अहिंदी क्षेत्र के प्रदेशों में भी बड़ी-बड़ी सार्वजनिक चुनाव की सभाओं में हिंदी में भाषण देकर वहाँ भी सफलता पाई। यही देश में सर्वमान्य भाषा बनने का प्रतीक है।

संसार में इस समय लगभग १७० विश्वविद्यालयों में हिंदी का शिक्षण चल रहा है। इस समय विश्व में चीनी भाषा के समझने-बोलनेवालों की संख्या प्रथम स्थान पर है। हिंदी दूसरे स्थान पर विश्व में अपना

स्थान बना चुकी है। जबकि अब भी अंग्रेजीवाले अपने को प्रथम स्थान का ढिंढोरा पीटते रहते हैं—इस समय वह तीसरे स्थान पर पहुँच चुकी है। अंग्रेजों ने जिस प्रकार अपना साम्राज्य विस्तार किया, उसी पर उन्होंने अंग्रेजी भाषा को भी उन देशों में थोपा। आज एक दुष्प्रचार चल रहा है कि बिना अंग्रेजी भाषा के विकास और प्रगति करना असंभव है। इसी के प्रत्युत्तर में जब प्रश्न होता है। क्या जापान, रूस, जर्मनी, फ्रांस, चीन तथा इजरायल जैसे लघु देश, जो भारत की स्वाधीनता के ८ महीने बाद आजाद हुआ, इन सभी ने अपना चतुर्मुखी विकास अपनी भाषाओं से किया अथवा अंग्रेजी से इसका कोई समुचित उत्तर नहीं है, क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्यवादियों द्वारा थोपी गई भाषाओं में है, हिंदी सर्वमान्य प्रेम की भाषा है।

शताब्दियों पूर्व अधिकांश भारत की हिंदी भाषा सर्वाधिक समझी जानेवाली भाषा थी। खड़ी बोली हिंदी का पहला कवि अमीर खुसरो को ही माना जाता है। उन्होंने 'हिंदवी' नाम से सर्वप्रथम 'हिंदी' का नामकरण किया, जो भविष्य में 'हिंदी' भाषा नाम से चर्चित हुई। अमीर खुसरो ने हिंदी की भावविभोर होकर कितने सुंदर शब्दों में व्याख्या की है—

'तुर्क हिंदुस्तानियत मन हिंदवी गोयम जनाब चुमन तूतिए हिंदी अर असमन पुरसों जो मन हिंदवी पुर्स ता नमज गोयम'

'अर्थात् मैं हिंदुस्तानी की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो 'हिंदवी' में पूछो। मैं तुम्हें 'हिंदवी' में अनुपम बातें बता सकूँगा।'—अमीर खुसरो।

अपनी 'मनसनी किरानुस्साधन' में खुसरो ने लिखा है, 'मैं भूल गया था। अच्छी तरह सोचने पर हिंदी भाषा मुझे फारसी से कम मालूम नहीं।' मुगलकाल की राजभाषा फारसी होते हुए भी हिंदी का मूल्यांकन कम नहीं हुआ। अकबर स्वयं हिंदी कविता का प्रेमी था और उसने हिंदी में कविताएँ भी लिखीं। अकबर के नौ रत्नों में अब्दुल रहीम खान खाना 'रहीम' हिंदी संस्कृत के स्थापित कवियों में थे। बीरबल भी 'ब्रह्म' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। हिंदी उसके राज दरबार में भी मान्य थी। उसके राजस्व सचिव टोडरमल ने माल गुजारी का समस्त कार्य हिंदी में ही किया था। उस समय वह न सांप्रदायिकता या संकीर्णता की बंदी थी। वह न केवल हिंदुओं की भाषा मानी जाती थी, असंख्य मुसलमान कवियों ने अपनी उच्चकोटि रचनाओं का सृजन किया, जो अब भी जन सामान्य में प्रचलित है।

अंग्रेजों ने भारत में अपनी कूटनीति के आधार पर शासन के अंतर्गत स्थायी प्रभाव और वर्चस्व हेतु अंग्रेजी शिक्षा का शुभारंभ किया। इसके भावी परिणाम भारतीय संस्कारों एवं देश की एकता-अखंडता में कितने दूरगामी सिद्ध हो रहे हैं। उसे सन् १८३६ में बंगाल अंग्रेजी शिक्षा के आरंभ होने पर लॉर्ड मैकाले द्वारा माँ को लिखे पत्र से स्पष्ट हो जाएगा, 'मुझे यकीन है कि यदि हमारी शिक्षा योजना कार्यान्वित हुई तो २० वर्ष में ही बंगाल में कोई मूर्तिपूजक नहीं रह जाएगा।' भारत में अंग्रेजी शिक्षा के अन्य पक्षधर डॉ. डफ ने १८५३ में अपनी रिपोर्ट में लिखा था, 'मैं यह विचार प्रकट करने का साहस करता हूँ कि भारत के अंदर अंग्रेजी राज के अब तक के इतिहास कुशल राजनीति की सबसे सुंदर चाल मानी जाएगी।' मैकाले की भविष्यवाणी कितने अंशों में पूरी हुई—नस्ल से भारतीय जन विदेशियत में पूरी तरह रँग गए। भारत के काले अंग्रेजों यानी देशी साहबों एक वर्ग तो अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा से विहीन भारतीयों को ही तुच्छ और हेय समझने लगा।

अहिंदी भाषी प्रदेशों में बंगाल के केशवचंद्र सेन, राजाराम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, बंकिमचंद्र चटर्जी का वंदे मातरम् सारे देश में देशभक्तों का मंत्र बनकर गूँजने लगा था। राजा राम मोहन राय ने अपने बँगला समाचार-पत्र में एक पृष्ठ ही हिंदी के लिए सुरक्षित कर रखा था। रवींद्रनाथ ठाकुर भी हिंदी भाषा के प्रति विशेष अभिरुचि रखते हुए 'शांति निकेतन' में हिंदी के लिए एक कक्ष ही निर्मित करवाया। महात्मा गांधी स्वयं गुजराती थे, किंतु राष्ट्रहित में हिंदी के महत्त्व को समझते थे। उस समय हिंदी ज्ञान अत्यल्प था। इसके बाद भी स्वराज प्राप्ति के लिए अंग्रेजों के राज का उन्मूलन जितना जरूरी समझते थे, सांस्कृतिक दासता से मुक्ति पाने के लिए अंग्रेजी का भी मूलोच्छेदन गांधीजी की दृष्टि में उचित मानते थे। उन्होंने देश में हिंदी महत्ता को समझते हुए उसके प्रचार-प्रसार हेतु 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा', 'राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' तथा अन्य संस्थाओं की स्थापना में सहयोग किया। गांधीजी ने राष्ट्रभाषा हिंदी के महत्त्व को आंतरिक रूप से समझते हुए अपने पुत्र देवदास गांधी को इसी मिशन की पूर्ति हेतु तमिलनाडु भेजा। देश के शीर्षस्थ नेताओं को हिंदी में अधिकाधिक कार्यों तथा भाषाओं को देने हेतु प्रेरित किया। गांधीजी ने प्रारंभिक हिंदी भाषा के शिक्षण हेतु एक सरल 'बालपोथी' भी तैयार की थी। नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने इन्हीं से प्रेरणा लेकर विदेश में आजाद हिंद फौज तथा लक्ष्मी बाई रेजीमेंट में हिंदी का ही बोलबाला था। विदेश से पहला संदेश भी भारत को हिंदी में रेडियो से प्रसारित हुआ। उसका प्रयाण गीत (सैन्य मार्च पास्ट) भी हिंदी में 'कदम-कदम बढ़ाए जा···' था। देश के विभिन्न प्रदेशों के नेतागण हिंदी में भाषण देते हुए, वह देश के प्रमुख नेताओं की श्रेणी में हो गए। अमर बलिदानी भगत सिंह का वह लेख, जो सन् १९२४ में 'यथार्थ' पत्रिका में भाषा समस्या पर प्रकाशित हुआ था कि यदि प्रदेशों के विभिन्न भाषा-भाषी परस्पर वार्त्तालाप करेंगे—क्या सात समुंदर की भाषा अंग्रेजी में—कदापि नहीं! हम लोग हिंदी में वार्त्ता करेंगे।

हिंदी की विकास यात्रा निरंतर अग्रसर है। अभी अगस्त २०१४ में केंद्रीय सचार एवं सूचना प्रौद्यगिकी तथा कानून मंत्री रविशंकर प्रसाद ने 'भारत-डोमन' नाम का देवनागरी लिपि हिंदी में शुभारंभ करके एक नई दिशा प्रदान की। विदेशों मे हिंदी निष्ठा के प्रति एक बहुत बड़ी संख्या हो चुकी है। इन विदेशी हिंदी प्रेमियों में चेकोस्लोवाकिया के मनीषी-कवि प्रो. आदोलन स्मेकेल, जिन्होंने हिंदी में गद्य-पद्य में १४ पुस्तकें भी लिखीं। कुछ समय पश्चात् भारत में राजदूत होकर कई वर्ष प्रवास करने पर हिंदी के प्रति कितने समर्पण भाव डॉ. स्मेकेल ने व्यक्त किए—'हिंदी मेरे लिए कर्म भाषा है, जिसमें वार्त्तालाप करने और कविताएँ

लिखने में परमसुख का अनुभव करता हूँ। इस वाणी में ओज व तेज ही नहीं, असंख्य भाषाओं की असंख्य अरुणिमाएँ भी सन्निहित हैं।' उनकी सर्वप्रथम लाल किले के कवि सम्मेलन भें रचना सुनने के बाद मैंने भी 'मानस संगम' के आयोजन में आमंत्रित किया। उनकी कई रचनाओं में एक रचना हिंदी के प्रति जो दर्द उनके हृदय में था, उसकी रेखांकित पंक्तियों से अनुभव करेंगे उस विदेशी हिंदी मनीषी के—

'....ए भैया/नए मालिक की रिक्शा, कब तक चलाते रहेंगे, स्वयं मालिक हुए बिना? कब तक?, वे भाई साहब/पुराने मालिक की भाषा/कब तक लादते रहेंगे, देश भाषा पर अधिकार, प्राप्त किए बिना, कब तक?'

वास्तव में विदेशी हिंदी प्रेमियों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। उसी हिंदी निष्ठा का एक उदाहरण हंगरी की हिंदी विदुषी कवयित्री ने तृतीय हिंदी विश्व सम्मेलन दिल्ली को देखकर कु. एवा अरादि की पीड़ा को उनकी प्रस्तुत पंक्तियों से भारतवासी हिंदी प्रेमी समझ सकेंगे। विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रणेता मराठी भाषा हिंदी को समर्पित अनंत गोपाल शेवड़े की स्मृति में किसी ने उनका नाम लेकर स्मरण तक नहीं किया, जबकि एक विदेशी हिंदी विदुषी एवा अरादी की उस पीड़ा का अवलोकन करें—

'तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन' में दस हजार लोग बैठे थे हिंदी विद्वान्, हिंदी प्रेमी 'देशी-विदेशी'—'मैं जानती दूँ/आपकी आत्मा स्वर्ग से/एक स्वर्ण सड़क पर/वहाँ आकर देखती होगी? कैसी है उन्नति/आपके शुरू किए काम को/आपका नाम किसी ने/भी नहीं लिया/यद्यपि आपने/हिंदी के लिए/अपना प्राण उत्सर्ग किया लेकिन मेरे मन में/ और मेरे दिल में /आपका स्मरण/और अनुकरण सदा जीवित है।'

इन जीवंत पंक्तियों से स्पष्ट है कि संसार में हिंदी के प्रति कितना दर्द है। वह स्पष्ट आभास दे रहा है, जिसकी परिणति 'विश्व हिंदी दिवस' के रूप में विभिन्न देश आयोजन, सम्मेलन, गोष्ठियाँ तथा कवि सम्मेलनों की एक वृहद् श्रृंखला का शुभारंभ कर चुके हैं। सर्वप्रथम ४ अक्तूबर, १९७६ को तत्कालीन विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपना मूल भाषण हिंदी में देकर संसार में हिंदी को गौरवान्वित किया था। इसी संदर्भ में दूसरी कटना ने भी विश्व में हिंदी की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाए। संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव श्री वानकी मून के अभिभाषण से स्पष्ट हो जाएगा।

जो उन्होंने १३ जुलाई, २००७ को राष्ट्र संघ के मुख्यालय न्यूयॉर्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में व्यक्त किए थे। कितने स्पष्ट शब्दों में कहा था—'हिंदी एक मीठी भाषा है, जो दुनिया भर के लोगों को पास लाने में काम कर रही है। यह एक ऐसी भाषा है, जो दुनिया भर की संस्कृतियों के बीच एक सेतु का काम करती है।'

न्यायिक क्षेत्र में मध्य प्रदेश और राजस्थान में सन् १९७६ से जिला न्यायालय तक शत-प्रतिशत विधिक कार्य हिंदी में हो रहा है। अन्य प्रदेशों को भी उससे प्रेरणा लेनी चाहिए। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री प्रेमशंकर गुप्त न्याय क्षेत्र में हिंदी में लगभग १९०० निर्णय देकर उन लोगों को मुँह तोड़ उत्तर दिया, जो कहते थे कि विधिक क्षेत्र में हिंदी के शब्द नहीं हैं। विधिक क्षेत्र में हिंदी को स्थापित करने हेतु विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क (अमेरिका) में न्यायमूर्ति गुप्त सम्मानित भी किए गए।

इसी संदर्भ में पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह के निजी भाषाई सचिव मनीषी डॉ. परमानंद पांचाल के दिशा-निर्देश देनेवाले शब्दों में, 'मुझे याद है कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह के कार्यकाल में हमने इसका सफल प्रयोग किया था और विदेशों में सभी आयोजनों में राष्ट्रपतिजी हिंदी में ही बोले थे। कहीं अंग्रेजों की बैसाखी का सहारा नहीं लिया था।'

हिंदी पारिभाषिक शब्दावली के अंतर्गत दो भागों में राष्ट्रपति ने विभाजित किया था, जो सन् १९६१ में विधि शब्दावली का वृहत स्तर पर संकलन करे। पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया। इसके अलावा ज्ञान-विज्ञान और मानविकी की पारिभाषिक शब्दावली का विशाल संग्रह वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग ने प्रकाशित कर बड़ा योगदान किया। न्यायिक क्षेत्र में मध्य प्रदेश और राजस्थान में सन् १९७६ से जिला न्यायालय तक शत-प्रतिशत विधिक कार्य हिंदी में हो रहा है। अन्य प्रदेशों को भी उससे प्रेरणा लेनी चाहिए। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री प्रेमशंकर गुप्त न्याय क्षेत्र में हिंदी में लगभग १९०० निर्णय देकर उन लोगों को मुँह तोड़ उत्तर दिया, जो कहते थे कि विधिक क्षेत्र में हिंदी के शब्द नहीं हैं। विधिक क्षेत्र में हिंदी को स्थापित करने हेतु विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क (अमेरिका) में न्यायमूर्ति गुप्त सम्मानित भी किए गए। भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत में न्यायमूर्ति श्री बी.एल. यादव ने निर्णय देकर एक कीर्तिमान स्थापित किया था!

लंदन विश्वविद्यालय के अंग्रेज डॉ. रूपर्ट स्नेल हिंदी विभाग के प्रवक्ता के साथ ही हिंदी की ब्रज भाषा पर शोध के अलावा हिंदी के कवि हृदय भी हैं। उनकी हिंदी के प्रति अभिव्यक्ति ब्रिटेन के प्रो. रूपर्ट स्नेल के शब्दों में—'हिंदी जिंदगी का एक हिस्सा है, हिंदी जिंदा है। हिंदी किसी एक वर्ग या वर्ण या जाति या थर्म या मजहब या मार्ग या देश संस्कृति की ही नहीं, हिंदी भारत की है, मॉरीशस की है, इंग्लैंड की है, सारी दुनिया की है, हिंदी आपकी है, हिंदी मेरी है। हिंदी हम सबकी है।' ये विचार किसी भारतीय के न होकर अंग्रेजी के गढ़ इंग्लैंड के मूल निवासी अंग्रेज के उद्गार हैं।'

हिंदी को जवंतता प्रदान करनेवाली कुछ विभूतियों की चर्चा से ही आज जिन ऊँचाइयों पर संसार में स्थापित हुई हिंदी, उनमें ८४ वर्षीय विज्ञान वेत्ता प्रो. शिवगोपाल मिश्र की कर्मठता विज्ञान परिषद् प्रयाग के १३ मार्च, २०१२ के शताब्दी वर्ष में आयोजन के मुख्य अतिथि, प्रख्यात

मिसाइल मैन वैज्ञानिक डॉ. अब्दुल कलाम (पूर्व राष्ट्रपति) तथा अध्यक्षता डॉ. आर. चिदंबरम, प्रधानमंत्री अतिथि तमिल भाषी थे) ने सफलतापूर्वक संपन्न किया। डॉ. मिश्र ने विज्ञान से संबंधित अनेक कोशों, का संपादन एवं लेखन द्वारा हिंदी के विज्ञान क्षेत्र में एक कीर्तिमान स्थापित किया। प्रमुख कोशों में सामान्य विज्ञान कोश, रसायन। विज्ञान कोश, जैव प्रौद्योगिक परिभाषा कोश, पर्यावरण कोश, नूतन भौतिकी कोश, आधुनिक विज्ञान कोश, विज्ञान प्रौद्योगिकी विश्व कोश आदि विज्ञान लेखन में मील के पत्थर प्रमाणित हुए।

डॉ. शिव गोपाल मिश्र पर्यावरण विषयक अंग्रेजी में मात्र ६ ग्रंथों तथा हिंदी में लोकप्रिय विज्ञान एवं मृदा विज्ञान विषयक ५० से अधिक लिखित कृतियों के प्रकाशन से हिंदी विज्ञान लेखन क्षेत्र के शिखर पुरुष कहे जाने लगे। इस क्षेत्र में 'हिंदी विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' (दो खंड), 'स्वतंत्रता परवर्ती हिंदी विज्ञान' (दो खंड), 'हिंदी विज्ञान लेखन प्रारंभिक प्रयास', 'विज्ञान प्रौद्योगिकी विश्व कोश' (सात खंड अप्रकाशित), 'जैव प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश' (अप्रकाशित) आदि प्रमुख ग्रंथ हैं।

इसके अतिरिक्त डॉ. मिश्र के १५०० से अधिक हिंदी के विज्ञान लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर इस क्षेत्र में एक व्यक्ति न होकर उन्हें एक संस्थान के रूप में मान्यता दी है। वह चिरायु हों, जिससे हिंदी विज्ञान लेखन क्षेत्र अनवरत अभिवृद्धि करें और अग्रसर हों।

ब्रिटिश शासनकाल में हिंदी की सुरक्षा करते हुए ऐसे शलाका पुरुषों ने जन्म लिया, जिन्होंने इतना अकेले अपने पुरुषार्थ से कष्ट झेलते हुए साहित्य सृजन किया, जो बड़ी-बड़ी साहित्यिक अकादमी के विद्वानों के समूह अनेक वर्षों में पूर्ण कर पाते हैं। हिंदी भाषा साहित्य के महान् साहित्य सर्जक पं. द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी की साहित्य साधना बहुआयामी थी। उन्होंने विज्ञान संबंधित सर्वाधिक कृतियाँ लिखीं, जिससे हिंदी के चतुर्मुखी विकास में अधिकाधिक गतिशीलता में सहायता मिली।

चतुर्वेदीजी सर्वप्रथम महोबा में रेलवे स्कूल में शिक्षक हुए। इसके पश्चात् १८९९ में सिविल सर्जन इलाहाबाद के मुख्य लिपिक पद पर कार्य करते हुए भी साहित्य साधना करते रहे। जब 'वंदे मातरम्' और 'भारत माता की जय' कहने पर राजद्रोह था। ऐसे समय इन्होंने अंग्रेज शासकों के अन्याय-अत्याचार एवं भ्रष्टाचार के विरुद्ध अंग्रेज गवर्नर जनरलों के जीवन-चरित्र लिखने की योजना में सर्वप्रथम 'रॉबर्ट क्लाइव' पर पुस्तक लिखी। इसके पश्चात् ५४ अंग्रेज लेखकों के प्रामाणिक इतिहास ग्रंथों के आधार पर 'वॉरेन हेस्टिंग्ज' की हिंदी जीवनी लिखी। इसमें हेस्टिंग्ज की भारतीयों के प्रति जो राजनीतिक कारगुजारियाँ थीं, उसको उजागर करने पर इस पुस्तक को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध माना गया। इसी आधार पर चतुर्वेदीजी को शासन विरोधी प्रचार में रत समझकर १० जुलाई, १९१० ई. को सेवामुक्त कर दिया गया। बँगला भाषा में चर्चित 'आनंदमठ' से निकले 'वंदेमातरम्' पर आधारित ब्रिटिश शासन विरोधी मानते हुए बंकिम चंद्र चटर्जी सेवामुक्त किए गए। इसी प्रकार हिंदी में 'वॉरेन हेस्टिंग्ज' कृति को शासन विरोधी मानते हुए चतुर्वेदीजी को सेवामुक्त किया गया। यह सेवा-मुक्ति हिंदी साहित्य के लिए वरदान सिद्ध हुई। उन्होंने हिंदी साहित्य का इतना सृजन किया, जो पाँच भागों में विभाजित किया गया—शब्द कोश, जीवनी, अनुवाद, संपादन एवं विविधा आदि ग्रंथ—५८।

पं. द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी ने हिंदी भाषा साहित्य में उल्लिखित शब्दकोशों के संदर्भ में प्रख्यात साहित्य मनीषी पद्मविभूषण डॉ. विद्या निवास मिश्र के कथनानुसार, इन सभी कोशों की रचना का महत्त्व इसलिए अधिक है कि इसकी रचना में पत्र के एक व्यक्ति की साधना है। आज जब इस प्रकार के कार्यों की रचना के लिए संस्थाएँ खड़ी होती हैं, सहायक जुटाए जाते हैं और संपादक का कार्य केवल शब्द-संयोजन करना होता है। तब अकेले अपने बल पर ऐसे ग्रंथों की रचना करना बहुत बड़े संकल्प और साधना का फल माना जाएगा।'

साहित्य वाचस्पति पं. द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी के ज्येष्ठ पुत्र पद्म विभूषण पं. श्री नारायण चतुर्वेदी ने लंदन से एम.ए. करके भारत में शिक्षा विभाग के उच्च प्रशासनिक अधिकारी पद पर नियुक्त हुए। 'बाढ़े पुत्र पिता के धरमा' के अनुसार ही पं. श्री नारायण चतुर्वेदी भी हिंदी के बहुमुखी विकास के पदचिह्नों पर चलने लगे। सन् १९१७ में रूस के 'महात्मा टाल्सटाय' शीर्षक एक पुस्तक को लिखकर प्रकाशित किया। अंग्रेजी के प्रारंभिक शासनकाल में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'वियना' में आयोजित शिक्षा सम्मेलन में भारत की ओर से चतुर्वेदीजी ने भाग लिया। वापस लौटने पर भारत में इनके अधिकांश उच्च अंग्रेज अधिकारी देवनागरी हिंदी के स्थान पर 'रोमन लिपि' को ही स्थापित करने के कूटनीतिक प्रयास को चतुर्वेदीजी ने ही असफल किया।

अंग्रेजों ने हिंदी की यात्रा में अवरोध उत्पन्न करते हुए हिंदी की विभिन्न बोलियों को बढ़ावा देना आरंभ किया। बैसवाड़ी, डोंगरी, कन्नौजी, मगही, अवधी, बृज, भोजपुरी, मैथिली, मारवाड़ी, पहाड़ी, बुंदेली आदि; ये हिंदी की बोलियाँ ही इसका शब्द भंडार अभिवृद्धि के साथ ही उसके प्राणवायु का काम करती हैं। सर्वप्रथम महावीर प्रसाद द्विवेदी ने रेलवे में नौकरी करते हुए अंग्रेजों की परस्पर बोलियों को अग्रिम पंक्ति में लाकर हिंदी भाषा को समाप्त करने की योजना का आभास हो गया था। दूरदृष्टा द्विवेदीजी ने अंग्रेजों की इस योजना को विफल करने हेतु हिंदी को एकता सूत्र में 'खड़ी बोली' का सूत्रपात्र 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन करते हुए आंदोलित किया। आज विश्व में जो हिंदी की पहचान बनाई, वह खड़ी हिंदी बोलने व चलचित्रों (सिनेमा) के माध्यम से संसार में 'हॉलीवुड' के बाद 'बॉलीवुड' को दूसरे स्थान पर पहुँचाया। आचार्य द्विवेदी की 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन काफी समय तक पं. श्री नारायण चतुर्वेदी ने उसी खड़ी हिंदी बोली विकास धारा का अनुसरण किया।

द्वितीय महायुद्ध के समय भारत में पुरानी 'किस्मत' फिल्म का गाना 'आज हिमालय की चोटी से, फिर हमने ललकारा है, दूर हटो ए दुनियावालो हिंदुस्तान हमारा है···' देश-विदेश में सभी जगह देशवासियों के कंठ में था। मूक फिल्मों के बाद हिंदी सवाक फिल्में देश के बाहर भी लोकप्रिय होने लगी थीं। विजय भट्ट ने अपनी संस्था प्रकाश पिक्चर्स

से सन् १९४२ में 'भरत मिलाप' बनाई, जो भारत में ही नहीं, विदेशों में भी उसे सराहा गया। सर्वप्रथम १९३२ में 'अरेबियन नाइट्स' एवं 'आलिफ लैला' सवाक हिंदी फिल्में देश-विदेश में चचित हुईं। मुंबई में 'भरत मिलाप' का उद्घाटन तमिल भाषी सर्वपल्ली डॉ. राधा कृष्णन ने किया था। इनकी 'राम राज्य' फिल्म ने उस समय के सारे कीर्तिमान तोड़ दिए थे। महात्मा गांधी ने अस्वस्थ होते हुए भी 'रामराज्य' देखी। सन् १९४७ में इसी चर्चित हिंदी फिल्म 'रामराज्य' के प्रदर्शन और समारोहों में अमेरिका में ३ महीने प्रवास करना पड़ा था। इसके बाद रूस में सन् १९५४ के प्रथम भारतीय फिल्म महोत्सव में भाग लेने गए। यहाँ उनकी नई संगीत प्रधान फिल्म 'बैजूबावरा' विशेष रूप से प्रदर्शित हुई थी। इसके बाद हिंदी फिल्मों का संसार में दूसरा स्थान 'बॉलीवुड' की पहचान बन चुकी है। इसके अलावा टी.वी. के चैनल एवं प्रवचनों ने भी वृहद्-स्तर पर खड़ी बोली की स्थापना में योगदान दिया। इसी भावना से प्रेरित दक्षिण भारत से चेन्नई से प्रकाशित पत्रिका 'हिंदी सेवा' के पूर्व संपादक तमिल-हिंदी के कविवर डॉ. एस. सुब्रमण्यम 'विष्णुप्रिया' के मुख्य पृष्ठ पर प्रत्येक अंक में प्रकाशित रेखांकित पंक्तियाँ उसी भावना को व्यक्त करती हैं—

'बोली के मोह में पड़कर निज भाषा का महत्त्व न भूलो,
निज भाषा के मोह में पड़कर हिंदी भाषा का स्थान न भूलो।'

इसी भावना पर आधारित सेनानी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रस्तुत पंक्तियाँ कितना स्पष्ट संकेत देनेवाली हैं—

'अरे अड़ो मत अलग बोलियों को लेकर
पार करेगी नाव, राष्ट्रभाषा ही खेकर।
यदि अनुदार विचारधारा में बह जाओगे,
कह-सुनकर भी मूक बधिर ही रह पाओगे।'

वस्तुत: राष्ट्रकवि गुप्त स्वाधीनता के बाद भी हिंदी कविता में राज्यसभा दिल्ली में, सांसद रूप में पूरा बजट भाषण हिंदी में देकर चर्चित हुए थे।

भारत में ८५ देशों से विदेशी छात्र-छात्राएँ हिंदी शिक्षण हेतु आते हैं। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा की सबसे बड़ी उपलब्धि हैं, संसार के सभी हिंदी पाठकों और अध्येताओं की सुविधा हेतु भारतेंदु युग में सन् १९५० तक कॉपीराइट मुक्त, हिंदी साहित्य के एक लाख पृष्ठ अपनी वेबसाइट—हिंदी समय, काम पर उपलब्ध करा दिए हैं। यह 'वेबसाइट' हिंदी साहित्य की वैश्विक उपलब्धता का प्रतिनिधि नेटवर्क है। व्यवहार इंटरनेट द्वारा करते हैं। अमेरिका, कनाडा, जापान, इंग्लैंड, मॉरीशस, फिजी आदि देशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। अनेक हिंदी विदेशी प्रेमी भी हिंदी के संप्रेषण में कार्यरत हैं। नॉर्थ कैरोलाइना स्टेट यूनिवर्सिटी के प्रो. अफरोज के शिष्यों की एक वेबसाइट है—'डोर इन टू हिंदी' इस वेबसाइट से शिक्षण होता है। संसार के प्राय: सभी उन्नतिशील विकसित देशों की मीडिया में हिंदी में राजकीय कार्यक्रम तथा समाचार भी प्रसारित-प्रकाशित होने लगे हैं। 'आस्था तथा 'संस्कार' चैनल से २४ घंटे हिंदी प्रसारण को १६९ देशों के करोड़ों हिंदी प्रेमी सुनते तथा देखते हैं। एक शताब्दी पूर्व १८८६ ई. में इंग्लैंड के प्रमुख हिंदी सेवी 'फ्रेडरिक पिंकाट' ने अपना हिंदी प्रेम इन वाक्यों में प्रदर्शित किया था, 'मैं भी संपूर्ण रूप से जानता हूँ कि जब तक किसी देश में निज भाषा और अक्षर सरकारी और व्यवहार संबंधी कार्यों में नहीं प्रवृत्त होते हैं तब तक उस देश का परम सौभाग्य हो नहीं सकता। इसलिए मैंने बार-बार हिंदी भाषा के प्रचलित करने का उद्योग किया है।

संसार में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सबसे बड़ा सही योगदान है कि अपने लचीलेपन के कारण अन्य भाषाओं को आत्मसात् करके उसका प्रयोग ऐसे करता है, जैसे वह हिंदी का शब्द ही है। देश-विदेश में हिंदी पर ९०,००० से अधिक शोध हो चुके हैं। विश्व कवि तुलसी के कालजयी ग्रंथ 'रामचरित मानस' रचयिता हैं। उन्होंने अपने लेखन में १६,००० शब्दों का प्रयोग करके संसार में एक कीर्तिमान स्थापित किया। उसमें अपने पूरे साहित्य सृजन में एक हजार फारसी शब्दों का उपयोग भी किया। उस समय फारसी ही तत्कालीन राजभाषा तथा बोलचाल की भाषा बन चुकी थी। इस पर अलीगढ़ मुसलिम वि.वि. के हिंदी विभागाधक्ष डॉ. शैलेश जैदी ने शोध किया था।

संसार में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सबसे बड़ा सही योगदान है कि अपने लचीलेपन के कारण अन्य भाषाओं को आत्मसात् करके उसका प्रयोग ऐसे करता है, जैसे वह हिंदी का शब्द ही है। देश-विदेश में हिंदी पर ९०,००० से अधिक शोध हो चुके हैं। विश्व कवि तुलसी के कालजयी ग्रंथ 'रामचरित मानस' रचयिता हैं। उन्होंने अपने लेखन में १६,००० शब्दों का प्रयोग करके संसार में एक कीर्तिमान स्थापित किया। उसमें अपने पूरे साहित्य सृजन में एक हजार फारसी शब्दों का उपयोग भी किया। उस समय फारसी ही तत्कालीन राजभाषा तथा बोलचाल की भाषा बन चुकी थी। इस पर अलीगढ़ मुसलिम वि.वि. के हिंदी विभागाधक्ष डॉ. शैलेश जैदी ने शोध किया था। 'मानस संगम' कानपुर ने इसी पर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति श्री एम.एन. शुक्ल से 'ताम्र पत्र' प्रदान करके सारस्वत सम्मान भी प्रदान किया था। अंतरराष्ट्रीय गीतकार पद्मश्री गोपालदास नीरज की रेखांकित पंक्तियों से राष्ट्रभाषा हिंदी, जो अब विश्व भाषा की ओर अग्रसर हो रही है, कितनी हृदय स्पर्शी है—

'अपनी भाषा के बिना राष्ट्र न बनता राष्ट्र,
रहे सौराष्ट्र या बसे वहाँ महाराष्ट्र।'

मानस संगम
महाराज प्रयाग नारायण मंदिर
(शिवाला) कानपुर-२०८००१

आत्म-संवाद के दोहे

● **विनय मिश्र**

मेरी किस्मत में कहाँ, लिखा है आराम।
छुट्टी के दिन ही रहा, सबसे ज्यादा काम॥

तू ऐसे चलता रहा, मुझमें अपने आप।
जैसे अपने मौन में, राह चले चुपचाप॥

इक अनजानी प्यास को, पीकर हैं बेचैन।
इस पानी में आग है, ये कहते हैं नैन॥

खामोशी बोने लगे, जब आँखों में रात।
तब बोलो किससे करें, अपने दिल की बात॥

मुझको जिंदा कर गई, जाने किसकी याद।
एक अधूरापन जिया, मैंने बरसों बाद॥

घाटों-घाटों जब चला, कोई सफर अनाम।
दिन गंगा का मैं हुआ, तुम वरुणा की शाम॥

यूँ तो बढ़ते जा रहे, दुनिया के छल-छंद।
तू जो शामिल हाल है, मेरी बाँह बुलंद॥

साथ न देता देर तक, सुख का कोई साज।
मैंने दुःख बुनते हुए, यह भी जाना आज॥

जाग रही है रात-दिन, मुझमें कैसी प्यास।
मुझको पानी कर दिया, खुद को किया मिठास॥

कहीं बरसने के लिए, देखी कब तारीख।
बादल की आवारगी, आँखों ने ली सीख॥

बीता जाता है शिशिर, आने को है फाग।
कब आओगे देखने, मेरे मन की आग॥

तुमने जिस अंदाज से, पूछा मेरा हाल।
मैं बरसों डूबा रहा, ऐसे चुभे सवाल॥

आँसू बनकर ही यहाँ, झरे न केवल याद।
टूटे मन का भी रहे, इकतारा आबाद॥

कुछ ऐसा है देखिए जीने का दस्तूर।
जो दिल में हरदम रहे, आँखों से है दूर॥

मुट्ठी में चाहा बहुत, आए कोई काश।
पंखोंवाले उड़ गए, सपने सब आकाश॥

कोई ऐसे चल रहा, पकड़े मेरा हाथ।
जैसे कोई धूप हो, परछाईं के साथ॥

रहकर सबके बीच भी, रहना सबसे दूर।
मैंने तुझसे जिंदगी, सीखा यही शऊर॥

इनसे ही धनवान हूँ, इनके बिन धनहीन।
मेरा सबकुछ ले मगर, मुझसे शब्द न छीन॥

आँखों में ही कट गई, अपनी सारी रात।
कुछ सपने बादल हुए, कुछ सपने बरसात॥

जब भी आना जिंदगी, ले रातों की डोर।
बतियाना उस छोर तक, जिधर खड़ी है भोर॥

मेरे मन का मौन भी, कितना है वाचाल।
चुप रहकर भी कर रहा, मुझसे रोज सवाल॥

कुछ मीठी गरमाहटें, कुछ मीठे संवाद।
गलबहियाँ डाले मिले, जब तुम आए याद॥

सुनो सुनाता हूँ तुम्हें, दो शब्दों का गीत।
सबसे प्यारी जिंदगी, सबसे न्यारी प्रीत॥

लहरों से लड़ते हुए, कभी न मानी हार।
डूबा उतराया बहुत, लेकिन पहुँचा पार॥

रहना चाहे जिंदगी, कल्पवृक्ष की छाँह।
सपने हैं आकाश में, मेरी छोटी बाँह॥

आई तेरी याद जब, जगे तीर्थ के भाग।
मैंने डुबकी ली जहाँ, मन हो गया प्रयाग॥

इससे ज्यादा कुछ नहीं दौलत मेरे पास।
मजहब है इनसानियत, जिंदा है एहसास।

दरकी है संवेदना या झुलसा है ख्वाब।
आँखें में जो इस तरह, उमड़ा है सैलाब॥

जाने-माने रचनाकार। 'सच और है' (गजल-संग्रह); 'समय की आँख नम है' (गीत-संग्रह); 'सूरज तो अपने हिसाब से निकलेगा' (कविता-संग्रह); 'इस पानी में आग' (दोहा-संग्रह); 'पलाश वन दहकते हैं' स्व. मंजु अरुण की रचनावली का संपादन। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.) के हिंदी विभाग में कार्यरत।

एक शरद की चाँदनी, एक शिशिर की धूप।
मैंने दोनों में जिया, इक मौसम का रूप॥

अपनी धरती छोड़कर, कहीं न जाऊँ फाँद।
बाँहों में भरने मुझे, बुला रहा है चाँद॥

रसवर्षा में बह गए, सब निषेध के नेम।
मौनं स्वीकृति लक्षणं, पढ़े सुभाषित प्रेम॥

कुछ आवारा चाहतों को देने पैगाम।
मन का अपनापन लिखा, मैंने तेरे नाम॥

कितना आज उदास है, मन यमुना के घाट।
तुम होते तो देखते, मेरा दर्द विराट॥

सिर पर साया प्रीत का, आँखों में विश्वास।
मुझे सफर से ही मिला, मंजिल का अहसास॥

छोटी-बड़ी जरूरतों, का हूँ एक शिकार।
मैं भी हूँ मारा हुआ, सुविधाओं का यार॥

कुछ ऐसे तुमने दिया, जीवन का आभास।
मैंने अपनी जिंदगी, रखी तुम्हारे पास॥

बी-१६१, हसन खाँ मेवाती नगर
अलवर-३०१००१ (राज.)
दूरभाष : ०९४१४८१००८३

गृहस्थी

● राजेंद्र परदेसी

कितनी भी जल्दी की जाए, ऑफिस पहुँचने में देर हो ही जाती है। घर से यदि जल्दी निकला जाए तो बस की प्रतीक्षा में समय बीत जाता है। ऑफिस नजदीक होता तो यह परेशानी न होती। पैदल ही चला जाता। लेकिन रोज-रोज दस किलोमीटर की पैदल यात्रा की जहमत उठाई भी तो नहीं जा सकती। पाँच किलोमीटर इधर से तो पाँच किलोमीटर उधर से।

एक पुरानी साइकिल है। वह भी दो महीने से खराब पड़ी है। ढाई-तीन सौ रुपए हों तो कहीं जाकर दोनों टायर-ट्यूब बदले जाएँ। बड़ी मुश्किल से तो घर का खर्चा चलता है। कितना भी करो, किसी-न-किसी का उधार चढ़ा रहता है। साल में जब एक बार बोनस मिलता है तो सोचता हूँ, कोई चीज ले लूँ। लेकिन पुराने कर्जे सिर पर चढ़े मिलते हैं। अब तो सोचना ही छोड़ दिया है। सोचने से तो कुछ बनता ही नहीं, दिमाग अलग खराब होता है।

इस बार बोनस मिला तो सोचा था कि गरम सूट नहीं तो कम-से-कम एक कोट ही सिलवा लूँ। रही पैंट, वो तो सूती से ही काम चला लूँगा। ससुराल से साले-सालियाँ जीजाजी से मिलने चले आए। मन मसोस के स्वागत करना ही पड़ा। कोट सिलवाने का विचार भी स्थगित करना पड़ा। अब तो पता नहीं क्यों, रिश्तेदारों के आ धमकने पर मुझे बुखार आ जाता है।

लगता है, आज भी देर हो जाएगी। साढ़े नौ तो घर पर ही बज गए। श्रीमतीजी हैं कि जब भी कहीं चलने की तैयारी करो, कोई-न-कोई समस्या लेकर प्रस्तुत हो जाती हैं। ''ऑफिस जा रहे हो क्या?'' तैयार होते देखकर पत्नी ने पूछा।

''क्यों, क्या बात है?''

''शाम के लिए कुछ नहीं है।''

''तो क्या? इसी समय बताना था। पहले नहीं बता सकती थीं।''

पत्नी पर गुस्सा आ रहा था। इसीलिए गुस्से के लहजे में कहा, ''तुम्हारी तो आदत हो गई है, जब चलने लगो तो अपनी रोनी सूरत लेकर खड़ी हो जाती हो।''

स्वाभाविक था, पत्नी को भी गुस्सा आ गया। बोली, ''तो महीने भर का सामान इकट्ठे ला क्यों नहीं देते। झगड़ा ही खत्म हो जाए।''

''झगड़ा तो जिंदगी भर नहीं खत्म हो सकता। कितना भी ला दूँ, तुम्हें पूरा ही नहीं पड़ता।'' अपनी असमर्थता को छुपाने के लिए मैं बोला।

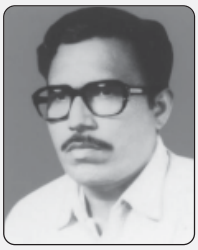

जाने-माने लेखक। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में रचना-कर्म। 'हताश होने से पहले' *(कविता-संग्रह)*, 'भोजपुरी लोककथाएँ', 'दूर होता गाँव' *(लघुकथा-संग्रह)*, 'शब्दों के संधान' *(हाइकू-संग्रह)*।

मैं तो समस्या से मुँह मोड़ सकता था, लेकिन पत्नी कैसे मोड़ती। समस्या से उसे ही जूझना था। बोली, ''तो क्या मैं खा जाती हूँ?''

''खा नहीं जाती हो। मेरा मतलब, हिसाब से खर्च करना चाहिए।''

''हिसाब से कैसे खर्च किया करूँ? पहले तुम्हारे कवि मित्रों से पूरा पड़े न, फिर बाकी का सोचूँ।'' अपनी खीझ उतारते हुए पत्नी ने जवाब दिया।

''तुम्हारे भाई-बहन आते हैं तो कुछ नहीं। मेरे दो-चार मित्र आ जाते हैं, तो सारा खर्चा हो जाता है।''

''एक बार खुद ही खर्च कर क्यों नहीं देख लेते? मैं हूँ तो तुम्हारी गृहस्थी घसीट रही हूँ। दूसरी होती तो पता चलता।'' कहकर वह रोने लगी।

पराजित होते देखकर मैं बोला, ''अच्छा देखो, कहीं से प्रबंध करूँगा।''

''कहाँ से करोगे, अभी तो तनख्वाह मिलने में चार दिन बाकी हैं।''

''तो लाला के यहाँ से उधार सामान मँगा क्यों नहीं लेतीं?''

''पप्पू को भेजा नहीं था क्या?''

''तो क्या कहा उसने?''

''कहा कि आटा नहीं है। शायद शाम तक आ जाए।''

''तो शाम तक उसके यहाँ आ ही जाएगा, फिर भेजकर मँगा लेना।''

''वह उधार नहीं देगा।''

''क्यों?''

''कह रहा था कि उसके सामने दूसरे ग्राहक को आटा दिया, मगर जब उसने माँगा तो कह दिया कि खत्म हो गया।''

''पिछले महीने का पैसा बाकी है न! इसलिए ऐसा कहा होगा। साला, बहुत काँइयाँ है। सोचता होगा कि और ले जाएँगे तो पता नहीं कब देंगे!''

''उसका आज तक कभी बाकी रहा भी है कि इस बार रहेगा। अधिक-से-अधिक यही तो होता है कि इस महीने का उस महीने अदा कर दिया जाता है। इसी महीने नहीं दिया गया है।'' कुछ क्षण रुककर पुन: बोली, ''अगर बहन गुड़िया और भाई, दोनों न आते तो इस महीने भी दे दिया जाता। वे बेचारे पहले-पहल आए थे। कुछ न देती तो क्या सोचते!''

ऑफिस जाने को देरी हो रही थी। इसलिए बोला, ''छोड़ो इन बातों को, ऑफिस में ही किसी से माँग लूँगा।''

''किससे माँगोगे?''

''वर्मा से कहूँगा, अभी अकेला है। खर्च भी उसके कम हैं। अपने पास कुछ-न-कुछ रखता जरूर है।''

''उससे भी तो पिछले महीने पचास रुपए लिये थे। अभी दिए भी नहीं।'' पत्नी बोली।

''दिया होता तो क्या तुम्हें मालूम न होता।''

''न हो तो तुम्हीं किसी पड़ोसन से माँग लो, पहली को दे देना।''

''किससे माँगूँ। सभी के यहाँ तो यही हाल है। एक मिसेज श्रीवास्तव हैं। उनके पास जाओ तो पहले घंटों बैठाएँगी, फिर कहेंगी कि क्या बताऊँ मिसेज पांडेय, आपने कल बताया होता तो जरूर व्यवस्था कर देती। हमें क्या मालूम था कि आपको पैसे की जरूरत है। नहीं तो साड़ी अगले महीने खरीदती। कल मार्केट गई थी तो एक साड़ी पसंद आ गई। पास में पैसे थे, खरीद ली।'' कुछ पलों की खामोशी के बाद पत्नी बोली, ''कहो तो एक बार फिर जाकर उनका भाषण सुन आऊँ?''

''रहने दो, रतनलाल से माँग लूँगा।''

''वह भी तो कौन मिसेज श्रीवास्तव से कम हैं।''

''तुम्हें कैसे मालूम?''

''तुम्हीं तो कहते हो कि जब भी उससे कोई चीज माँगो, कोई-न-कोई बहाना बना देता है। खुद बताते हो, खुद ही भूल जाते हो। मैं तो कभी नहीं भूलती।'' अपनी याददाश्त की प्रशंसा करते हुए पत्नी ने कहा।

''एक चिंता हो तो बात भी है। यहाँ तो ऑफिस से लेकर घर तक चिंताओं का सिलसिला लगा रहता है।''

''तो क्या समझते हो कि तुम्हें ही सारी चिंता रहती है। मुझे नहीं रहती। दिनभर काम करते-करते परेशान हो जाती हूँ। रात को लेटती हूँ तो सारा बदन टूटता है।''

''महरिन क्यों नहीं लगा लेती। कुछ तो बोझ हल्का होगा। बिना मतलब के ही तो परेशान होती हो।'' सहानुभूति जताने के लिए मैं बोला। लेकिन पत्नी ने दूसरा ही अर्थ लगा लिया। बोली, ''लगा क्यों नहीं देते। कौन मना करता है।'' फिर अपने मन की पीड़ा को उड़ेला, ''इतने साल हो गए। अपने मन से कभी कोई सामान लाकर दिया? कब से कह रही हूँ कि एक पिक्चर दिखा दो। बस यही जवाब सुनती हूँ कि सैकड़ों रुपए खर्च हो जाएँगे। तुम्हें तो पत्नी नहीं, नौकरानी की जरूरत थी।''

वातावरण काफी विषाक्त होता जा रहा था और घड़ी की सुइयाँ बढ़ती जा रही थीं। इस कारण मैंने समय से समझौता करते हुए कहा, ''ऑफिस से लौट आने दो। कोई-न-कोई प्रबंध करूँगा।''

दिनभर ऑफिस के काम में मन नहीं लगा। सामने टेबल पर सिर्फ फाइल खोलकर बैठा रहा, जिससे कोई देखे तो समझे कि काम कर रहा हूँ। ऐसी ही मन:स्थितियाँ दूसरों की भी होती होंगी। काम हो तो कैसे हो।

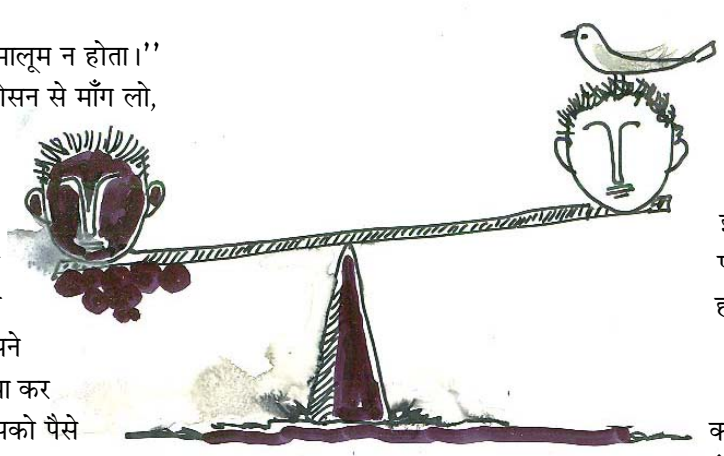

आज ऑफिस से पैदल ही चल पड़ा। सोचा, एक ओर का बस-किराया बचेगा। गृहस्थी के किसी काम आएगा।

लौटने में देर होनी थी, हुई। इसीलिए जब घर पहुँचा तो देखा कि पत्नी दरवाजे पर ही खड़ी है। देखते ही पूछा, ''आज देर क्यों लगा दी?''

''पैदल आया हूँ।''

''क्यों? बस के लिए पैसे नहीं थे क्या? फिर सोचकर बोली, आपकी पैंट की जेब में पाँच का एक सिक्का रख तो दिया था। नहीं मिला क्या?''

मैंने सच्चाई छुपाते हुए कहा, ''ऑफिस से सुंदरलालजी से बातचीत करते हुए उनके घर तक आ गया था तो सोचा, आधा फासला तय हो ही गया है, क्यों न पैदल ही चलूँ। बस पैदल चला आया।''

''इतनी दूर तो कभी पैदल चले नहीं। थक गए होंगे। चलिए मुँह-हाथ धोकर फ्रेश हो लीजिए, तब तक मैं चाय लाती हूँ।''

''गाँव छोड़े तीस बरस हो गए। तब से आज तक वास्तव में कभी इतनी दूर पैदल नहीं चला था। वह भी इस उम्र में। पहले की बात दूसरी थी। गाँव से शहर तक पैदल ही चला जाता था। अब तो दस कदम भी चलना पड़ता है तो थकावट आ जाती है। ताकत भी कहाँ से आए? यहाँ गाँव की तरह न तो घी। ले-देकर मक्खन निकाले दूध की चाय यों कहिए गरम पानी।''उसके सहारे अपना शरीर ढोता रहूँ यही बहुत है।''

थकावट के कारण आज की चाय कुछ ज्यादा ही अच्छी लगी। साथ में पकौड़ी भी लजीज लगीं।

आदमी को जब आराम मिलता है तो इधर-उधर की सोचने लगता

है। अन्यथा अपने ही में इतना मशगूल रहता है कि दूसरे के बारे में सोचने की उसे फुरसत ही नहीं रहती।

कुछ आराम मिला तो पत्नी को आवाज दी, ''गोपाल की माँ! जरा सुनना तो।''

''क्या है ? और चाय लीजिएगा ?'' पत्नी ने चौके में बैठे-ही-बैठे सवाल उछाला।

''नहीं, एक बात पूछनी है।''

''अभी आई।''

वह आई तो पूछा, ''पैसे कहाँ से लाईं ?''

''मिसेज वर्मा से माँगे थे। उन्होंने मना कर दिया तो फिर किसी से नहीं माँगा। किसी से माँगना व्यर्थ है। इसीलिए तुम्हारी जो पुरानी पत्रिकाएँ और कागज थे, उन्हें बेच दिया। बीस किलो थे। पाँच रुपए के हिसाब से सौ रुपए मिले।''

इस दास्तान को सुनकर सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। वर्षों की मेहनत से एकत्र सामग्री सौ रुपए में बिक गई थी। मैं चिंता में गहरे समा रहा था कि पत्नी बोल पड़ी, ''सोच क्या रहे हो ? उसे कोई पूछता भी था ? कितने को तो तुम दिखा चुके थे। कोई उसे छापने को तैयार था ? अच्छा हुआ कि रद्दीवाले ने उसके सौ रुपए दे दिए। इस महीने कोई कर्ज नहीं चढ़ा। नहीं तो पता नहीं...।''

एक उच्छ्वास भरकर मैंने कहा, ''हाँ, अच्छा हुआ। इतने दिनों की मेहनत ने इस महीने कर्ज बढ़ने से बचा लिया।''

४४ शिव विहार, फरीदी नगर
लखनऊ-२२६०१५
दूरभाष : ०९४१५०७५५८४

लघुकथा

तोड़ियाँ

● **सेवा सदन प्रसाद**

बेटा यह तोड़ियाँ और ये पायल कल तुम्हारे यहाँ से ले गए रहे; लड़कवा की शादी कुछ समय के लिए टल गई है। सो एका वापिस करके हमारा पैसा दे दो, (हाथ जोड़ते हुए) बड़ी मेरबानी होगी।''

''शादी तो आगे होगी तब काम आ जाएगा जेवर।''

''अब जाने कब हो।'' फिर मिन्नत करते हुए, ''दे दो बेटा, तुम्हारा भला होगा।''

उस वृद्ध को देखकर मेरे मन में न जाने क्यों करुणा जाग रही थी।

जेवर के दुकानदार ने अपने माल को टंच करते हुए, बिना कुछ कहे, दराज से रुपए निकालकर उसे वापस कर दिए। अब तक मेरा भी काम पूरा हो गया था। मैं भी दुकान से उठकर उस बुजुर्ग के पीछे हो ली।

मौके की बात थी कि हम दोनों एक ही टैंपो में जा बैठे। आज न जाने क्यों टैंपो में ड्राइवर और क्लीनर के अलावा मैं और वह अनजान वृद्ध ही थे। घर जाने की जल्दी थी। एक बुजुर्ग का साथ पा मैंने राहत की साँस ली।

मन-ही-मन उस बात को याद कर मैं सोच रही थी कि एक तो शादियाँ होना ही आजकल इतना मुश्किल, ऊपर से कहीं शादी टूट जाए तो और मुसीबत, न जाने क्या वजह रही होगी बेचारे बूढ़े आदमी की।

तभी उसके कुरते की जेब में रखा मोबाइल बज उठा। घंटी की आवाज सुन अब तक खिड़की से झाँकते हुए मेरी तंद्रा भंग हो चुकी थी। उधर जोर-जोर से किसी बुजुर्ग महिला के बोलने की आवाज आ रही थी। ध्यान लगाने पर मैंने सुना।

महिला—वापिस ले लिहिन ?

वृद्ध—और का, हमहू कोहनू कच्ची गोली थोड़ी न खेली हैं।

महिला—चलो अच्छा हुआ, फलदान का सब खर्चा निपट जाई, 'चौक कर' पर ऊँ झुमकी तो तुम यहीं छोड़ गए।

वृद्ध—अबहि और जरूरत पड़ी तब देखी जाई।

महिला—बड़े हुसियार बनत रहे, नगद दे माँ ओकी नानी मरत रही, अब देखो हमार हुशियारी। दहेज मा नगद माँगते तो जेल जाते, चलो इत्ते में जान छूटी।

वृद्ध—कोहून को पता चली, तब बिरादरी मा बड़ी बदनामी होई।

महिला—का कहा ? ब्याह के घर माँ तो चोरी चपाटी हुई जात है, आको हम का करे ? हालाँकि मुझे शहरी समझ, वे धीरे-धीरे बातें कर रहे थे पर दीवारों के भी तो कान होते हैं, कान देने पर अब तक मैं उनकी सब कहानी समझ चुकी थी।

अब मेरे मन में उनके लिए करुणा की जगह घृणा थी। वो जिस बात को चालाकी समझ रहे थे, मेरे लिहाज से वह उनका कमीनापन था।

७/२०२ स्वरूप नगर
कानपुर
दूरभाष : ७६०७३४५६७८

डेढ़ दशक बाद भी कितने लोग जानते हैं यूनिकोड को!

● बालेंदु शर्मा दाधीच

हिंदी में पिछले एक दशक के आसपास की अवधि में सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में हुई ज्यादातर तरक्की शायद नहीं हो पाती, अगर यूनिकोड नाम की सौगात हमारी भाषा को न मिली होती। यूनिकोड ने देवनागरी लिपि में पाठ इनपुट करने, सहेजने, डिजिटल माध्यमों से एक से दूसरी जगह भेजने, सूचनाओं का प्रसंस्करण करने, आउटपुट प्रदान करने जैसी प्रक्रियाओं के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मानकीकरण में योगदान दिया है। भले ही हिंदी टंकण को लेकर आज भी संशय बरकरार है और लोग इनस्क्रिप्ट, ट्रांसलिटरेशन तथा रेमिंगटन के तौर-तरीकों का इस्तेमाल करते हुए देवनागरी में कंप्यूटर पर टंकण कर रहे हैं, लेकिन कम-से-कम टेक्स्ट इनपुट किए जाने के बाद की स्थिति काफी हद तक मानकीकरण के सिद्धांतों का पालन करती है।

जाने-माने तकनीकविद् और वरिष्ठ पत्रकार। संप्रति समूह संपादक, प्रभासाक्षी.कॉम।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि भले ही आप अपने देवनागरी टेक्स्ट को रोमन की-बोर्ड का इस्तेमाल करते हुए ट्रांसलिटरेशन के जरिए देवनागरी में बदलकर टाइप करें या फिर सीधे इनस्क्रिप्ट/रेमिंगटन कीबोर्ड के माध्यम से कंप्यूटर/डिजिटल प्रणालियों में इनपुट करें, एक बार टाइप होने के बाद आपकी लिखी इबारत मानकीकृत यूनिकोड टेक्स्ट के रूप में सहेजी जाती है। एक बार टाइप होने और भंडारित किए जाने के बाद यह पाठ मानकीकृत हो जाता है। उसके बाद इसे विंडोज में इस्तेमाल करें या फिर मैकिनटोश कंप्यूटरों पर खोलें, टैबलेट में पढ़ें या फिर स्मार्टफोन पर प्रयुक्त करें (संबंधित गैजेट या ऑपरेटिंग सिस्टम में मौजूद हिंदी यूनिकोड फॉण्ट के अनुरूप), वह प्राय: समान दिखाई देता है। यह यूनिकोड की शक्ति है, जिसने हिंदी और देवनागरी को समृद्ध किया है और उन्हें उस तकनीकी विचलन से मुक्त किया है, जिसकी वजह से इस भाषा और लिपि में कार्य करनेवाले लोग अलग-अलग पद्धतियों से टंकण करने, अलग-अलग फॉण्टों का प्रयोग करने और अलग-अलग सॉफ्टवेयरों पर निर्भर होने के लिए मजबूर थे। विभिन्न ऑपरेटिंग सिस्टमों (विंडोज, मैक और लिनक्स आदि) की तो बात ही छोड़िए, एक ही कंप्यूटर पर अलग-अलग हिंदी सॉफ्टवेयरों का प्रयोग करते हुए देवनागरी में टंकित की गई सामग्री दूसरे सॉफ्टवेयर के लिए जंक या गारबेज (पढ़ी या समझी न जा सकनेवाली उल्टी-पुल्टी इबारत) मात्र बन जाती थी। वह भी छोड़िए, एक हिंदी फॉण्ट में टंकित सामग्री दूसरे हिंदी फॉण्ट का प्रयोग करने पर अर्थहीन हो जाती थी।

सो यूनिकोड ने हिंदी और देवनागरी का बहुत भला किया है। यों यूनिकोड के आगमन को लगभग ढाई दशक बीत चुके हैं। माइक्रोसॉफ्ट एक्सपी और विंडोज २००० में हिंदी में यूनिकोड में कामकाज की शुरुआत हो गई थी। जाहिर है, हिंदी में यूनिकोड का विधिवत् प्रयोग करते हुए भी हमें डेढ़ दशक की अवधि बीत चुकी है। लेकिन सामान्य हिंदी कंप्यूटर प्रयोक्ताओं के बीच आज भी उसके बारे में जागरूकता का अभाव है। यह आश्चर्यजनक भी है और खेदपूर्ण भी। जानकारी का यह अभाव अब दूर होना आवश्यक है।

बहुत से लोगों की धारणा है कि यूनिकोड हिंदी के लिए विकसित की गई तकनीक है। ऐसा नहीं है, यह एक वैश्विक परिघटना है, जो सिर्फ हिंदी भाषा या देवनागरी लिपि को केंद्र में नहीं रखती बल्कि विश्व की अधिकांश भाषाओं से संबंधित पाठ संबंधी समस्याओं का समाधान करने के लिए घटित हुई है। जिस तरह की समस्याएँ हिंदी में थीं, वैसी ही विश्व की अधिकांश गैर-अंग्रेजी भाषाओं में भी मौजूद थीं। इनकी वजह से वैश्विक स्तर पर कितने कार्य दिवस बरबाद होते होंगे और कितनी समग्र असुविधा व अव्यवस्था होती होगी, इसका अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। यूनिकोड सभी भाषाओं की ऐसी समस्याओं का समाधान करने के लिए विकसित की गई टेक्स्ट एनकोडिंग प्रणाली है। वह सिर्फ हिंदी या देवनागरी के लिए नहीं है, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ थाई, हिब्रू, चीनी, अरबी और अन्य सभी वैश्विक भाषाओं की समस्याओं का समाधान करती है। इसका जन्म भी भारत में नहीं हुआ, बल्कि यूनिकोड कंशोर्शियम नामक अंतरराष्ट्रीय संगठन ने इसका विकास किया है, जिसका मुख्यालय अमेरिका में है और जिसके सदस्यों में अधिकांश बड़ी सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियाँ और सरकारें शामिल हैं।

यूनिकोड पर एक बड़ी गलतफहमी यह है कि यह कोई फॉण्ट है। बहुत से लोग यह पूछताछ करते पाए जाते हैं कि यूनिकोड फॉण्ट कहाँ से मिलेगा? यूनिकोड कोई फॉण्ट नहीं बल्कि एक टेक्स्ट एनकोडिंग (टंकित पाठ को डिजिटल माध्यमों पर सहेजने के नियम) है। फॉण्ट तो 'मंगल' है, जो यूनिकोड के नियमों के आधार पर बनाया गया है। अन्य

प्रचलित यूनिकोड फॉण्टों में एरियल यूनिकोड एमएस, अपराजिता, कोकिला और उत्साह प्रमुख हैं। संयोगवश मंगल, अपराजिता, कोकिला और उत्साह तो आपके विंडोज कंप्यूटर में पहले से इंस्टॉल किए हुए आते हैं। एरियल यूनिकोड एमएस फॉण्ट एमएस ऑफिस पैकेज के साथ इंस्टॉल होता है। अगर कंप्यूटर में विंडोज ७, ८ आदि मौजूद है और आप एमएस ऑफिस के अपेक्षाकृत नए संस्करण में काम करते हैं तो आपके पास हिंदी के पाँच यूनिकोड फॉण्ट तो पहले ही मौजूद हैं।

अनेक लोगों को लगता है कि यूनिकोड वह है, जो वे गूगल या माइक्रोसॉफ्ट की वेबसाइट से डाउनलोड करते हैं। वास्तव में वे इनपुट मैथ्ड एडीटर्स की बात कर रहे हैं, जैसे गूगल हिंदी इनपुट या माइक्रोसॉफ्ट हिंदी आई.एम.ई., जो कंप्यूटर पर रोमन पद्धति से टाइप करते हुए देवनागरी में टेक्स्ट इनपुट संभव बनाते हैं। ये आईएमई छोटे-छोटे टूल हैं, जो आपको टाइपिंग में मदद करते हैं। फॉण्ट तो वे वही इस्तेमाल करते हैं, जो कंप्यूटर में पहले से मौजूद है, यानी मंगल आदि।

हिंदी यूनिकोड को लेकर संघर्ष तभी शुरू हो जाता है, जब आप कंप्यूटर खरीदते हैं। कारण? कंप्यूटर में यूनिकोड सुविधा मौजूद होने और हिंदी के फॉण्ट भी पहले से मौजूद होने के बावजूद उसमें हिंदी यूनिकोड समर्थन पहले से सक्रिय होकर नहीं आता। आपको कंट्रोल पैनल में जाकर इसे सक्रिय करना होता है। यह बहुत छोटी सी दो-तीन मिनट की प्रक्रिया है, जिसके संपन्न होते ही कंप्यूटर में हिंदी यूनिकोड में काम करना संभव हो जाता है। लेकिन समस्या यह है कि इस बारे में लोगों को जानकारी ही नहीं है।

हिंदी यूनिकोड को लेकर संघर्ष तभी शुरू हो जाता है, जब आप कंप्यूटर खरीदते हैं। कारण? कंप्यूटर में यूनिकोड सुविधा मौजूद होने और हिंदी के फॉण्ट भी पहले से मौजूद होने के बावजूद उसमें हिंदी यूनिकोड समर्थन पहले से सक्रिय होकर नहीं आता। आपको कंट्रोल पैनल में जाकर इसे सक्रिय करना होता है। यह बहुत छोटी सी दो-तीन मिनट की प्रक्रिया है, जिसके संपन्न होते ही कंप्यूटर में हिंदी यूनिकोड में काम करना संभव हो जाता है। लेकिन समस्या यह है कि इस बारे में लोगों को जानकारी ही नहीं है। वे बेचारे परेशान होते हैं कि हिंदी में काम करें तो कैसे, फॉण्ट कहाँ से डाउनलोड करें और हिंदी के सॉफ्टवेयर कहाँ से लाएँ। यूनिकोड चूँकि एक वैश्विक मानक है, इसलिए इसका प्रयोग करते हुए हिंदी में काम करने के लिए आपको किसी अतिरिक्त सॉफ्टवेयर की जरूरत नहीं है। जिन सॉफ्टवेयरों पर आप अंग्रेजी में काम कर पाते हैं, उन सभी में यूनिकोड की कृपा से हिंदी में भी काम कर पाएँगे। मसलन एमएस वर्ड, एक्सेल या पावरप्वॉइंट में।

यूनिकोड (मंगल) में टाइप करने के बाद अगर अपने पाठ को कृति देव में बदलना हो तो कनवर्टर क्यों इस्तेमाल करना होता है? क्योंकि कृति, चाणक्य, देव लिस, सुषा और डी.वी.टी.टी. योगेश जैसे फॉण्ट यूनिकोड समर्थित नहीं हैं। दोनों में पाठ को सहेजने के तरीके-अलग-अलग हैं और आपस में कोई सामंजस्य नहीं है। जब कृति, सुषा आदि फॉण्ट बने थे, तब यूनिकोड आया ही नहीं था, इसलिए उनका विकास करनेवालों को पता नहीं था कि भविष्य में कोई यूनिकोड नामक मानकीकृत प्रणाली भी आएगी, जिसके लिहाज से उन्हें अपने फॉण्टों को तैयार रखना चाहिए। तालमेल का यही अभाव यूनिकोड और गैर-यूनिकोड फॉण्टों के बीच टेक्स्ट को आपस में सही ढंग से परिवर्तित नहीं होने देता। आप पूछेंगे कि यह बात अंग्रेजी पर तो लागू नहीं होती? हाँ, क्योंकि अंग्रेजी को लेकर कभी कोई समस्या रही ही नहीं। अंग्रेजी का प्रयोग करते हुए कंप्यूटरों में पहले ही आसानी से काम करना संभव था। इसलिए अंग्रेजी के लिए अलग से यूनिकोड में व्यवस्था करने की जरूरत नहीं थी और उसके फॉण्ट समान नियमों पर आधारित हैं। यूनिकोड से पहले भी और यूनिकोड आने के बाद भी। उनके बीच तालमेल, जो पहले मौजूद था, वह आज भी बना हुआ है।

सोलह बिट एनकोडिंग

आइए, यूनिकोड को और गहराई से समझने की कोशिश करते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास और सुधार की निरंतर प्रक्रिया चलती रहती है और इसी संदर्भ में पिछले कुछ वर्षों से सूचनाओं के भंडारण की एक आधुनिकतम पद्धति लोकप्रिय हो रही है, जिसे यूनिकोड कहते हैं। यूनिकोड के माध्यम से पहली बार सूचना प्रौद्योगिकी पर अंग्रेजी की अनिवार्य निर्भरता से मुक्ति की संभावनाएँ दिख रही हैं, क्योंकि यह पद्धति एक आम कंप्यूटर को विश्व की सभी भाषाओं में काम करने में सक्षम बना सकती है। जाहिर है, आई.टी. के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं को विकसित होते देखने की आकांक्षा रखनेवाले लोग यूनिकोड में छिपी संभावनाओं को देखकर उत्साहित हैं, क्योंकि कई दशकों के बाद अब हम बिना अंग्रेजी जाने कंप्यूटर की क्षमताओं का प्रयोग करने की स्थिति में आ रहे हैं।

हालाँकि यूनिकोड है तो सिर्फ डेटा के स्टोरेज संबंधी एनकोडिंग मानक, लेकिन इसके प्रयोग से कंप्यूटरों की कार्यप्रणाली और उनके इस्तेमाल के तौर-तरीकों में क्रांतिकारी बदलाव आ सकता है, क्योंकि डेटा ही कंप्यूटरों के संचालन का केंद्रबिंदु है। भले ही हम कंप्यूटर का किसी भी काम के लिए प्रयोग करें, मसलन लेखन कार्य के लिए, ध्वनि रिकॉर्डिंग के लिए या फिर वीडियो प्रोसेसिंग के लिए, हमें इसके लिए कंप्यूटर को या तो कुछ सूचनाएँ प्रदान करनी पड़ती हैं (जैसे टाइपिंग के माध्यम से या रिकॉर्डिंग के जरिए) या फिर हम कुछ सूचनाएँ कंप्यूटर से ग्रहण करते हैं (मसलन पहले से रिकॉर्डेड वीडियो को देखना या पहले से मौजूद फाइलों को खोलना)। इन्हें क्रमशः इनपुट और आउटपुट के रूप में जाना जाता है। इन दोनों प्रक्रियाओं में जिन सूचनाओं (डेटा) का प्रयोग होता है, उसे कंप्यूटर पर अंकों के रूप में स्टोर किया जाता है, क्योंकि वह सिर्फ अंकों की भाषा जानता है और वह भी सिर्फ दो अंकों—

'शून्य' तथा 'एक' की भाषा। इन दो अंकों का भिन्न-भिन्न ढंग से पारस्परिक बाइनरी संयोजन कर अलग-अलग डेटा को कंप्यूटर पर रखा जा सकता है। मिसाल के तौर पर ०१०००००१ का अर्थ है, अंग्रेजी का कैपिटल 'ए' अक्षर और ००११०००१ से तात्पर्य है '१' का अंक।

अक्षरों या पाठ्य-सामग्री और कंप्यूटर पर स्टोर किए जानेवाले बाइनरी डिजिट्स के बीच तालमेल बिठानेवाली प्रणाली को एनकोडिंग कहते हैं। एनकोडिंग टेबल के माध्यम से कंप्यूटर यह तय करता है कि फलाँ बाइनरी कोड को फलाँ अक्षर या अंक के रूप में स्क्रीन पर प्रदर्शित किया जाए। किस एनकोडिंग में कितने बाइनरी अंक प्रयुक्त होते हैं, इसी पर उसकी क्षमता और नामकरण निर्भर होते हैं। उदाहरण के तौर पर अब तक लोकप्रिय एस्की एनकोडिंग को ७ बिट एनकोडिंग कहा जाता है, क्योंकि इसमें हर संकेत या सूचना के भंडारण के लिए ऐसे सात बाइनरी डिजिट्स का प्रयोग होता है। एस्की एनकोडिंग के तहत इस तरह के १२८ अलग-अलग संयोजन संभव हैं, यानी इस एनकोडिंग का प्रयोग करनेवाला कंप्यूटर १२८ अलग-अलग अक्षरों या संकेतों को समझ सकता है। अब तक कंप्यूटर इसी सीमा में बँधे हुए थे और इसीलिए भाषाओं के प्रयोग के लिए उन भाषाओं के फॉण्ट पर सीमित थे, जो इन संकेतों को कंप्यूटर स्क्रीन पर अलग-अलग ढंग से प्रदर्शित करते हैं। यदि अंग्रेजी का फॉण्ट इस्तेमाल करें तो ०१०००००१ संकेत को ए अक्षर के रूप में दिखाया जाएगा। लेकिन यदि हिंदी फॉण्ट का प्रयोग करें तो यही संकेत 'ग', 'च' या किसी और अक्षर के रूप में प्रदर्शित किया जाएगा।

यूनिकोड एक १६ बिट की एनकोडिंग व्यवस्था है, यानी इसमें हर संकेत को संग्रह और अभिव्यक्त करने के लिए सोलह बाइनरी डिजिट्स का इस्तेमाल होता है। इसीलिए इसमें एक लाख से अधिक अद्वितीय संयोजन संभव हैं। इसी वजह से यूनिकोड हमारे कंप्यूटर में सहेजे गए डेटा को फॉण्ट की सीमाओं से बाहर निकाल देता है। इस एनकोडिंग में किसी भी अक्षर, अंक या संकेत को सोलह अंकों के अद्वितीय संयोजन के रूप में सहेजकर रखा जा सकता है। चूँकि किसी एक भाषा में इतने सारे अद्वितीय अक्षर मौजूद नहीं हैं, इसलिए इस स्टैंडर्ड (मानक) में विश्व की लगभग सारी भाषाओं को शामिल कर लिया गया है। हर भाषा को इन हजारों संयोजनों में से उसकी वर्णमाला संबंधी आवश्यकताओं के अनुसार स्थान दिया गया है। इस व्यवस्था में सभी भाषाएँ समान दर्जा रखती हैं और सहजीवी हैं। यानी यूनिकोड आधारित कंप्यूटर पहले से ही विश्व की हर भाषा से परिचित है (बशर्ते ऑपरेटिंग सिस्टम में इसकी क्षमता हो)। भले ही वह हिंदी हो या पंजाबी या फिर उड़िया। इतना ही नहीं, वह उन प्राचीन भाषाओं से भी परिचित है, जो अब बोलचाल में इस्तेमाल नहीं होतीं, जैसे कि पाली या प्राकृत, और उन भाषाओं से भी, जो संकेतों के रूप में प्रयुक्त होती हैं, जैसे कि गणितीय या वैज्ञानिक संकेत।

यूनिकोड के प्रयोग से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि एक कंप्यूटर पर दर्ज किया गया पाठ (टेक्स्ट) विश्व के किसी भी अन्य यूनिकोड आधारित कंप्यूटर पर खोला जा सकता है। इसके लिए अलग से उस भाषा के फॉण्ट का इस्तेमाल करने की अनिवार्यता नहीं है, क्योंकि यूनिकोड केंद्रित हर फॉण्ट में सिद्धांतत: विश्व की हर भाषा के अक्षर मौजूद हैं। कंप्यूटर में पहले से मौजूद इस क्षमता को सिर्फ एक्टिवेट (सक्रिय) करने की जरूरत है, जो विंडोज, मैकिन्टोश, लिनक्स आदि ऑपरेटिंग सिस्टम्स के जरिए की जाती है। यही बात मोबाइल ऑपरेटिंग सिस्टमों (एंड्रोइड, आइ.ओ.एस. और विंडोज) पर लागू होती है।

विश्व भाषाओं की यह उपलब्धता सिर्फ देखने या पढ़ने तक ही सीमित नहीं है। हिंदी जाननेवाला व्यक्ति यूनिकोड आधारित किसी भी कंप्यूटर में टाइप कर सकता है, भले ही वह विश्व के किसी भी कोने में क्यों न हो। सिर्फ हिंदी ही क्यों, एक ही फाइल में, एक ही फॉण्ट का इस्तेमाल करते हुए आप विश्व की किसी भी भाषा में लिख सकते हैं। इस प्रक्रिया में अंग्रेजी कहीं भी आड़े नहीं आती। विश्व भर में चल रही भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में सूचना प्रौद्योगिकी का यह अपना अलग ढंग का योगदान है।

यूनिकोड आधारित कंप्यूटरों में हर काम किसी भी भारतीय भाषा में किया जा सकता है, बशर्ते ऑपरेटिंग सिस्टम या कंप्यूटर पर इंस्टॉल किए गए सॉफ्टवेयर यूनिकोड व्यवस्था का पालन करें। उदाहरण के लिए माइक्रोसॉफ्ट के ऑफिस संस्करण ओपनऑफिस.ऑर्ग जैसे सॉफ्टवेयरों में आप शब्द संसाधक (वर्ड प्रोसेसर), तालिका आधारित सॉफ्टवेयर (स्प्रैडशीट), प्रस्तुति संबंधी सॉफ्टवेयर (पावर-प्वॉइंट आदि) तक में हिंदी और अन्य भाषाओं का बिल्कुल उसी तरह प्रयोग कर सकते हैं जैसे कि अंग्रेजी में। यानी न सिर्फ टाइपिंग बल्कि शॉर्टिंग, इंडेक्सिंग, सर्च, मेल मर्ज, हेडर-फुटर, फुटनोट्स, टिप्पणियाँ (कमेंट) आदि सबकुछ। कंप्यूटर पर फाइलों के नाम लिखने के लिए भी अब अंग्रेजी की जरूरत नहीं रह गई है। यदि आप अपनी फाइल का नाम हिंदी में 'मेरीफाइल' भी रखना चाहें तो इसमें कोई अड़चन नहीं है। इंटरनेट पर भी अब हिंदी का ९५ फीसदी काम यूनिकोड पर आधारित है।

कंप्यूटर अब अंग्रेजी का मोहताज नहीं रहा और इसीलिए यूनिकोड ने उसकी संपूर्ण कार्यप्रणाली भी बदल दी है। डेटा के भंडारण के साथ-साथ उसकी प्रोसेसिंग और प्रस्तुति के तरीके भी बदल गए हैं। चूँकि यूनिकोड सोलह बिट की एनकोडिंग व्यवस्था है और विश्व के अधिकांश सॉफ्टवेयर पुरानी एनकोडिंग व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए विकसित किए गए थे, इसलिए ऐसे (पुराने) सॉफ्टवेयर यूनिकोड टेक्स्ट को समझ नहीं पाते। नतीजतन विश्व भर में सॉफ्टवेयरों को यूनिकोड समर्थन युक्त बनाने की प्रक्रिया चल रही है। पेजमेकिंग और ग्राफिक्स सॉफ्टवेयरों में यह गति धीमी रही, लेकिन अब उनमें से अधिकांश में यूनिकोड हिंदी में काम करना संभव है। लेकिन आम इस्तेमाल के दफ्तरी सॉफ्टवेयरों (एम.एस. ऑफिस सहित) में यूनिकोड का शानदार समर्थन उपलब्ध है।

५०४, पार्क रॉयल, जी एच-८०,
सेक्टर-५६, गुड़गाँव-१२२०११

व्यंग्य

करतब जमूरों के

● अश्विनी कुमार दुबे

पार्टी में कार्यकर्ता की हैसियत से वे भरती हुए थे। कार्यकर्ता ही रहे। हर सम्मेलन, सेमिनार, यात्रा, रैली, धरना और आंदोलन में पूरी तरह सक्रिय रहे। हाईकमान से लेकर पार्टी के जिला अध्यक्ष तक के वे सदा आज्ञाकारी रहे। उन्होंने वही कहा, जो पार्टी की नीति रही, भले ही वे उससे असहमत रहे हों। पार्टी का आदेश है, इसलिए उन्होंने उसे सर-आँखों पर रखा। पार्टी में शुरू से इस बुढ़ापे तक वे सिर्फ कार्यकर्ता ही हैं। उनके देखते-देखते कितने लोग पार्टी में आए, पहले उनसे सलाह लेते थे, उनसे पूछकर काम करते रहे, परंतु वे मुखर थे। चिल्लाना जानते थे, चुप बैठना उन्होंने नहीं सीखा। शुरू से सक्रिय थे, इसलिए पार्टी में ही उन्होंने अपना नया गुट बनाया और सीनियर लोगों को खूब गरियाया। पार्टी की हर मीटिंग में उन्होंने विरोधी स्तर से भाषण दिए। पार्टी की पुरानी नीतियों को बदलने की जोरदार अपील की। उनके गुटवालों ने तालियाँ बजाईं। वह लोकप्रिय हुए। उनकी ओर हाईकमान का ध्यान गया, उन्हें उनकी ओर ध्यान देना पड़ा। ध्यान न देते तो पार्टी में बड़ी गड़बड़ होती। इसलिए बड़ी गड़बड़ को रोकने के लिए छोटी गड़बड़ करनी पड़ी। उन्हें उनके विरोधी तेवरों के चलते संगठन में एक महत्त्वपूर्ण पद देना पड़ा। वे इतने में कहाँ मानने वाले। उन्होंने बेमतलब मुद्दे उठाए। उन पर डटे रहे। उनके पीछे लोग थे, लॉबी थी। इसलिए उन्हें नजरंदाज करना सहज न था। उन्हें कई राज्यों का चुनाव प्रभारी बनाया गया।

पार्टी को चुनाव जिताने के लिए उन्होंने साम-दाम-दंड-भेद की नीति सहर्ष अपनाई। वह सफल हुए। उनके नेतृत्व में पार्टी ने चुनाव जीता। उनका पार्टी में रुतबा और बढ़ा। वह कभी भी चुप नहीं बैठते। कुछ-न-कुछ बोलते ही रहते हैं। उनके वक्तव्य सनसनीखेज होते हैं। उनमें रोमांच होता है। वह चौंकाने के लिए वह कुछ भी बोल देते हैं। जब ज्यादा फँस जाती है, तब यह कहकर, 'मेरा वो मतलब नहीं था, मीडिया ने मेरे कहे को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है।'...वह माफी भी माँग लेते हैं। ऐसा करते उन्हें कोई अफसोस नहीं होता। यह उनका अपना स्टाइल है। आगे बढ़ने के लिए उनकी अपनी विरोध की शैली है, जिसे अपनाकर वे आगे बढ़े और बढ़ते चले जा रहे हैं। उनके गुरु, जिनका सहारा लेकर वे पार्टी में आगे बढ़े थे, उनकी समर्थन की शैली रही। वह जीवन भर मूल्यों और नीतियों का तथा पार्टी के सिद्धातों का समर्थन करते रहे। इसलिए जहाँ थे, वहीं हैं अर्थात् पार्टी के कार्यकर्ता। अब सीनियर कार्यकर्ता, वयोवृद्ध कार्यकर्ता!

सुपरिचित व्यंग्य लेखक एवं उपन्यासकार। 'घूँघट के पट खोल', 'शहर बंद है', 'अटैची संस्कृति', 'अपने-अपने लोकतंत्र', 'फ्रेम से बड़ी तसवीर', 'कदंब का पेड़' (व्यंग्य-संग्रह); 'जाने-अनजाने दुःख' (उपन्यास)। उत्कृष्ट लेखन के लिए भारतेंदु पुरस्कार, अखिल भारतीय अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार प्राप्त।

छात्र जीवन में भी ऐसा ही कुछ होता है। छात्र अपने जीवन में पढ़ने-लिखने के अलावा भी बहुत कुछ करते हैं। जैसे इश्क लड़ाते हैं, हड़तालें करते हैं। जुलूस निकालते हैं। ऊल-जुलूल कुछ भी नारे लगाते हैं, और जाने क्या-क्या...। अब छात्र जीवन में हीरो बनना है तो दो तरीके हैं; एक तो हर परीक्षा में गोल्ड मेडल लेकर पास होते जाओ तो तुम्हें सब जानेंगे, तारीफ करेंगे। अब यह मामला बहुत कठिन है। कौन पढ़े इतना! रात-दिन मेहनत करनी पड़ेगी, परीक्षाओं में अव्वल आने के लिए, वह सब हमसे न हो सकेगा। दूसरा तरीका हीरो बनने का सरल है, कुछ ऐसा अजूबा कर गुजरो, जिससे पूरे देश का ध्यान आपकी ओर चला जाए। इस अजूबे में आप देश को सरेआम गालियाँ भी दे सकते हैं, चलेगा। आगे बढ़ने के लिए रास्ता सही है। बहुत लोग बढ़े हैं, इस प्रगति पथ से। तुम भी बढ़ो। पलक पाँवड़े बिछाए हुए लोग तुम्हारा ही इंतजार कर रहे थे। तुम बढ़ो, वे तुम्हारे साथ हैं। तुम्हारे अंदर का हीरो बाहर आने के लिए तड़प रहा है। वह बेचैन है, निकालो उसे बाहर। राजनीति का रंगमंच उसके करतब देखने के लिए तरस रहा है। कई राजनीतिक पार्टियाँ रोली-चंदन के साथ तुम्हारा स्वागत कर रही हैं। लोगों को एक अदद हीरो चाहिए। वह मिल गया। चुनाव का टिकट हाथ में लिये कई पार्टी अध्यक्ष तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक दे रहे हैं। बढ़ो लाल! तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है। शुभकामनाएँ!

टी.वी. चैनलों पर इन दिनों जो परिचर्चाएँ आती हैं, वे सर्कस के शो की तरह हैं। चेहरे देखकर ही दर्शक जान जाता है कि कौन क्या बोलेगा, कौन चिल्लाएगा, कौन आँसू बहाएगा? जब खेल काबू से बाहर हो जाता और लोग खूब चीखने-चिल्लाने लगते हैं, तब एंकर को या तो एक कॉमर्शियल ब्रेक की घोषणा करनी पड़ती है या अपनी अंतिम टिप्पणी के साथ शो समाप्त करना पड़ता है। इस प्रकार के शो बड़ी मेहनत से तैयार किए जाते हैं।

सीधे समाचार आप दिखाएँगे, बिना नमक-मिर्च के तो न्यूज चैनल

का मालिक आपको कहेगा, आस्था चैनल या संस्कार चैनल में जाकर काम करो। यहाँ तुम्हारी क्या जरूरत? इसलिए मिलाए जा रहे हैं तेज मसाले, साधारण से समाचारों में। लगाया जाता है तेज बघार, मामूली खबरों में। हर न्यूज चैनल किसी भी समाचार को सनसनीखेज बनाने में लगा है। आगे बढ़ने के लिए यहाँ भी कुछ अजूबा करना पड़ता है। आप न करो तो आपसे करवाया जाता है, सब प्रकार का अजूबा। सफल टी.वी. चैनल वो है, जो अघटित घटना पर प्रमाणित स्टिंग ऑपरेशन दिखा दे। रहस्य-रोमांच से भरी है समाचारों की दुनिया। किसी भी समाचार के सैकड़ों संस्करण हैं। जितने चैनल उतने तरह के विचार। विचारों का घटाटोप है। समझ में नहीं आता कि असलियत क्या है? अच्छे-खासे दर्शक को पूरी तरह दिग्भ्रमित कर देना ही हर कुशल पत्रकार की विशेषता है।

इस प्रकार मीडिया में भी शॉर्टकट है। साधारण लोग समाचार तलाशते हैं। गाँव-गाँव जाते हैं। गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले घूमते हैं। साधारण जन से मिलते रहते हैं। जो तेज दौड़नेवाले घोड़े हैं, वह टेबल पर समाचार बना लेते हैं। उसमें भी बड़ी मेहनत है, बनाओ तो जानो। गली-कूचों में भला क्या भटकना। लोग खुद ही ढूँढ़ते हुए चले आते हैं, अच्छी और कीमती खबरें देने। असाधारण जनों से संपर्क-संबंध रखो तो वह वैसी ही खबरें देते हैं, बिल्कुल असाधारण और सनसनीखेज। यह कहावत ऐसे ही नहीं बनी है कि 'सितारों के आगे जहाँ और भी है।'

साहित्य में तो यह आम चलन है कि जो स्थापित हैं, उनकी रचनाएँ बिना पढ़े ही उन्हें गाली दो। तुलसीदास को बिना पढ़े सिर्फ उन्हें गरियाते रहने के कारण साहित्य में कई लोग नामी-गिरामी हो गए। हिंदी जगत् में तो यह कहने का फैशन है कि हिंदी में कुछ नहीं है। बात-बात में लोग कहते मिल जाएँगे कि हिंदी साहित्य में क्या धरा है? यहाँ कुछ नहीं है। हिंदी में बड़ा लेखक वह है, जो हिंदी को गाली दे। हिंदी में कई दल हैं और इनके कारण बड़ी दलदल मची है। अच्छा लिखकर बड़ा साहित्यकार कहलाने के दिन अब लद गए हिंदी में। अब तो दूसरों को गाली देकर बड़ा होने के दिन आए। इधर दूसरों को बुरा और सिर्फ बुरा कहने की एक विधा प्रचलित हुई, आत्मकथा या इसी तरह संस्मरण टाइप कुछ अललटप्पू! पहले गांधीजी आत्मकथा लिखते, जिसमें वे अपनी ही बुराई करते। अपनी कमजोरियों का विश्लेषण करते और 'सत्य के प्रयोग' करते हुए उन पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करते दिखाई देते थे। इधर कई आत्मकथाएँ और संस्मरण की किताबें प्रकाशित हुईं। लोगों ने चुन-चुनकर अपने मित्रों को भरपूर गालियाँ दीं, उनकी कमजोरियाँ गिनाईं। उन्हें दुश्चरित्र कहा और खुद को महात्मा बताया।

ऑफिस में भी अफसर उन्हीं लोगों से डरता है, जो उसे गाली देते हैं। अब यदि आपको ऑफिस में काम करने से बचना है। आए दिन दफ्तर से गोल मारते रहना है और तनख्वाह पूरी लेनी है, तब आपको कर्मचारी यूनियन का नेता बनना पड़ेगा। नहीं बन सकते यूनियन के नेता तो यूनियन में कोई भी छोटा-बड़ा पद हथिया लीजिए। कई लोग तो सिर्फ इसलिए एसोसिएशन के पदाधिकारी बने बैठे हैं कि उनका बेसमय कहीं ट्रांसफर न हो जाए। अब आप यूनियन में पदाधिकारी जो ठहरे, फिर कौन आपसे काम करने को कहेगा? उसे मरना है क्या? यूनियनवाले ऑफिस में काम को छोड़कर और सबकुछ करते हैं।

कई संस्मरणात्मक किताबें पढ़कर ही हमें पता चला कि हिंदी के बहुत सारे लेखक अवसरवादी, सत्ता के चाटुकार और चरित्रहीन टाइप रहे हैं। इन प्रसंगों को जितने विस्तार से लिखा गया, पुस्तक उतनी ही महत्त्वपूर्ण कहकर प्रचारित की गई। कुछ समीक्षकों ने तो उस कृति को सरेआम कालजयी ठहराया। लिखनेवाला चर्चा में है। बड़ा चिंतक, बड़ा लेखक। लेखिकाओं ने तो इस दिशा में क्रांतिकारी उपलब्धियाँ अर्जित कीं। रूढ़ियों को तोड़कर पाखंड और अंधविश्वास के खिलाफ लिखना पहले 'बोल्ड लेखन' कहा जाता था। इधर देह और देह संबंधों का विस्तृत वर्णन 'बोल्ड लेखन' कहा जाने लगा। कई लेखिकाओं की आत्मकथाएँ पढ़कर उनके पतियों पर दया आती है। बेचारे लेखिका पति! मजे की बात यह है कि ऐसी गंभीर आलोचनाओं का लेखन तब किया गया, जब वह व्यक्ति परलोकवासी हो चुका था। अब वह वहाँ से स्पष्टीकरण देने के लिए तो आने से रहा। जीवित होता तो कुछ कहता, तब आपको महान् बनने का ऐसा सरल, सुगम अवसर कहीं मिलता?

हिंदी में लेखक की बजाय आलोचक ज्यादा प्रतिष्ठित हैं। लेखक भले ही किसी दल में न हो, चलेगा। परंतु आलोचक यहाँ दल विहीन नहीं हो सकता। उसे दल में रहने के कई फायदे हैं। सबसे पहले तो वह वृहद साहित्य पढ़ने से बच जाता है। बस अपने दलवाले लेखकों को पढ़ो और उन्हीं की विरुदावलियाँ गाओ। इस प्रकार समय और ऊर्जा दोनों की बचत होती है। दूसरे उसके दलवाले हैं ही उसे महान् बनाने को तत्पर। साहित्य लिखकर यहाँ अकादमिक कॅरियर नहीं बनाया जा सकता। आप चुपचाप लिखते रहो। जीवन भर संघर्ष करते रहो। उधर आलोचना लिखकर वे परिषदों में, विदेश यात्राओं पर और पुरस्कार समितियों में, इसलिए जो समझदार किस्म के लोग होते हैं, वे साहित्य में आलोचना का क्षेत्र अंगीकार करते हैं। वैसे भी कहा गया है कि जो कविता, कहानी और उपन्यास आदि कुछ न लिख पाए, वह आलोचक हो जाता है। इधर मैंने एक महत्त्वपूर्ण किताब पढ़ी है, 'आलोचना भी रचना है।' इस प्रकार आलोचक हिंदी जगत् का सबसे बड़ा लेखक है। यह आपको मानना ही पड़ेगा। न मानोगे तो अपनी दुर्गति कराने के लिए तैयार रहो।

ऑफिस में भी अफसर उन्हीं लोगों से डरता है, जो उसे गाली देते हैं। अब यदि आपको ऑफिस में काम करने से बचना है। आए दिन दफ्तर से गोल मारते रहना है और तनख्वाह पूरी लेनी है, तब आपको कर्मचारी यूनियन का नेता बनना पड़ेगा। नहीं बन सकते यूनियन के नेता तो यूनियन में कोई भी छोटा-बड़ा पद हथिया लीजिए। कई लोग तो

सिर्फ इसलिए एसोसिएशन के पदाधिकारी बने बैठे हैं कि उनका बेसमय कहीं ट्रांसफर न हो जाए। अब आप यूनियन में पदाधिकारी जो ठहरे, फिर कौन आपसे काम करने को कहेगा? उसे मरना है क्या? यूनियनवाले ऑफिस में काम छोड़कर और सबकुछ करते हैं। वे धरने पर बैठते हैं, हड़ताल करते हैं, जुलूस निकालते हैं और अफसर नामक प्राणी चाहे जैसा भी हो, भले ही वह छोटे कैडर से प्रमोशन लेकर बड़े पद पर आया हो और अपनी कार्यप्रणाली में सहज-सरल हो, परंतु वह अफसर है, इसलिए उसे गरियाना बहुत जरूरी है। यदि वे ऐसा न करें तो उनकी नेतागिरी धरी रह जाए। काम करनेवाले और मेहनत से योजनाएँ पूरी करनेवाले ऑफिस में बहुत हैं। वे हैं तो ऑफिस है, वरना ऑफिस ही न होता। परंतु इन ऑफिसों में और पूरे प्रशासन-तंत्र में काम न करनेवालों की ही चलती है, क्योंकि उन्हें गाली देने की कला आती है। वे ऑफिस आएँ न आएँ, कोई बोलनेवाला नहीं। आज यहाँ सम्मेलन, वहाँ सेमिनार, ठिकाँ जगह रैली, फलाँ जगह जुलूस और ऑफिस में उनसे भूले से कोई कुछ कह दो तो धरना। इस प्रकार ये लोग प्रशासन की शोभा हैं। ऑफिस की शान हैं। अफसर इन्हें पटा के रखता है। पटाकर रखना पड़ता है। न रखे वह इन्हें खुश तो उसकी दुर्गति निश्चित समझो। अफसर जानता है कि सारे नेता इनके आदमी हैं, वे नेताओं के। वे बने ही हैं एक-दूजे के लिए, टाइप कुछ भी हो। स्थानीय पत्रकार सब उनके अभिन्न मित्र है। पत्रकार उनसे पूछते फिरें, 'गुरु, बहुत दिन हो गए, तुम्हारे विभाग से कोई समाचार नहीं छपे हमारे अखबार में।'

वह हँसकर कहते, 'अफसर ठीक-ठाक हैं।' अपने कहे अनुसार चलता है। हम और हमारे लोगों को कुछ नहीं कहता। सिर्फ सुनता है हमारी। महीनों ऑफिस न जाओ, कभी अपसेंट नहीं लगाता।

इन्हें गालियाँ देने के अवसर मिलते रहें। चिल्लाने को मुद्दे हाथ आ जाएँ और कैसे भी वे पूरे प्रशासन में सबसे ऊपर नजर आएँ, बिना कुछ किए-धरे। वे सदैव संलग्न रहते हैं, ऐसे ही सद्प्रयासों में। वह सफल कहे जाते हैं। सरकार उनसे बातचीत करती है। अफसर उनके सहारे के बिना कोई काम नहीं कर सकते। वे कुछ भी न करें, परंतु सारी सफलताओं का श्रेय उनके सिर पर। यह सचमुच महान् हैं।

सार्वजनिक जीवन में आपकी कोई पहचान न हो, कोई कौड़ी भर न पूछता हो आपको। आप निकल जाएँ मोहल्ले की गली से और आपको देखकर कोई कुत्ता तक पूँछ हिलाए। आपके दिमाग में चर्चित होने का कीड़ा कुलबुलाता हो, तब आप बिल्कुल बे-सिरपैर वाले बयान देने लग जाइए। जैसे गांधीजी के सेक्स प्रयोगों के विषय में कुछ भी कहने लग जाइए। नेहरूजी और मिसेज माउंट बेटन के प्रेम-प्रसंगों की चर्चा विस्तार से करिए। देखिए, लोगों का ध्यान आपकी ओर खिंचने लगेगा। लोग ऐसी ही बातों को ध्यान से सुनते हैं। उन्हें लगता है, वक्ता दूर की कौड़ी लाया है। आप कम समय में ज्यादा चर्चित होना चाहते हैं तो किसी भी महापुरुष को एक तरफ से गाली देने लगिए। अखबार में खबर बनेगी। दूरदर्शन पर बहस चलेगी। आप हीरो बना दिए जाएँगे, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर। आजादी के लिए, मानव अधिकारों की सुरक्षा का वास्ता देकर।

अब कुत्ता आदमी को काट ले तब खबर थोड़े ही बनती है। हाँ, आदमी कुत्ते को काट ले तो खबर जरूर बनती है। चर्चा का संदर्भ निकलता है, आदमी में इतना गुस्सा कहाँ से आया? क्या वह व्यवस्था से असंतुष्ट था? आज जनता में इतना असंतोष बढ़ गया है कि एक आदमी ने आक्रोशित होकर कुत्ते को काट लिया, अपने इन्हीं जबड़ों से, इन्हीं दूध से चमकते दाँतों से। इतना पतित क्यों हो गया हमारा समाज और उसमें रहनेवाला आदमी? इस प्रकार चल निकलेगा एक चिंतन का सिलसिला। चलता रहेगा बहुत दिनों तक, जब तक कुत्ते को काटनेवाला आदमी बहुचर्चित न हो जाए। इधर कई संस्थाएँ उस महान् आदमी को सम्मानित करने का प्रोग्राम बना रही हैं। इस प्रकार किसी भी क्षेत्र में बिजूका पहचाना जाता है और प्रतिभा अनचीन्ही रह जाती है। जोकर बाजी मार ले जाते हैं और कर्मठ नेपथ्य में खप जाते हैं। आश्चर्य है कि जमूरे करतब दिखा रहे हैं और जनता ताली पीट रही है।

५२५-आर, महालक्ष्मीनगर,
इंदौर-१०
दूरभाष : ९४२५१६७००३

इस अंक के चित्रकार

अशोक 'अंजुम'

जाने-माने चित्रकार। चार हास्य-व्यंग्य संग्रह, पाँच गजल संग्रह, 'एक नदी प्यासी' गीत संग्रह; हास्य-व्यंग्य एवं गजल, कविता, दोहा, लघुकथा, गीत आदि विधाओं पर सत्ताईस पुस्तकें संपादित।

'श्रेष्ठ कवि', 'विशिष्ट नागरिक', 'राष्ट्रभाषा गौरव', 'हास्य-व्यंग्य अवतार', 'लेखकश्री', 'काव्यश्री', 'साहित्यश्री', 'समाज रत्न', 'हास्यावतार', 'मेन ऑफ द इयर', 'साहित्य शिरोमणि', 'श्रीमती मुलादेवी काव्य-पुरस्कार', 'स्व. रुदौलवी पुरस्कार', 'दुष्यंत कुमार स्मृति सम्मान', 'सरस्वती अरोड़ा स्मृति काव्य-पुरस्कार', 'डॉ. परमेश्वर गोयल व्यंग्य शिखर सम्मान', 'रजा हैदरी गजल सम्मान'। 'प्रयास' पत्रिका के संपादक, विभिन्न मंचों, संगठनों, समितियों के अध्यक्ष, सचिव आदि रहे।

संपर्क : ६१५, ट्रक गेट, कासिमपुर,
पावर हाउस, अलीगढ़-२०२१२७ (उ.प्र.)

चाचीजी

● माया मिश्र

फोन की घंटी घनघना उठी। आटा सने हाथों को जल्दी से धोकर अंदर पहुँची, तब तक घनघनाहट बंद हो गई।

'किसका होगा?' मन में सवाल उठा। थोड़ी चिंता भी हुई। फिर खुद को तसल्ली देते हुए सोचा, 'छोड़ो, अगर जरूरी होगा तो दुबारा आएगा।'

मैं रसोई की तरफ मुड़ी, तभी फिर घंटी बजी। झटके से रिसीवर उठा लिया।

''हैलो!''

''हैलो दीदी, मानव बोल रहा हूँ। रमा चाची अब नहीं रहीं।''

''क्या?'' रिसीवर पकड़े मैं खड़ी हो गई। भाई आगे क्या कह रहा था, मुझे कुछ सुनाई नहीं दिया। दिमाग में साँय-साँय की आवाज ही गूँज रही थी।

''मम्मी!'' मेरी बेटी ने मुझे जोर से हिलाया। मेरी चेतना लौटी और वहीं धम्म से कुरसी पर बैठ गई।

''कब से आपको आवाज दे रही हूँ!'' बेटी ने कहा।

''अच्छा! मैंने तो सुना ही नहीं।''

मेरा उदास चेहरा देखकर बेटी ने पूछा, ''मम्मी, क्या हुआ?''

''कुछ नहीं बेटा।'' क्या बताती उसे।

आँखों में चाची का उदास चेहरा तैर रहा था। वे रिश्ते में नहीं थीं। मेरे गाँव के पड़ोस में रहती थीं। मैंने उनके जैसी जीवट महिला नहीं देखी। असहनीय पीड़ा झेलते हुए भी चेहरे पर हमेशा ममतामयी मुसकान तैरती रहती। सबकी खुशियों का, जरूरतों का ध्यान रखने में हमेशा तत्पर रहतीं। बचपन से उनका यही रूप देखती आ रही हूँ। जब भी गाँव जाती, सबसे पहले उन्हीं से मिलने दौड़ पड़ती। मुझे गोद में बिठाकर खूब प्यार-दुलार करतीं। उनकी कोई बेटी नहीं थी, लेकिन बेटी की चाह बहुत थी। बेटी के इंतजार में चार-चार बेटे हो गए। शायद इसी कमी को अपना सारा प्यार मुझे देकर पूरा करती थीं।

चाचाजी शहर में बिजली विभाग में थे। घर में बूढ़े सास-ससुर, एक बिन ब्याही ननद। खेती-बाड़ी की जिम्मेदारी होने के कारण चाची शहर में चाचाजी के पास नहीं जा पाई थीं। चाचाजी ही छुट्टियों में गाँव आते थे।

''मम्मी, सब्जी जल गई।'' अचानक बेटी चिल्लाई। मैं हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। अभी सारा काम बाकी था। बच्चों को स्कूल भी जाना है।

सुपरिचित रचनाकार। हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा शिक्षक सम्मान, मधुबन संबोधन पुरस्कार से कहानी पुरस्कृत संप्रति रघुवीर सिंह मॉर्डन सी.से. स्कूल, दिल्ली में वरिष्ठ अध्यापिका।

मैं अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गई। घर खाली होते ही फिर पुरानी स्मृतियों में खो गई।

चाची की छोटी बहन निशा भी शहर में ही रहती थी। चाचाजी उन्हीं के साथ रहते थे। निशा के पति कारोबारी व्यक्ति थे। चाचाजी से उनकी अच्छी पटती थी। घर होने के बावजूद चाचा किराए के मकान में रहें, उन्हें मंजूर नहीं था। चाचाजी वहाँ रहना नहीं चाहते थे, पर बार-बार दबाव डालने पर तैयार हो गए। चाचा गाँव आते-जाते रहते। देखते-देखते चाची चार बेटों की माँ बन गईं। ननद की शादी हो गई। सास-ससुर के गुजरने के बाद चाची की जिम्मेदारी और बढ़ गई थी। बहन निशा और उसके पति ने सलाह भी दी कि सबकुछ बेच-बाचकर शहर में ही बस जाओ। गाँव तो अब वैसे भी उजड़ रहा है। यहाँ बच्चों की शिक्षा-दीक्षा अच्छे से हो जाएगी। पर पुश्तैनी जमीन-जायदाद चाचाजी बेचने को तैयार नहीं हुए। कहते थे—चार-चार बेटे हैं। अगर शहर में रोजी-रोटी का जुगाड़ नहीं कर पाए तो अपना घर-जमीन ही देख लेंगे। बात भी उनकी सही थी। कल क्या होगा, कोई नहीं जानता।

डोर बेल लगातार बज रही थी। घड़ी पर निगाह गई, दो बज रहे थे।

'अरे! बच्चे स्कूल से आ गए? समय का पता ही नहीं चला।' जल्दी से दरवाजा खोला। बच्चे झुँझलाए से खड़े थे। अपने ही मन पर मेरा वश नहीं चल रहा था। बेलगाम घोड़े की तरह बार-बार चाची की तरफ चला जा रहा था। चाची को देखकर यह महसूस हुआ कि जिंदगी किसी-किसी के साथ ऐसा खिलवाड़ क्यों करती है कि सारी उमर कोशिश करने के बाद भी सुख का एक कतरा भी उसे नसीब नहीं होता। चाची की पीड़ा उसे भीतर तक रुला देती थी।

ऐसा नहीं था कि चाची ने सुख देखा नहीं था, पर वह सुख क्षणिक था, तभी तक जब तक चाचा का नैतिक पतन नहीं हुआ था। एक कार

दुर्घटना में निशा के पति चल बसे। इकलौते थे, कारोबार फैला हुआ था। देखभाल करनेवाला कोई नहीं था। बच्चे अभी छोटे थे। पढ़ी-लिखी न होने के कारण निशा उनका कारोबार नहीं सँभाल सकती थी। सबकी राय से यही तय हुआ कि जब तक बच्चे बड़े नहीं हो जाते, उनका कारोबार चाचाजी सँभालें। चाचाजी की व्यस्तता बढ़ गई थी। सप्ताह में जो एक दिन अपने परिवार के साथ गुजारते थे, वह अब कम होने लगा। सप्ताह महीनों में बदलने लगे। हालात ऐसे हो गए कि अपने परिवार से कटने लगे और निशा के परिवार से ज्यादा जुड़ने लगे। चाची के चेहरे पर नाराजगी के भाव उभरते, लेकिन कभी शिकायत नहीं करतीं। वह जब भी आते, उनके चेहरे की चमक बढ़ जाती। सारे शिकवे-गिले दूर हो जाते।

अचानक से कुछ अनहोनी सुगबुगाहट शुरू हो गई थी। लोग आपस में फुसफुसाते रहते और चाची को देखते ही चुप हो जाते। एक दिन जैसे बम फटा। चाची के सामने खुलासा हो ही गया। हवा की तरह यह बात फैल गई कि चाचाजी और निशा के बीच कुछ पक रहा है। चाची विश्वास करने को तैयार नहीं थीं। शायद अपने आपको झूठी तसल्ली दे रही थीं या बहन पर से भरोसा तोड़ना नहीं चाहती थीं। बेपरदा होते ही चाचा की आँखों की शरम भी मर गई थी। वह निशा के साथ खुलेआम घूमने लगे। चाची ने निशा को बहुत फटकारा। कुछ दिन खूब हल्ला-गुल्ला मचा, फिर सब शांत हो गया। चाची ने भी इसे अपना भाग्य मानकर स्वीकार कर लिया था।

चाचाजी पूरी श्रद्धा से निशा और उसके बच्चों की देखभाल कर रहे थे। शायद वह भूल गए थे कि वहाँ वह सिर्फ मेहमान की हैसियत से हैं। बड़े होने पर बच्चे कभी भी उनका पत्ता साफ कर सकते थे।

चाची का संघर्ष जारी था। खेती-बाड़ी उनके बूते के बाहर थी, इसलिए खेत बँटाई पर दे रखा था। बाग-बगीचे देखभाल न होने के कारण सूखते जा रहे थे। अब तो गिनती के आम और महुए के पेड़ बचे रह गए थे। चाचा कभी-कभार गाँव आते, हिसाब-किताब देखते और आमदनी का भारी हिस्सा अपने पास रख चले जाते। चाची कुछ नहीं कह पातीं। बच्चों का हवाला भी नहीं दे पातीं, बल्कि उनके आने पर मुरझाए चेहरे पर बहार आ जाती। 'क्या बनाऊँ, क्या खिलाऊँ, कैसे सेवा करूँ', इसी में लगी रहतीं। चाचा शायद बिल्कुल ही ठूँठ हो गए थे। चाची की खुशी देखकर भी उनके मन में प्यार की कोपलें नहीं फूटतीं।

निशा के दोनों बेटे अफसर बन गए। चाची का भी बड़ा बेटा एक स्कूल में मास्टर लग गया और दूसरा बैंक में बाबू। बाकी दो अभी संघर्ष कर रहे थे। घर की दशा थोड़ी सँभल गई थी। दो-दो बहुओं से घर भर गया। बच्चों की किलकारी गूँजने लगी। सूना आँगन फिर से खिलखिला उठा था। उधर चाचा की स्थिति बद-से-बदतर होती जा रही थी। जिसको अपना बनाकर पाला-पोसा, वही अब बात-बात पर उन्हें अपमानित करने लगे थे। चाचा त्रिशंकु की तरह हो गए थे।

शायद अपनों की मार ने चाची को कमजोर बना दिया था। वह बीमार रहने लगी थीं। बच्चे बहुत खयाल करते। चाचाजी भी कभी-कभार आकर देख जाते। चाची उनसे कुछ कहती नहीं, लेकिन मन से बहुत गहरे जुड़ी थीं। बेटों का मन उनसे खट्टा हो चुका था। उनके आने पर उनसे दूर-दूर रहने की कोशिश करते। एक दिन चाची की तबीयत ज्यादा खराब हो गई। डॉक्टरी जाँच से पता चला कि लीवर कैंसर है। एक-दो महीने से ज्यादा नहीं जी पाएँगी। शायद सुख वे अपने भाग्य में लिखाकर ही नहीं लाई थीं। तभी तो जब खुशियों ने दस्तक देना शुरू किया तो जाने की तैयारी करने लगीं। उनको किसी ने बताया नहीं, पर देखने आनेवालों की बढ़ती तादाद और उनकी आँखों से टपकती बेचारगी का भाव देख उन्हें आभास जरूर हो गया था।

एक दिन चाची ने कहा, 'जब मैं न रहूँ तो मेरे कानों की बालियाँ मेरी पोती को देना।'

चाचाजी भी उनकी बीमारी के बारे में जान गए थे। देखने आते तो जल्दी जाते नहीं थे। चाची के पास चुपचाप बैठे रहते। घरवालों ने कई बार उनकी आँखों से आँसू बहते देखे, जिन्हें वह अखबार से छिपाने की कोशिश करते।

जीवन के अंतिम पड़ाव में शायद चाचाजी आत्मग्लानि महसूस कर रहे थे या निशा के परिवार से उपेक्षित होने का प्रभाव था, इस बार आए तो गए ही नहीं। उनके रहने पर बच्चों ने कोई उत्साह नहीं दिखाया, पर चाची जरूर खुश नजर आने लगी थीं। देर से ही सही, लौटे तो यहीं न। यह क्षणिक सुख जीवन भर की वेदना भुला देने में सक्षम था।

उनकी बीमारी की खबर सुनकर मैं भी मिलने गई थी, लेकिन बच्चों की पढ़ाई की वजह से रुक नहीं पाई थी। व्यस्तता के कारण दुबारा नहीं जा पाई थी। रात को पति घर आए तो मेरा उदास चेहरा देख पूछ बैठे, ''तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न।''

सब्र का रोका हुआ बाँध टूट गया। मैं रो पड़ी। रोते-रोते बताया, ''चाची अब नहीं रहीं।''

वह बहुत दुःखी हुए और कहा, ''हम कल ही चलेंगे।'' रातभर सो न सकी। सुबह-सुबह ही गाँव के लिए निकल गए। वही घर, वही आँगन, वही लोग; पर सिर्फ चाची के न होने से घर खाली-खाली लग रहा था। बड़े बेटे ने बताया, ''तुलादान के अगले दिन माँ बहुत खुश थीं। देर रात तक पिताजी से बातें करती रहीं। जब सोईं तो फिर आँखें नहीं खुलीं।'' वह फफक उठा। उसे चुप कराने का असफल प्रयास करती रही।

''गऊ थीं गऊ, बेचारी तकलीफ सहती रहीं, पर उफ नहीं की। जाते-जाते पति को भी माफ करती गईं।'' भीड़ में से किसी महिला की आवाज आई। मैं तिलमिला उठी। आखिर गऊ की उपाधि क्यों दी जा रही है? क्या इसलिए कि जीवनभर अपनी पीड़ा को चुपचाप पीती रहीं? क्या इसलिए कि उसने पति की ज्यादतियों को स्वीकार कर उसे माफ कर दिया? लेकिन बच्चे न तो अपने पिता को स्वीकार कर पा रहे थे और न ही माफ। पिता होने के नाते सिर्फ रिश्ता निभा रहे थे।

लोगों से पता चला था कि निशा के बेटों ने उन्हें अपने घर से भगा दिया था। और कहाँ जाते? जीवन भर जिसकी परवाह नहीं की, आज उन्हीं की शरण में आने को विवश थे।

चाचाजी दालान में पड़े खाँसते रहते। समय पर खाना-पानी मिल जाता था, पर भरे-पूरे परिवार के होते हुए भी आज वे बिल्कुल अकेले थे।

आर ३८, वाणी विहार, उत्तम नगर
नई दिल्ली-११००५९

प्रकृति का नाद

कविता

● जय प्रकाश पांडे

रात की नीरवता में
जब चाँद भी थका-हारा सा
मलिन हो रहा
चक्कर लगाते-लगाते धरा के
और अनेकानेक तारे या तो डूब गए
या हजारों-लाखों टन भस्म हो गए
अपनी टिमटिमाती रोशनी को
धरा तक पहुँचाने में,
जाड़ों की ठंडी रात में पहाड़ भी चुप बैठा
संपूर्ण गंभीरता को समेटे समाधिस्थ
मधुमास के स्वागत में दिन भर व्यस्त
अपनी सूखी-पीली कमजोर पत्तियों को गिराता
ओक का पेड़ थक गया है,
और चीड़ से तनिक भी
बात किए बिना आराम कर रहा
कल फिर गिराएगा ओक
अपनी ढेर सारी पत्तियाँ
और ढक देगा नरम खट्टी घास को
उस खट्टी घास को,
जिसे दिनभर खोद-खोदकर
खाता रहा बंदरों का कुनबा
और करता रहा अस्त-व्यस्त पूरा जंगल,
अब सुकून में कहीं दुबक रहा
रात के कुहासे में
उजाले और अँधेरे के बीच
गिलहरी जो करती रहती है दिन भर
पहाड़ों की पैमाइश
एक कुशल पटवारी की तरह
मीटर-किलोमीटर का हिसाब लगाते-लगाते
अब चिपटी पड़ी है एक डाल पर
कुछ सेंटीमीटर में ही
फिर यह खग क्यों जग रहा है
अपनी चक्क-चक्क'''के संगीत के साथ
क्या नीरवता तुम्हें रास नहीं आती
देखते नहीं ओक सो रहा,
जिसने तुम्हें प्रश्रय दिया
खुद में छिद्र कर क्या ?
तुम्हारे पूर्वजों ने ही इसे बोया था
पहाड़ की छाती को
विदीर्ण होने से रोकने के लिए
जिसे ओक की जड़ ने जकड़ रखा है
तमाम मुसीबतों झंझावातों में भी
और मेरा कलरव संगीत प्रकृति की चेतना है,
अपनी समग्रता में, अपने वैभव में
प्रकृति का सुंदर नाद
चक्क चक्क, चक्क चक्क!

उफनता सागर उद्दाम
दिल की गहराइयों में
भविष्य के गर्भ में गोते लगाता
सबकुछ ढूँढ़ निकाल लाने की चाहत के साथ
अनंत नीले आसमान में
उन्मुक्त पक्षी सा तिरता अपने पंख फैलाए
धरा पर अपनी परछाईं को परखता
कंधों पर माँ-बाप, नाते-रिश्तेदारों के
बहते अरमानों का बोझ थामे
जो किताबों के बस्ते को गीला कर
बना रहा है उन्हें और भी भारी
साइकिल की बढ़ी हुई चेन सी बढ़ती महत्त्वाकांक्षाएँ
जो जरा सी गति पकड़ने पर उतर जाती है
अपने गियर से
बिना किसी गति अवरोधक के
सीधी-सपाट सड़क पर भी
और सवार को रखती है आशंकित,
भयातुर मंजिल से दूर
सपाट दिखते तुम्हारे चेहरे के भाव
बता ही देते हैं तुम्हारा अनमनापन
उतर आई है तुम पर चिंताएँ मँडराते गिद्ध सी।

नवोदित कवि-लेखिक। रेलवे में विभिन्न पदों पर कार्य। रेलवे हिंदी अवार्ड प्राप्त। संप्रति ओक ग्रोव स्कूल में प्रधानाचार्य के पद पर।

ओक ग्रोव स्कूल
झारीपानी, मसूरी-२५५००१
जिला-देहरादून (उत्तराखंड)
दूरभाष : ९७६०५३०००८

राम झरोखे बैठ के

बेहतर श्वान या इनसान

● गोपाल चतुर्वेदी

काफी अंतर है श्वान और इनसान में। एक चौपाया है दूसरा दो पाया। इस के अलावा दोनों को खंभों से चिढ़ है। एक खंभे को देखते ही टाँग उठाता है, तो दूसरा सामने पड़ने पर भले ही जुबानी दुम हिलाए, पीछे-पीछे मन की भड़ास निकालता है। एक और अहम फर्क है दोनों में। एक की भाषा भौंकना है, दूसरे की बोलना।

यों देखने में आया है कि कई बोलते-बोलते भौंकने लगते हैं। आदमी आत्मनियंत्रण खोने पर भौंकता है, कुत्ता हर हाल में। बस उस की भौंक का अंदाज बदलता है। कभी वह भौंक लात खाए दुःख-दर्द की होती है, कभी डराने-धमकाने की। कुत्ता इनसान का सबसे वफादार दोस्त है। पर मानव के दंभ का मुकाबला नहीं है। युधिष्ठिर का कुत्ता उनके साथ स्वर्ग के द्वार तक गया था। दीगर है कि उसे वहाँ से खदेड़ दिया गया।

फिर भी कुत्तों ने वफादारी नहीं छोड़ी है। वह दिल को दिलासा दे लेते हैं कि अपने-अपने नियम-कायदे हैं। कौन कहे कि स्वर्ग में उनका प्रवेश वर्जित है। युधिष्ठिर हो या अन्य कोई सामान्य इनसान, कुत्ते के लिए आदमी आदमी है, राजा हो या रंक। इसीलिए हमें यकीन हो चला है कि कुत्तों के अंतर में निर्धन और समृद्ध का अंतर नहीं है। वह मानकर चलते हैं कि उनके कुछ बिरादर भाग्यशाली हैं। अच्छे घरों के लाड़ले हैं। कुछ किस्मत की खोट से सड़क की शोभा हैं। इसके बावजूद उनकी कुत्तियत सही-सलामत है। जो भी रोटी दे वह उसके सगे हैं। यह सिफत सिर्फ कुत्तों में है।

बिस्कुटों के लिए कुत्ते आपस में भले लड़ें, पर उनके आगे उन में दुम हिलाने की प्रतियोगिता है, जैसे तथाकथित प्रगतिशील छात्रों में भारत की बरबादी के नारे लगाने की। पूरा पैकेट चार-पाँच मिनट में शेष होता है, पर श्वान-दल पूरे पार्क में उनके पीछे-पीछे चलता है, जैसे किसी सुरक्षा पाए भूतपूर्व या वर्तमान मंत्री अथवा सांसद की रक्षा के गार्ड।

इनसान को भ्रम है कि वह संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। जरूर होगा। पर उसकी इनसानियत सीमित है। कभी-कभी तो उसकी हेकड़ी ऐसी है कि वह अपनों को भी पराया महसूस करा दे। जिस थाली में खाए उसी में छेद करना उसकी विशेषता है। वरना क्या तुक है कि जिन्होंने पाला-पोसा, योग्य बनाया, संस्कार दिए, उन्हीं माँ-बाप को बेटा सफल होकर घास न डाले। देखकर ऐसी बेरुखी से आए कि जैस वह हर हाल में गए-बीते ही नहीं, गए गुजरे भी हैं। अफसोस तो तब होता है जब अपने से व्यवहार में बेहतर श्वान का प्रयोग कोई गाली के अंदाज में करे। इसे कुत्तियत की खासियत ही कहेंगे कि कुत्ते फिर भी बुरा नहीं मानते हैं।

हमने तो अनुभव किया है। एक सज्जन रोज सबेरे सैर को आते हैं। हमें भी कभी अधजगे, कभी नींद में वजन पर नियंत्रण के लिए बिस्तर से उठाकर घर के बाहर खदेड़ दिया जाता है। विवशता है। घर के पास ही एक हरियाली का स्थल है, जहाँ बैंच-सुख भी उपलब्ध है। हम वहीं जाकर ढेर हो जाते हैं। कई बार हमने वहाँ सोने का प्रयास किया, पर हर बार असफल रहे। बैंच के सामने कोई योग की क्लास चलती है। हमें कोई शक नहीं है कि वह शरीर व मन के लिए अवश्य सेहतमंद होगी। हम उसे देखते हैं और मुफ्त का मनोरंजन पाते हैं। आँख मूँदने के इरादे इस दृश्य के सन्मुख कतई नाकाम हैं। मोटे थुलथुल लोग कपालभाती करते हैं तो लगता है कि उनके शरीर में छोटा-मोटा भूकंप आ रहा है। पार्क के कुत्ते चेतावनी के बतौर भौंकने लगते हैं। कहीं उनके मन में भी हमारी तरह संशय है कि साँस अंदर-बाहर खींचने-छोड़ने में कहीं यह आगे या पीछे लुढ़क न पड़ें।

अचानक कुत्तों का ध्यान इस योग-टोल से हटता है। वह उस ओर लपकते हैं, जहाँ उनका दोस्त पार्ले-जी का पैकेट लिये चला आ रहा है। सब उसकी ओर रेस लगाते हैं, जैसे सागर मंथन के बाद अमृत कलश के लिए देवता-राक्षस दौड़े। उनकी दुम ऐसे लहराती है, जैसे हमारे स्कूल के मासाब की संटी पहाड़े न याद करने पर चलने लगे। यह रोज का नजारा है। यह घूमनेवाला कोई श्वान प्रेमी है। वह एक बिस्कुट कभी शेरू को देते हैं, कभी भेरू को। बिस्कुटों के लिए कुत्ते आपस में भले लड़ें, पर उनके आगे उनमें दुम हिलाने की प्रतियोगिता है, जैसे तथाकथित प्रगतिशील छात्रों में भारत की बरबादी के नारे लगाने की। पूरा पैकेट चार-पाँच मिनट में शेष होता है, पर श्वान-दल पूरे पार्क में उनके पीछे-पीछे चलता है, जैसे किसी सुरक्षा पाए भूतपूर्व या वर्तमान

मंत्री अथवा सांसद की रक्षा के गार्ड। यह रोजमर्रा का किस्सा है, आदमी हो तो आशा छोड़ दे और साथ ही बिस्कुट इनायत करनेवाले का साथ भी। पर यही तो कुत्तियत है। जिसने एक बार उपकार किया, क्या पता कब वह दोबारा भी कर दे। किसी अहसान को भूलने का विलक्षण गुण आदमी में है, कुत्तों में नहीं। उनका नजरिया हमेशा सकारात्मक है।

हम घर-निकासी की सजा बिला नागा भुगतते हैं। बिस्कुट वाले सज्जन की इतवार को पार्क में हाजिरी नहीं लगती है। कुत्ते हैं कि फिर भी आशान्वित हैं। कौन जाने, भौंक-भौंककर एक-दूसरे से उनकी अनुपस्थित के कारण का अनुमान लगा रहे हैं। अब कुत्तों की जुबान अपने पल्ले तो पड़ती नहीं है। इनसानों में कुछ ही लेखक किस्म के अपवाद हैं, जो कुत्तों से संवाद करने में समर्थ हैं या फिर कुछ बच्चे हैं, जिनके लिए कुत्ता सिर्फ भाऊ-भाऊ है। कुत्ता दिखा नहीं कि वे भौं-भौं करने लगते हैं। इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि ऐसा हुनर अपने पास नहीं है वरना हम कुत्तों की बातचीत का पूरा विवरण पाठकों को प्रस्तुत करते।

फिलहाल उनके हाव-भाव से वह कुछ परेशान लगते हैं। सबके सब योग-टोल पर भौंकने में लगे हैं, जैसे अनमने से हम रोज घर से पार्क के प्रस्थान में। उनका ध्यान पार्क के प्रवेश द्वार पर है। कौन कहे कब देर-सबेर उन्हें बिस्कुट देनेवाला देवदूत अवतरित हो। मरहूम निदा फाजली के दोहे को तोड़-मरोड़ के कहा जा सकता है कि 'सातों दिन हैं श्वान के, क्या मंगल क्या पीर। जिस दिन सोए देर तक भूखा रखे फकीर!'

एक बार डी.एम. साहब के घर वह जी-हुजूरी को हाजिर हुए तो उनके टॉमी को कुछ नागवार सा गुजरा। जब वह साहब के घुटने छूने की कवायद कर रहे थे तो टॉमी ने आव न देखा ताव, उनके गुनहगार हाथ को धर दबोचा। डी.एम. साहब ने समझदारी दिखाई। अपनी नीली बत्ती लगी गाड़ी में उनकी सही जगह, पशु चिकित्सालय उन्हें भेज दिया। वहाँ डॉक्टर ने मरहमपट्टी ही नहीं की, तेरह की पहली सुई भी पेट में भोंकने की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी। अपने तोंद के मुलायम रक्षा कवच से उन्हें लगा कि जैसे चींटी रेंग गईं। दर्द नहीं महसूस हुआ तो क्या?

कुत्ते क्या जानें कि आज उनका दाता आराम फरमा रहा है। खुद तो शर्तिया भूखा नहीं रहेगा, पर जागे कुत्तों को तो बिस्कुटहीन कर ही गया। योग-टोल भी अब विसर्जन की तैयारी में है, उनकी रुटीन है कि योग की औपचारिकता संपन्न कर बाहर बने चाय के स्टॉल को वह कृतार्थ करते हैं। हमें अंदाजा है कि कुत्तों को इसकी खबर है। कितने स्वार्थी हैं ये उलजुलूल हरकत करनेवाले। खुद तो अकाल के शिकार की तरह चाय-बंद, टोस्ट मक्खन पर टूट पड़ेंगे। इतना भी खयाल नहीं है कि जिन्होंने भौंक-भौंककर उन्हें उत्साहित किया, उनको भी बंद का एक टुकड़ा या टोस्ट मक्खन का अंश दे दें। हमें लगता है कि निराशा में भी कुत्तों ने हार नहीं मानी है। वह योग-टोल को जैसे फिर से पार्क में ले जाने पर अड़े हैं। बदला लेने का उनके पास भौंकने के अलावा और साधन ही क्या है? आदमी को वह काटें कैसे! इन्हीं में से एक उन्हें बिस्कुट खिलाता है। चायवाला भी टोस्ट के टुकड़े कूड़ेदान से निकालकर उन्हें फेंक देता है। यह तो योग-टोल ही कम-अक्ल है, जो उनसे परहेज करती है।

इनसानियत और कुत्तियत का भेद समझने को सेठ रामदास के श्वान अनुभव के विषय में जानकारी जरूरी है। सेठजी को शहर में कौन नहीं जानता है? सबको पता है कि वह राम के नहीं, दमड़ी के दास हैं। वह इस अहम तथ्य से परिचित हैं कि वर्ण-भेद इनसानों में भले हो पर पैसे में नहीं होता है। इसमें क्या काला क्या सफेद। खुद काले होकर चमड़ी उन्हें गोरी प्रिय है। शहर के व्यक्तियों से दुआ-सलाम, भेंट-गिफ्ट उनकी व्यावसायिक मजबूरी है। एक बार डी.एम. साहब के घर वह जी-हुजूरी को हाजिर हुए तो उनके टॉमी को कुछ नागवार सा गुजरा। जब वह साहब के घुटने छूने की कवायद कर रहे थे तो टॉमी ने आव न देखा ताव, उनके गुनहगार हाथ को धर दबोचा। डी.एम. साहब ने समझदारी दिखाई। अपनी नीली बत्ती लगी गाड़ी में उनकी सही जगह, पशु चिकित्सालय उन्हें भेज दिया। वहाँ डॉक्टर ने मरहमपट्टी ही नहीं की, तेरह की पहली सुई भी पेट में भोंकने की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी। अपने तोंद के मुलायम रक्षा कवच से उन्हें लगा कि जैसे चींटी रेंग गईं। दर्द नहीं महसूस हुआ तो क्या? कुत्तों के प्रति कुछ दिली दहशत और नफरत उनके मन में घर कर गई।

कुछ दिनों बाद रामदास ने ऐसा अनपेक्षित कर डाला कि जिसने सुना वह चौंक उठा। उन्होंने एक महँगा पालतू कुत्ता खरीद लिया। घरवालों को स्वाभाविक शक हुआ कि रामदास कुछ पागल हो गए हैं? जो पैसे के लिए प्रतिष्ठा बेचने को प्रस्तुत हों, उन्हें क्या सनक सवार हुई कि कुत्ता खरीद लाए, वह भी हजारों का!

गनीमत यही है कि उसे घर के बाहर बाँधा जाता है। शुरू-शुरू में रामदास खुद उसे दूध-रोटी देने पधारते। कुत्ते आदमी से जल्दी बड़े होते हैं। कुछ दिनों बाद वह अपनी पूरी कद-काठी का हो गया। रामदास घर से जाते तो रोता, लौटते तो कार की आवाज सुनते ही दुम हिलाता। सेठजी का वही रुटीन जारी है। एक प्रत्यक्षदर्शी बताते हैं, वह खाना देने के पहले उसे लात मारते हैं। कुत्ता बिना काटने का उपक्रम किए रिरियाता है। फिर भी उसकी दुम हिलती रहती है। उसके बाद ही रामदास उसे खाना देने की कवायत करते हैं।

यह सुनकर हम असमंजस में हैं कि आदमी की इनसानियत बड़ी है कि कुत्ते की कुत्तियत? यह फैसला आप सुधी पाठकों पर ही निर्भर है!

सा
अ

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१

राजा लक्ष्मण सिंह
जिन्होंने हिंदी को बहुत दिया

● कुश चतुर्वेदी

उत्तर प्रदेश के महत्त्वपूर्ण माने जानेवाले महानगर आगरा के वजीरपुर मोहल्ले में यदुवंशी क्षत्रिय कुल में स्वनामधन्य ठाकुर रूपराम सिंह एवं श्रीमती गंगा देवी के कुल में आश्विन शुक्ल, नवमी संवत् १८८३ में विक्रमी तदनुसार ९ अक्तूबर, १८२६ को राजा लक्ष्मण सिंह का जन्म हुआ। राजा साहब तीन बहन एवं दो भाई थे। इनके अनुज ठाकुर मोहन लाल सिंह आगरा एवं अवध के डिस्ट्रिक्ट सेशन जज हुए। इनकी तीन बहनों में दो बहनें एटा में तथा एक बहन मथुरा में ब्याही थी। राजा साहब की ननिहाल मथुरा जिले की तहसील छाता के रहेरा ग्राम में थी। राजा साहब के पिता सनातनधर्मी परंपरा के पोषक थे। अत: प्रखर प्रतिभा होते हुए भी उन्होंने अपने बेटे लक्ष्मण सिंह को बारह वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत संस्कार के बाद ही सन् १८३९ में अंग्रेजी पढ़ने के लिए आगरा कॉलेज में प्रवेश कराया। इससे पूर्व घर पर ही हिंदी, संस्कृत और फारसी भाषाओं के शिक्षकों ने उन्हें पढ़ाया। इस परंपरावादी क्षत्रिय कुल में पाँच वर्ष की आयु में मुंडन के बाद घर पर पट्टी पूजा के बाद विद्यारंभ कराया जाता था और यज्ञोपवीत के बाद विद्यालय प्रवेश। राजा लक्ष्मण सिंह की मेधा शक्ति ने शिक्षकों को भी चमत्कृत कर दिया। वे निरंतर मेधावी छात्र स्कॉलरशिप पाते रहे। उस दौर में अध्ययन यात्रा में जूनियर और सीनियर दो ही डिग्रियाँ थीं और राजा साहब ने सीनियर परीक्षा पास की।

अंग्रेजी भाषा में पारंगत लक्ष्मण सिंहजी संस्कृत साहित्य से भी बड़े प्रभावित थे और उन्होंने अपनी सेकेंड लैंग्वेज के रूप में संस्कृत को चुना। हिंदी और विशेष रूप से ब्रजभाषा से उन्हें बड़ा लगाव था। इसके अलावा फारसी, बँगला, गुजराती और उर्दू भाषा पर भी उनका असाधारण अधिकार था।

राजा साहब को समृद्ध पारिवारिक पृष्ठभूमि मिली थी। इनके पूर्वज राजस्थान के राठौर क्षत्रिय थे और इनका संबंध जयपुर के राज परिवार से भी था। इनके पूर्वज अलवर राज्य के माचेड़ी क्षेत्र के 'करेमुर' गाँव के जागीरदार थे। राजा साहब के प्रपितामह राव कल्याण सिंह को उनके नाना ने गोद ले लिया था, इसलिए इन्हें यदुकुल क्षत्रिय माना गया। राजा साहब के दो विवाह हुए। पहला विवाह मथुरा जिले के डरावली गाँव में हुआ, किंतु उनकी धर्मपत्नी का निधन जल्दी ही हो गया। तत्पश्चात् दूसरा विवाह मथुरा जनपद के ही पिसाया गाँव में सन् १८४८-४९ में रुक्मिणी देवी से हुआ था। इनसे राजा साहब के छह पुत्र और तीन पुत्रियाँ जनमी, किंतु उनमें केवल दो पुत्र और दो पुत्रियाँ ही जीवित बचे। राजा साहब के दो पुत्रों में कुँवर कन्हई सिंह लोकजीवन में विशिष्ट स्थान रखते थे। अनेक संस्थाओं के वे पदाधिकारी थे। छोटे पुत्र कुँवर महेंद्र सिंह थे। कुँवर कन्हई सिंह के पाँच पुत्र थे—कुँवर जसवंत सिंह, लाखन सिंह, निधान सिंह, लोकेंद्र प्रताप सिंह और प्रबल प्रताप सिंह। लाखन सिंहजी साहित्यिक रुचि के थे। राजा साहब के छोटे कुँवर महेंद्र प्रताप सिंह के कोई संतान नहीं थी। अत: उन्होंने अपने भतीजे प्रबल प्रताप सिंह को गोद ले लिया था।

जाने-माने लेखक। लगभग दो दर्जन पुस्तकों का सृजन/संपादन। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'बाल कृष्ण शर्मा नवीन पुरस्कार', 'बाबू राव विष्णु पराड़कर पुरस्कार'। युनाइटेड किंगडम की साहित्यिक संस्थाओं, यू.के. हिंदी समिति लंदन, काव्यरंग नॉटिंघम तथा कृति यूके द्वारा सम्मानित। इंग्लैंड के विभिन्न नगरों में काव्यपाठ-संचालन।

राजा लक्ष्मण सिंह एक विद्यार्थी के रूप में अपनी प्रखर मेधा शक्ति के बल पर अपने गुरुओं के दुलारे रहे। आगरा कॉलेज के तत्कालीन प्रिंसिपल मिस्टर कैनी उनके परम प्रशंसक थे। रुड़की में जब इंजीनियरिंग कॉलेज खुला, तब उसके प्रारंभिक बैच में राजा साहब का नाम दाखिला के लिए चुनाव गया। संस्कारों से शुद्ध-सात्त्विक हिंदू होने के साथ-साथ वे वेशभूषा से विशुद्ध भारतीय थे, जो चूड़ीदार पायजामा-कुरता, अचकन आदि पहनते थे।

राजा साहब ने शासकीय सेवा में प्रवेश किया सन् १८४८ ई. में, यद्यपि १९१० में 'सरस्वती' के भाग एक में बाबू श्याम सुंदरदास ने १८५० ई. माना है। सर्वप्रथम वह पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ्टिनेंट गर्वनर के कार्यालय में सौ रुपए मासिक पर अनुवादक नियुक्त हुए। अपनी कार्यकुशलता के बल पर थोड़े समय बाद ही १८५३ में वे सदर बोर्ड के प्रधान अनुवादक हो गए। दो साल बाद सन् १८५५ ई. में वे इटावा के तहसीलदार नियुक्त हुए। थोड़े समय के बाद ४ फरवरी, १८५६ को ए.ओ. ह्यूम इटावा के कलक्टर हुए। ह्यूम साहब बड़े पारखी कलेक्टर थे और राजा लक्ष्मण सिंह से बड़े प्रभावित भी। वास्तव में ह्यूम के शासन की सफलता और लोकप्रियता का मुख्य श्रेय राजा साहब को है। एक बार राजा साहब ने ह्यूम से कहा कि आप जैसे विद्यानुरागी कलक्टर के रहते इटावा शहर में कोई अच्छा अंग्रेजी स्कूल न होना दुखद है। ह्यूम साहब ने कहा कि आप उद्योग करिए

और फिर राजासाहब ने शहर के मध्य एक बड़ा स्कूल बनवाया और उसे 'एच' का आकार दिया, जिसका नाम Humess स्कूल था। कालांतर में यह 'ह्यूम हाईस्कूल', फिर 'गवर्नमेंट हाईस्कूल' हो गया और आज उस इमारत में सनातन धर्म इंटर कॉलेज संचालित है। इटावा नगर में ह्यूम साहब के नाम से आंग्ल अक्षरों पर कई सरकारी इमारतें बनीं। १८५६ में राजा साहब डिप्टी कलक्टर बनाकर बाँदा भेजे गए। १८५७ में वे अपने भाई कुँवर मोहन लाल सिंह के विवाह में सम्मिलित होने आगरा आए थे, तभी गदर हो गया। इटावा में गदर का विशेष प्रभाव था, अंग्रेज अफसर भाग रहे थे। राजा साहब ए.ओ. ह्यूम से इस कदर प्रभावित थे कि वे इटावा आ गए और अपने सद्व्यवहार तथा संपर्क लाभ के जरिए ह्यूम साहब आदि की मानवीय सहायता भी की। उन्होंने अंग्रेज महिलाओं और बच्चों को सुरक्षित आगरा पहुँचाया। सन् १८५८ में अनंतराम के युद्ध में शौर्य प्रदर्शन के कारण उन्हें तीसरी श्रेणी का डिप्टी कलेक्टर बना दिया गया।

एक प्रशासनिक अधिकारी के रूप में आए राजा लक्ष्मण सिंह को इटावा की भूमि ने जहाँ सफल प्रशासक का स्थान दिया, वहीं वरेण्य साधक के रूप में उनकी पहचान बनी। हिंदी-संस्कृत साहित्य की साधना का पुनीत अवसर उन्हें इटावा में मिला और राजा साहब ने उसका जी भरकर सदुपयोग किया। इटावा के कार्यकाल में उनकी पहल पर कई ऐसे क्रांतिकारी कदम उठाए गए, जिससे देश का वातावरण प्रभावित हुआ। ए.ओ. ह्यूम और राजा लक्ष्मण सिंह की जोड़ी एक ऐसा मणिकांचन संयोग था, जिसने इटावा के लोकजीवन को जितना प्रभावित किया कदाचित् किसी अधिकारी के भाग्य में इतनी लोकप्रियता नहीं होती, जिसका परिणाम है कि एक शताब्दी बाद भी इटावावासी उन्हें कृतज्ञ भाव से स्मरण करते हैं।

इटावा में रहकर राजा लक्ष्मण सिंह ने जहाँ कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन किया, वहीं हिंदी-उर्दू-अंग्रेजी में एक ऐसे पत्र का प्रकाशन किया, जिसकी तीस हजार प्रतियाँ प्रकाशित होती थीं। हिंदी में इसका नाम 'प्रजाहित' था, उर्दू में 'मुहिब्बे रियाया' और अंग्रेजी में इसे 'पीपुल्स फ्रेंड' के नाम से जाना जाता था। हिंदी भाग का संपादन राजा लक्ष्मण सिंह, उर्दू भाग का हकीम जवाहर लाल और अंग्रेजी भाग का संपादन ए.ओ. ह्यूम किया करते थे। यह पत्र सन् १८६० से १८६४ तक प्रकाशित हुआ। इसके बंद होने का मुख्य कारण था, राजा साहब का बुलंदशहर चला जाना। इसमें प्रकाशित उनके लेख या अनुवाद बड़े चाव से पढ़े जाते थे। सन् १८६१ में इस अखबार की प्रतियाँ वायसराय ने रानी विक्टोरिया को इंग्लैंड में भेजी थीं।

'शकुंतला' नाटक का अनुवाद उन्होंने इटावा में किया। पटवारियों को हिंदी का रिकॉर्ड रखने का मौका राजा साहब और ह्यूम साहब के प्रयास से ही मिल सका। वर्ष १८७८ ई. में कालिदास कृत 'रघुवंश' का मूल पाठ उन्होंने इटावा से प्रकाशित करवाया। १८८७ में राजा साहब ने ह्यूम के एक पैंफलेट का हिंदी-उर्दू में अनुवाद किया, जो अंग्रेजी शासन पर व्यंग्य था।

इटावा नगर में ह्यूम स्कूल की स्थापना राजा साहब के ही प्रयासों का फल था। वह शिक्षण व्यवस्था के प्रति बड़े जागरूक थे। भैया साहब श्री नारायण चतुर्वेदी ने लिखा है कि ह्यूम्स हाईस्कूल में संस्कृत पढ़ाने की सही व्यवस्था न होने पर राजा साहब ने चौबे चतुर्भुज दासजी से घर जाकर आग्रह किया। उन्होंने कहा कि हम विद्या बेचते नहीं हैं, जिसे पढ़ना है, हमारे पास आकर पढ़ जाए तो राजा साहब ने उनसे कहा कि यह भी तो नहीं चाहते कि संस्कृत के जिज्ञासु विद्यार्थियों को कोई असुविधा हो। वे एक साथ यहाँ आकर कैसे पढ़ सकेंगे? आपको कोई तनख्वाह नहीं दे सका, आप इसी भाव से वहाँ जाकर पढ़ाएँगे तो ज्यादा छात्रों का भला होगा। इस तरह राजा साहब ने उन्हें तैयार कर लिया। चतुर्भुज दासजी ने जब वेतन लेने से मना कर दिया तो राजा लक्ष्मण सिंह के निर्देश पर उन्हें गुरुपूर्णिमा के दिन एक पीली थैली में कुछ राशि गुरु दक्षिणा के रूप में सम्मानपूर्वक भेंट की जाती थी, जो वर्ष भर के वेतन के बराबर थी। एक डिप्टी कलक्टर को शिक्षा के संदर्भ में इतनी चिंता होना विस्मयकारी था, किंतु राजा लक्ष्मण सिंह इटावा में सिर्फ डिप्टी कलक्टर बनकर नहीं रहे। सन् १८५८ में राजा साहब इटावा में सेकेंड ग्रेड डिप्टी कलेक्टर बना दिए गए। इटावा में रहते हुए उन्होंने वहाँ प्रबुद्ध लोगों की एक विचार सभा भी कायम की थी। उन्होंने वहाँ कई पुस्तकालय भी स्थापित किए।

इटावा उत्तर प्रदेश का छोटा नगर होते हुए भी साहित्यिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण जनपद रहा है। राजा लक्ष्मण सिंह का इटावा आना, इटावा और राजा साहब दोनों के लिए सुखद रहा। राजा साहब और ह्यूम दोनों की जोड़ी बड़ी सटीक थी। इटावा धौम्य ऋषि की तप-स्थली रहा। महाभारत कालीन प्रमुख गतिविधियों का केंद्र रहा। इष्टदेव की साधना हेतु प्रमुख स्थल माने जानेवाले इटावा का पुराना नाम 'इष्टिकापुरी' है। राजा साहब ने इटावा में रहकर बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किए। श्री ह्यूम अपने नाम पर स्थापित स्कूल में हाईस्कूल के बच्चों की परीक्षा हिंदी और संस्कृत भाषाओं में भी लेते थे, इसी वजह से संस्कृत ग्रंथों के हिंदी अनुवाद की जरूरत पड़ी। 'अभिज्ञान शकुंतलम्' का राजा साहब का अनुवाद बहुत दिन तक भारतीय सिविल सर्विस परीक्षा के पाठ्यक्रम में रहा।

दंड विधान अर्थात् पीनल कोड पहली बार हिंदी में प्रस्तुत करने का गौरव भी राजा साहब को प्राप्त है। पीनल कोड को उन्होंने अनूदित करके 'दंड संग्रह' नाम दिया। बुलंदशहर के डिप्टी कलक्टर के रूप में उन्होंने वहाँ का इतिहास लिखा और छपवाया थी। राजा साहब तेजस्वी और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी थे। एक बार कलक्टर मिस्टर ह्यूम ने उन्हें इटावा का मरुक्षेत्र सरकार की ओर से दिलवाने का प्रस्ताव किया तो उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। सन् १८७७ में दिल्ली सरकार ने उन्हें 'राजा' की पदवी प्रदान की थी। बुलंदशहर में वे बीस वर्ष कार्यरत रहे। वहीं से १८८८ में अवकाश ग्रहण करके चार सौ रुपए मासिक की पेंशन पाकर अपने घर आगरा आ गए। शिक्षा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के प्रति राजा साहब बड़े जागरूक थे। सन् १८८० में आगरा कॉलेज को उन्होंने दो हजार रुपए का दान दिया था। वह रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के भी सदस्य रहे। राजपूत बोर्डिंग हाउस आगरा के निर्माण में उनका बड़ा योगदान था। इलाहाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में डेलीगेट की हैसियत से उन्होंने भाग लिया था।

इटावा का कार्यकाल राजा साहब की सृजन गति का प्रमुख काल है। यहीं से १८६१ ई. में मि. ह्यूम हकीम जवाहर लाल के साथ उन्होंने 'प्रजाहित' पत्र निकाला। राजा साहब इसके संपादक थे। इटावा जनपद के सुविज्ञ रत्न और लंदन विश्वविद्यालय तथा कैंब्रिज में रहे इतिहासकार डॉ. श्रीराम मेहरोत्रा के अनुसार प्रजाहित हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू तीन भाषाओं में निकलता था; इसकी प्रसार संख्या तीस हजार थी। इसी दौरान उन्होंने 'शकुंतला' नाटक का हिंदी अनुवाद किया, जो सन् १८६३ में प्रकाशित हुआ। 'शकुंतला' के अनुवाद से राजा साहब ने प्रसिद्धि के सोपानों को स्पर्श करना आरंभ किया। इसकी सराहना न केवल भारत वर्ष में अपितु संसार भर में हुई। फ्रेडरिक पिंकाट ने इस अनुवाद की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए राजा लक्ष्मण सिंह के पांडित्य की जी भरकर सराहना की।

राजा लक्ष्मण सिंह को संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रबल पक्षधर माना जाता है। इसके तर्क में राजा साहब द्वारा 'रघुवंश' की भूमिका में लिखी गई बात को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है कि 'हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो न्यारी-न्यारी भाषाएँ हैं। हिंदी को इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमान तथा फारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं। उर्दू में अरबी-फारसी के, परंतु कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी-फारसी के शब्दों के बिना हिंदी न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं, जिसमें अरबी-फारसी के शब्द भरे हों।' राजा साहब शुद्ध भाषा अभिव्यक्ति के पक्षधर थे। वे भाषायी तौर पर मिलावट को रुचिपूर्वक न देखते थे, फिर भी जनग्राह्य बनाने के लिए वे सरल अभिव्यक्ति से परहेज न करते थे। राजा साहब उर्दू साहित्य के भी श्रेष्ठ जानकार थे और विस्मयकारी तथ्य यह है कि उनके लेखन-जीवन में सबसे अधिक पुस्तकें उर्दू में लिखी गई हैं। राजा साहब ने संस्कृत के महान् कवि कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का १८६३ में, 'रघुवंश' का १८७८ में तथा 'मेघदूत' का १८८२ से '८४ के मध्य हिंदी अनुवाद किया था।

राजा साहब की अनुवाद शैली की प्रशंसा फ्रेडरिक पिंकाट ने बड़े सशक्त शब्दों में की है। उन्होंने वर्ष १८७६ में प्रकाशित 'शकुंतला' नाटक की भूमिका में इस नाट्यकृति की तुलना शेक्सपियर के नाटकों से करते हुए इसे भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बताया है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का जैसा सटीक अनुवाद राजा साहब ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस अनुवाद का वैशिष्ट्य यह है कि संस्कृतनिष्ठ हिंदी में संवाद योजना तथा भाषागत लालित्य अनुपम है। नाटक का प्रत्येक पात्र अपनी प्रभावी भूमिका में दिखाई देता है। पात्र वचनों के माध्यम से सूक्ति वाक्यों की छटा भी दर्शनीय है। अपने समय में इस अनुवाद की धूम थी और यह आई.सी.एस. पाठ्यक्रम में समाहित था।

कृतज्ञ हिंदी संसार ऐसे समर्पित साधक को कभी भी विस्मरण न कर सकेगा, जिसने अंग्रेज सरकार में अफसर रहते हुए भारतीय संस्कृति और मूल्यों के लिए जीवन भर संघर्ष किया। अपनी भाषा और संस्कृति के लिए राजा साहब का योगदान कमतर नहीं है। यह उनके साहचर्य का ही परिणाम था कि १८५७ में जिस अंग्रेज कलक्टर ने पूरी ताकत से आंदोलन को विफल किया था, उसका ऐसा हृदय परिवर्तन हुआ कि वह कालांतर में उस राजनीतिक पार्टी का संस्थापक बना, जिसके आंदोलन ने भारत को आजादी दिलाई।

३, रंगरेजन टोला छिपैटी, इटावा (उ.प्र.)

लघुकथा

संवेदनाएँ मर रहीं

● **सेवा सदन प्रसाद**

अमर अपनी बाइक से ऑफिस जा रहा था। वह बहुत ही सँभालकर ड्राइविंग करता था, पर एक लॉरी वाले ने ओवरटेक के प्रयास में ढेर कर दिया। अमर एक झटके से रोड के किनारे जा गिरा और बाईक दूसरे किनारे। लॉरीवाला पल भर के लिए रुका, पर अमर को बेहोश देख, तेज रफ्तार से भाग गया।

चोट लगने से अमर कराहने लगा, उठने की शक्ति नहीं रही। दोनों ओर से गाड़ियाँ आतीं, लोग पलभर के लिए रुकते, फिर चल देते। लोगों की मानवता पर पुलिस का चक्कर हावी हो जाता। किसी ने भी सहायता के लिए मानवता का धर्म निभाना उचित नहीं समझा। सब पुलिस-थाना, कोर्ट-कचहरी से घबरा गए।

एक सज्जन ने बाइक रोकी। अमर ने कराहकर सहायता के लिए गुहार लगाई, पर उस शक्स ने भी अपने मोबाइल से पुलिस को फोन कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली।

करीब आधे घंटे के बाद पुलिस पहुँची। अमर को उठाकर अस्पताल ले गई, पर काफी रक्तस्राव की वजह से डॉक्टर उसे बचा न सके। डॉक्टर ने बस यही कहा, 'इसे लाने में आपने काफी दे कर दी।' और उसके चेहरे को सफेद कपड़े से ढक दिया।

सुबह के अखबार में संपादक ने लिखा—अमर तो मर गया पर संवेदनाएँ भी मर रही हैं।

६०१, महावीर दर्शन सोसाइटी,
प्लॉट नं. ११ सी, सेक्टर-२०
खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०
दूरभाष : ९६१९०२५०९४

शादीनामा

● रहिला रईस

''बेटी, मान जाओ!'' बूढ़ी माँ ने लरजती हुई आवाज और भीगी हुई आँखों से कहा। उनका रोम-रोम अरजी बना हुआ था। माँ की ऐसी हालत, यह बेबसी रेहाना के दिल पर हथौड़े बरसाती, लेकिन वह क्या करे? अपने दिल को कैसे समझाए? उस पर जो बीती है, उसे कैसे भूल जाए। अतीत की दर्दनाक परछाइयाँ, वे तकलीफें, वे अजीयतें उसका पीछा ही नहीं छोड़तीं। उसका गुजरा हुआ कल भयानक यातनाओं का मजमुआ ही तो था। वह इसे भयानक सपना समझकर भूल जाना चाहती थी, लेकिन लोगों की खुसर-पुसर, अम्मी की बरसती आँखें, भाई-बहनों की आँखों में तरस और भाभी के चेहरे पर हिकारत, उसे अपने अतीत को भूलने ही नहीं देते।

अब चार साल के बाद किसी तरह वह सँभली थी। दर्द के बीहड़ जंगल में भागते-भागते अब थोड़ी राहत मिली थी। कहते हैं न कि वक्त हर दर्द का मरहम होता है तो अब यह नया शोशा छूट गया। अम्मी और बहनें समझा-समझाकर थक चुकी थीं, लेकिन रेहाना थी कि मानती ही न थी। पूरी रात रोते-रोते गुजरती, अंदेशों के साये मँडराते रहते। रेहाना की जिंदगी कशमकश में थी। कुछ समझ में नहीं आता था कि क्या करे, कभी अम्मा की तकलीफ देखती तो उनकी बात मानने को जी चाहता, लेकिन जब अतीत की याद आती तो भविष्य पर भी अंधकार की परत ही दिखाई पड़ती।

आज भाभी ने कितने ताने दिए थे। रेहाना फूट-फूट कर रोई थी। आज उसे बाबा कितना याद आ रहे थे। रेहाना तीन बहनों और एक भाई की सबसे छोटी बहन थी, सबकी लाड़ली। जिंदगी राजकुमारी जैसी बीत रही थी। जो चाहो, वह हाजिर। घर की किसी तरह की कोई जिम्मेदारी नहीं। बस पढ़ो और मजे करो। बाबा भी तो कितने बड़े आदमी थे। शहर का यह हिस्सा महल कहलाता था। यहाँ पुराने महल के खँडहर भी थे, किसी जमाने में यहाँ रूहेला राजवंश के नवाब रहते थे। कहा जाता है कि अब भी जो कोई इन खँडहरों मे जाता है, वह खाली हाथ नहीं लौटता, हालाँकि इसमें कितनी सच्चाई है, यह तो नहीं पता। खँडहर के इसी एक कोने पर एक विशाल हवेली में रेहाना का परिवार रहता था। लंबी-चौड़ी खेती-बाड़ी थी। शहर की राजनीति में भी बाबा का प्रभुत्व था। शहर के गिने-चुने रसूखदार लोगों में बाबा यानी नवाब हिदायतउल्लाह खाँ साहब का शुमार होता था।

ईद-ए-मिलाद-उन-नबी के अवसर पर तो महल की रौनक देखते ही बनती। रात भर रतजगा होता और मिलाद की महफिल जमती। बाहर से मिलाद पढ़नेवाले बुलाए जाते। शीरनी बँटती। दूर-दूर से लोग आते। ईद-ए-मिलाद-उन-नबी का जुलूस कदम रसूल (एक पत्थर पर पैगंबर मोहम्मद के कदमों के निशान) की जियारत के बाद महल से ही शुरू होता। यह कदम रसूल कई पीढ़ियों पहले खाँ साहब के पूर्वज मक्का से लेकर आए थे। यह इस खानदान का सबसे बड़ा और कीमती खजाना था। ऐसे ऊँचे खानदान की लाड़ली बेटी का यह हाल था। अब छोटे-छोटे लोग भी उसकी बदकिस्मती पर तरस खाते। उसकी बेबसी, उसकी विवशताएँ घरेलू औरतों के बीच चर्चा का विषय बनी रहतीं। ये वे औरतें थीं, जो उस खानदान के लोगों का नाम भी जबान पर न लाती थीं, अब वही रेहाना पर तरस खातीं।

सुपरिचित लेखिका। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, शोध-पत्र, अनूदित कहानियाँ प्रकाशित। संप्रति अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ में सहायक प्रोफेसर (हिंदी) के रूप में कार्यरत।

आज अम्मी ने रेहाना को अपने कमरे में बुलाया था। कितनी खूबसूरत रही होंगी अम्मी—गोरा रंग, गहरी चमकीली आँखें, बूटा सा कद और छोटी, लेकिन तीखी नाक में फिरोजे की लौंग, जो उनके चेहरे को नीली आभा प्रदान करती और वे और भी ज्यादा पुखकार नजर आतीं। लेकिन वक्त के थपेड़े उनके चेहरे पर समय से पहले ही झुर्रियों के रूप में अपनी परछाईं छोड़ गए थे। इन चंद सालों में ही वे कितनी बूढ़ी लगने लगी थीं और आज तो वे कुछ ज्यादा ही कमजोर और बूढ़ी लग रही थीं। बहुत ही परेशान और रुआँसी। सब उन्हीं पर दबाव बना रहे थे। चाहे बेटा हो या बेटियाँ; सबने रेहाना को समझाने की मुश्किल जिम्मेदारी उन पर ही डाल दी थी। वे आजमाइश से गुजर रही थीं। उनके दिल की तकलीफ और कशमकश उनके चेहरे से बयान हो रही थी।

जब रेहाना उनके कमरे में पहुँची तो अम्मी छपरखट पर बैठी थीं। पास में बड़ा सा गोल पानदान रखा था, अम्मी के होंठ हमेशा पान से लाल रहते, लेकिन परेशानी के चलते उन्होंने कब से पान भी नहीं खाया था। नीचे रखा भरत का नक्काशीदार उगलदान सूखा रखा था। रेहाना उनकी पायती की ओर बैठ गई। बिल्कुल दमबखुद, खामोश। अम्मी ने रेहाना को करीब बिठाकर उसका सिर अपने सीने पर रख लिया और बालों में उँगलियाँ फिराती हुई, समझाने के स्वर में कहने लगीं, ''बेटा,

माना कि हमसे पहले गलतियाँ हुई हैं, तुमने बहुत दु:ख भोगा है, बहुत दर्द पाया है, लेकिन यह जरूरी तो नहीं कि हमेशा गम से ही इनसान की झोली भरी जाए। हमेशा पतझड़ ही उसका नसीब बने। जरूरी तो नहीं कि जो एक बार हो, वह दुबारा भी हो। बेटा, तू हाँ कर दे। बेटियाँ तो होती ही हैं 'धान के पौधे' की तरह, जब अपनी जड़ों से उखाड़कर उन्हें दूसरी जगह रोपा जाता है, तब ही तो वह फलती-फूलती हैं।'' अम्मी का चेहरा दर्द की अतिशयता से नीला हो रहा था, वे काँप रही थीं। ''बस बेटा, यह मेरा आखिरी कहना मान ले।'' वह इल्तिजा कर रही थीं। भीगे हुए लहजे में बोलीं, ''बेटा, मैं तो चिरागे सहरी हूँ, कब बुझ जाऊँ, कहा नहीं जा सकता। मुझे फिक्र है तो बस इसकी कि मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा, कहाँ जाओगी?''

अम्मी के इस प्रकार कहने से रेहाना तड़प उठी थी, ''अम्मी, यह घर मेरे बाबा का है। चौदह कमरों की इतनी बड़ी हवेली है। क्या इसमें रहने का मेरा हक नहीं है। शरीयत भी तो मुझे बाबा के घर में रहने का हक देती है, फिर मुझे कहीं जाने की क्या जरूरत है। मैं यहीं रहूँगी अपने बाबा के घर में।'' सिसकते हुए रेहाना ने कहा, ''हाँ बेटा, बिल्कुल यह घर तुम्हारा है, शरीयत से भी और इनसानियत से भी। तुम हमेशा यहाँ रह सकती हो। लेकिन समाज के भी कुछ कायदे होते हैं। लड़कियाँ, बेटियाँ अपने घर में रहें, तब ही अच्छी लगती हैं। ऐसी लड़कियाँ जो अपने बाप के घर रहती हैं, उन्हें समाज अच्छी नजरों से नहीं देखता, इज्जत नहीं देता। तुम देखती तो हो लोगों का तुम्हारी तरफ क्या रवैया है। वे लोग, जिनकी आँखों में हमेशा इज्जत और एहतराम का भाव होता था, अब वहाँ सिर्फ तरस और हिकारत का भाव होता है। इन निगाहों का हमेशा कैसे सामना कर पाओगी। अपनी भाभी की ताने भरी बातें कैसे बरदाश्त करोगी। बेटा, उम्र कितनी लंबी है, यह तो खुदा ही जाने, पर जितनी भी है, इज्जत से जीना तो पड़ेगा ही ना।'' अम्मी बोलीं।

रेहाना सुबकती रही, सिसकती रही, उसकी हिचकियाँ बँध गई थीं, माँ सिर सहलाता रही। जैसे ऐसा करके उसका हौसला बढ़ा रही हो। आज माँ-बेटी मिलकर यों रोई कि दिल का सारा गुबार आँसुओं के रास्ते बहा दे रही हों। आखिर अम्मी की इल्तिजाओं के आगे रेहाना का खौफ हार गया, उसने 'हाँ' कर दी। अम्मी ने ढेरों बलाएँ ले डालीं। उसके माथे को चूमकर फौरन सदका उतारा। रहिमन बुआ को बुलाकर नजर उताने का सामान मँगाया—काले उर्द, चावल, सरसों का तेल, नमक की डली, हल्दी की गाँठ और सौ रुपए का नोट बटुए से निकालकर सामान के साथ रख रेहाना के सात चक्कर उतारे और रहिमन को किसी गरीब को दे आने के लिए दे दिया। अम्मी खुश थीं, पुरसुकून लग रही थीं। उनके दिलो-दिमाग से मानो कुंतलों बोझ हट गया था। आज कितने दिनों के बाद उन्होंने अपना पानदान खोला था। चूना-कत्था सूख चुका था, पान भी नदारद थे। रहिमन से सामान मँगवाकर बहुत इत्मिनान से अम्मी ने पान खाया और फिर सजदे में गिर पड़ीं और अपने खुदा से रेहाना के नसीब अच्छा करने की दुआ माँगती रहीं।

रेहाना उठकर अपने कमरे में आ गई। आज वह अपने जख्मों को आखिरी बार कुरेदना चाहती थी, ताकि फिर हमेशा के लिए उन्हें दफन कर दे। वह अपने जख्मों को आँसुओं से धोकर साफ कर देना चाहती थी। अपने बिस्तर पर लेटकर उसने आँखें मूँद लीं। उसकी गुजरी हुई जिंदगी रील की तरह उसकी आँखों के सामने से गुजरने लगी। उस साल ईद का चाँद कितनी खुशियाँ लेकर आया था। नवेद एक गबरू नौजवान, कामयाब इंजीनियर, मोटी तनख्वाह, छोटा परिवार, रेहाना का दूर का रिश्तेदार और सबसे बढ़कर उसके बचपन का साथी। रेहाना को वह बहुत पसंद था। उसके अब्बा आज नवेद के लिए रेहाना का रिश्ता लेकर आए थे। सब कितने खुश थे। अम्मी, बाबा, भाई-बहनें सब और खुद रेहाना के तो मानो पैर ही जमीन पर नहीं पड़ते थे। उसके और नवेद के बीच कोई कसमे-वादे, एहदो-पैमान नहीं हुए थे, इजहारे मोहब्बत नहीं हुआ था, लेकिन दोनों जानते थे कि वे एक-दूसरे के लिए बने हैं। उनके दिल एक-दूसरे के लिए धड़कते हैं। रिश्ते से किसी को एतराज नहीं था। अत: चट मँगनी पट ब्याह!

बकरीद के चाँद में शादी की तारीख तय हो गई, कितने सुहावने दिन थे वो। घरभर में चहल-पहल थी। शादी को सिर्फ ढाई महीने थे और काम कितने ज्यादा। जोड़े तैयार होने थे, गरारे सिलने थे, दुपट्टों पर कामदानी होनी थी। बेले, गोटे, बन्नत, लचके टाँके जाने थे। जो पुराने खानदानी जेवर थे, उन पर पॉलिश होनी थी। कुछ नए गहने भी खरीदे जाने थे। पहनावनी के जोड़े बनने थे। दूल्हे की जरेबफ्फ की शेरवानी अलीगढ़ के एम. हसन दरजी से सिलवाने के लिए जानी थी। दिल्ली से बावरची बुलाए जाने थे। गर्ज यह कि काम बहुत था, वक्त कम।

रेहाना की सहेलियाँ उसे छेड़ती रहतीं और रेहाना तो सपनों के पंखों पर परवाज करती रहती। १५ दिन पहले ही मायूँ बिठा दिया गया था। रोज रात को ढोल बजता, बन्ना-बन्नी और सुहाग के गीत गाए जाते। कभी चुहल भरे गीत होते तो सभी हँसते रहते, गालियाँ खाकर भी कोई बुरा नहीं मानता बल्कि न्योछावर और करता। जब विदाई गाई जाती तो ब्याही-बेब्याही सभी औरतें दुपट्टों के कोनों से अपनी आँखों की गीली कोरें साफ करने लगतीं। झोलियाँ भर-भरकर ताजे और खासतौर पर बनवाए गए बताशे व खीलें बाँटी जातीं। रहिमन बुआ रोज रामपुर से मँगवाया गया खुशबूदार उबटन मलतीं। रेहाना का रोम-रोम निखर गया था। चेहरे पर गुलाबी रंगत छा गई थी। यह लाली कुछ सपनों जैसी थी, कुछ शर्म की और कुछ उम्मीदों की। मेहँदी की रात रेहाना की खूबसूरती देखते बनती। पूरा महल रोशनी से जगमग कर रहा था। नौबत बिठा दी गई थी। शहनाई बज रही थी, नाच-गाना चल रहा था। रेहाना की मेहँदी बहुत गाढ़ी रची थी। सहेलियाँ छेड़ रही थीं कि जब शौहर बहुत प्यार करनेवाला हो, तभी मेहँदी का रंग गहरा होता है। आखिर निकाह का दिन भी आ गया। आँखों में अनगिनत सपने सँजोए रेहाना ब्याह कर सुसराल आ गई। नवेद के साथ उसकी जिंदगी कितनी हसीन थी। दिन सोने के और रातें चाँदी की थीं। सास-ससुर सब उसका कितना खयाल रखते थे और नवेद, उसकी तो रूह ही रेहाना में बसती थी। उसे देखकर ही वह जीता था। रेहाना मानो खुशियों के हिंडोले में झूल रही थी। वह

एक भरपूर जिंदगी जी रही थी।

लेकिन उसकी खुशियाँ हमेशा रहनेवाली नहीं थीं। बहुत जल्द ही उसकी जिंदगी में भूचाल आ गया। नवेद का तबादला दिल्ली हो गया। बहुत कोशिशों के बावजूद तबादला नहीं रुकवाया जा सका और नवेद को दिल्ली जाना पड़ा। उसका इरादा था कि कुछ दिन तक दिल्ली में रहने के बाद वह वापस अपने तबादले की अरजी दे देगा और फिर किसी तरह दौड़-धूप करके तबादला करवा लेगा। यद्यपि रेहाना के बिना जीने का वह तसव्वुर भी नहीं कर सकता था, लेकिन जल्दी लौटने के इरादे के चलते उसने दिल्ली में घर नहीं बनाने का सोचा था, इसलिए वह अकेले ही दिल्ली आ गया था।

नवेद अब तक छोटे शहरों में ही रहता आया था। बदायूँ जैसे छोटे शहर का रहनेवाला था, वहीं नौकरी भी करता था। पढ़ाई भी अलीगढ़ जैसे छोटे शहर से ही की थी। दिल्ली जैसे बड़े शहर में आने के बाद यहाँ की चकाचौंध देखकर उसकी आँखें फटी रह गईं। वह यहाँ की रंगीनियों में डूबता गया। दिल्ली का मायाजाल उसे फँसाता गया और वह रेहाना से दूर होता गया। पहले वह हर सप्ताह बदायूँ आता। उसमें रेहाना के लिए तड़प दिखाई देती थी, लेकिन धीरे-धीरे एक खिंचाव सा महसूस होने लगा। रेहाना को याद आ रहा था। किस तरह वह एक-एक पल गुजारती, हर क्षण वह नवेद की बाट जोहती। उसका चेहरा मुरझा गया था। वह बुझ गई थी। न उमंग थी, न चंचलता।

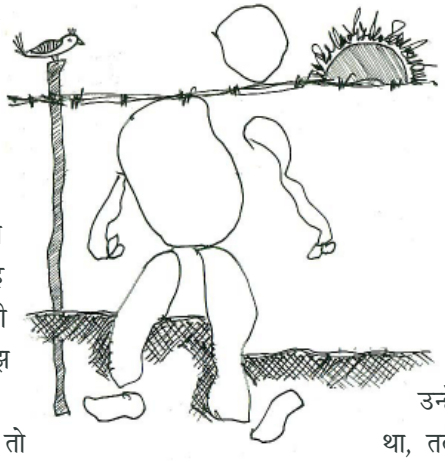

एक ओर रेहाना पति के वियोग से निढाल थी तो दूसरी ओर नवेद की चाल ही बदल गई थी। अपने ऑफिस में काम करनेवाली कामनी से नवेद की नजदीकियाँ बढ़ रही थीं। बात इतनी बढ़ी कि नवेद ने कामिनी से शादी करने का फैसला कर लिया। रेहाना पर तो बिजली गिर पड़ी। कितना रोई थी, गिड़गिड़ाई थी, मिन्नतें की थीं उसने नवेद की। लेकिन नवेद की आँखों में तो कामिनी का बिंदास रूप बैठ गया था। भोली, सलोनी और घरेलू रेहाना अब उसे कहाँ सुहाती। रेहाना की हजारों गुजारिशों के बावजूद नवेद ने रेहाना को तलाक दे दिया। रेहाना टूट गई थी। सोचते-सोचते उसकी आँखें फिर से भर उठीं।

लुटी-पिटी रेहाना जब घर पहुँची तो अम्मी तो ढह ही गई थीं और बाबा उनको तो इतना गहरा आघात लगा कि वे दिल का रोग लगा बैठे। उनको हार्ट अटैक पड़ गया था। अपने नसीब पर कितने आँसू बहाए थे रेहाना ने। अब उसे इद्दत भी करनी थी—पूरे तीन महीने दस दिन तक वह तलाक का शोक लिए बैठी रही। न सिर में तेल डाल सकती थी, न आँखों में सुरमा, न कहीं जा सकती थी। सारे मरदों से परदा कर बस उजाड़ सूरत एक कोने में पड़ी रही थी रेहाना। कितना विद्रोह करना चाहा था रेहाना ने इस शरई कानून का। नवेद ने गुनाह किया, उसने धोखा दिया, तलाक दिया और मुँह छिपाए रेहाना। नवेद ने दूसरे ही दिन कामिनी से शादी कर ली, लेकिन रेहाना तीन महीने दस दिन तक उसके नाम पर बैठी रही। शरीयत के कानून खुदा ही बेहतर समझ सकता है, रेहाना की समझ से तो परे थे। हालाँकि वह यह जरूर मानती थी कि जो खुदा और उसके रसूल ने कहा है, उसमें भलाई ही होगी।

महीनों लगे थे रेहाना को अपने गम से उबरने में। अम्मी-बाबा तो यही चाहते थे कि कोई लड़का मिल जाए, तलाकशुदा या विधुर ही सही। रेहाना की उजड़ी गृहस्थी फिर से आबाद हो जाए, लेकिन रेहाना की हालत ऐसी नहीं थी कि उससे इस बारे में कोई बात भी की जाए। अभी उसे सँभलने के लिए थोड़ा वक्त चाहिए था। लेकिन किस्मत को तो अभी और रंग दिखाने थे। रेहाना की नजरों के आगे वह दिन घूम गया, जब एक दिन शाम को पार्टी ऑफिस से बाबा लौटे तो बहुत खुश थे। सीधे अम्मी के कमरे में चले गए थे, बाद में भाई और बड़ी बाजी को भी बुला लिया गया था। गंभीर विचार चल रहा था। अगले दिन सुबह अम्मी ने रेहाना को बुलवाया था, तब उसे पता चला था कि बाबा के किसी जाननेवाले ने कोई लड़का बताया था। लड़के के पास ग्रीन कार्ड था, अमेरिका में ही एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में ऊँचे पद पर आसीन था। माँ-बाप भी अमेरिका में ही रहते थे। हालाँकि थे वे हिंदुस्तानी और यू.पी. के ही रहनेवाले। अत: वह अपने बेटे की शादी भारत के ही किसी अच्छे खानदान में करना चाहते थे। ढाई महीनों की छुट्टियों में भारत आए थे तो शादी करके वापस जाना चाहते थे। रेहाना उन्हें पसंद आ गई थी। उसके माजी से उन्हें कोई एतराज नहीं था। सबकुछ ठीक था, अच्छा था, तलाकशुदा होने के बावजूद रेहाना के लिए इतना अच्छा रिश्ता आ गया था। सब खुश थे और उसे नसीबवर मान रहे थे, बात पक्की हो गई।

एक बार फिर महल में रौनकें हुई, महीनों की नहूसत दूर हो गई। रंग था, रोशनी थी, सजावट थी, धूम थी, मौशिकी थी, खुशबू थी और खाना था। गर्ज यह कि फिर महफिल सजी थी और रेहाना फिर से दुल्हन बनकर नई ससुराल जा रही थी। पर अबकी बार न वह उमंग थी, न वह रंगीन सपने। थे तो सिर्फ खौफ के साये, अनदेखे, अनजाने अंदेशे। रेहाना बेहद डरी हुई थी, लेकिन साजिद बेहद प्यार नरनेवाला शौहर निकला। उसके उस बनावटी प्यार की याद आते ही रेहाना का दिल नफरत से भर उठा। एक कसैलापन सा उसके पूरे मुँह में भर गया। लेकिन वह उन यादों में आखिरी बार डूबकर उबर आना चाहती थी, इसलिए वह फिर अपनी जिंदगी के उन्हीं दिनों में लौट गई।

साजिद की छुट्टियाँ सिर्फ दो महीने की बची थीं। ये दो महीने ऐसे थे कि रेहाना अपने सारे गम और तकलीफें भूल गई थी। शिमला, मसूरी, कन्याकुमारी, गोवा और मुंबई कितनी जगह वह साथ-साथ नहीं घूमे थे। हाथों में हाथ डालकर जब समुद्र के किनारे वे टहल रहे थे तो साजिद ने कितने प्रेम और यकीन के साथ कभी भी रेहाना का साथ न छोड़ने का वादा किया था। अपने प्यार का कितना भरोसा दिलाया था। पहाड़,

वादियाँ, नदियाँ और समुद्र सब उनके प्यार के गवाह बन गए थे। साजिद ने रेहाना को कितनी खरीदारी करवाई थी, जब भी घर लौटती लदी-फँदी सबके लिए तोहफे लेकर। कपड़ों और जेवरों से उसकी अलमारियाँ अँट गई थीं। जगह कम पड़ रही थी। आखिर डॉलर में कमाता था साजिद। पैसों की उसके पास कोई कमी नहीं थी। तहजीबदार भी बहुत था, सबको इज्जत देता, सब ही उसे बहुत पसंद करने लगे थे और रेहाना को अपनी किस्मत के यों पलट जाने पर यकीन ही नहीं होता।

इन्हीं दो महीनों के बीच रेहाना की सालगिरह भी आई। साजिद रेहाना को फाइव स्टार होटल में पार्टी देने के लिए खासतौर से दिल्ली लेकर आया था। हीरों जड़ा एक खूबसूरत नेकलेस भी तोहफे में दिया था। रेहाना को और क्या चाहिए था। साजिद उसका मिस्टर परफेक्ट था। उसके हर दर्द पर उसने अपने प्यार का मरहम लगा दिया था। जिंदगी के इतने हसीन चेहरे का तो उसने तसव्वुर भी नहीं किया था। दो महीने पूरे होने को थे। साजिद के माँ-बाप वापस अमरीका जा चुके थे। अब उसे भी जाना था। उसने रेहाना को कहा था कि जाते ही एक महीने के भीतर वह उसका वीजा भेज देगा। पासपोर्ट के लिए भी साजिद ने ही अरजी लगवा दी थी। रेहाना पूरी तरह से आश्वस्त थी कि सिर्फ एक महीने की तो बात है, उसके बाद तो वह भी साजिद के पास अमेरिका चली जाएगी। जिस दिन साजिद जानेवाला था, उससे पहले की रात साजिद सिसकती हुई रेहाना को अपने आगोश में लेकर समझाता रहा था, उसे प्यार करता रहा था और उस पर भरोसा करने के लिए तैयार करता रहा। रेहाना को फिर भी सब्र नहीं हो रहा था। अजब सी घबराहट हो रही थी। उसके दिल में लहरें उठ रही थीं। दर्द का एक समंदर था, जो उसके अंदर कहीं उमड़-घुमड़ रहा था। रेहाना को किसी पहलू सुकून नहीं था, लेकिन अजीब बात यह थी कि रेहाना जितनी बेचैन थी, साजिद उतना ही पुरसुकून नजर आ रहा था। उसके चेहरे पर अजब सा इत्मीनान था, जो मनचाही चीज को हासिल कर लेने के बाद होता है। देखनेवाले इसे मर्द की गरिमा के अनुरूप गंभीरता मान रहे थे और सोच रहे थे कि भीतर तो वह भी भीग रहा होगा।

बाद में पता चला कि साजिद इसी तरह कई मासूम लड़कियों को अपना शिकार बना चुका था। उसके पास दौलत की कोई कमी नहीं थी। वह हर दूसरे साल हिंदुस्तान आकर मजबूर लड़कियों से निकाह करता, उनको खूब तोहफे देता, फिर महीने-दो महीने बाद इसी तरह उन्हें तलाक देकर लौट जाता। मेहर की रकम से बहुत ज्यादा कीमत के होते थे वे तोहफे, इसलिए लड़कियों के माँ-बाप भी चुप रह जाते और फिर बदनामी के सिवा होता भी क्या। दोष तो लड़की में ही खोजा जाता। दूसरी तरफ साजिद को इत्मीनान रहता कि वह हरामखोरी नहीं कर रहा है। हलाल और शरीयत से जायज तरीके से नई-नई लड़कियों को पाने का शौक पूरा करता रहता।

खैर, अगले दिन उन्हें दिल्ली जाना था, जहाँ से अमेरिका के लिए फ्लाइट पकड़नी थी। साजिद ने सबको साथ आने के लिए यह कहकर मना कर दिया था कि वह रेहाना के साथ अकेले वक्त गुजारना चाहता है। किसी को कोई एतराज नहीं था। घर के पुराने मुलाजिम रहीम चचा ही गाड़ी से साजिद और रेहाना को लेकर दिल्ली गए। दिल्ली आकर साजिद ने रेहाना को खूब सारी खरीदारी करवाई, यह कहकर कि अमेराका आने के लिए सामान भी तो तैयार करना है। यहाँ तक कि एक बड़ा सा सूटकेस भी दिलवाया था। अब रेहाना को शक की कोई गुंजाइश नजर नहीं आ रही थी। दिल में डर तो था, लेकिन उसने अपना वहम समझकर झटक दिया था। उसे पूरा यकीन था कि साजिद उसे बेपनाह चाहता है और जल्द ही उसे बुला लेगा। आज वह सोच रही थी कि वह कितनी बड़ी बेवकूफ थी। दिल्लीवाला तो पलटा नहीं, अमरीका वाला क्या पलटेगा? उसे समझना चाहिए था।

फिर उसे याद आया कि जब फ्लाइट का अनाउंसमेंट हो रहा था तो किस तरह जज्बाती होकर साजिद ने उसे भींच लिया था। क्या वह सब नाटक था, कोई इतनी अच्छी अदाकारी कैसे कर सकता है कि सामनेवाले को उसके इरादों की भनक तक भी न लगे। अंदर जाते हुए साजिद ने एक लिफाफा अपनी जेब से निकालकर रेहाना की ओर बढ़ाते हुए कहा था कि इसमें तुम्हारे लिए एक तोहफा है, रेहाना। इससे कीमती तोहफा शायद मैं तुम्हें नहीं दे सकता, पर तुम्हें मेरी कसम है कि इसे घर पहुँचकर ही खोलना। रेहाना ने खुशी-खुशी वह लिफाफा ले लिया। शौहर के जाने के बाद गम से निढाल रेहाना घर वापस आ गई। घर लौटने पर गहमा-गहमी में उसे लिफाफे की याद ही नहीं रही। एक सप्ताह बाद उसका पासपोर्ट भी आ गया, पर एक बात सभी को खटक रही थी कि साजिद ने अमेरिका पहुँचकर कोई फोन नहीं किया था। यहाँ तक कि फोन उठाया भी नहीं था। पर यह सोचकर कि इतने दिनों के बाद काम पर वापस लौटा है, मसरूफ होगा। बात टल गई। पर कुछ चुभ तो रहा था। साजिद एक महीने में वीजा भेजने को कहकर गया था। १५ दिन बीत चुके थे। रेहाना के जाने की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही थीं। रेहाना की पसंद के कई तरह के अचार और मुरब्बे अम्मी ने बना डाले थे। अब हलवों की बारी थी।

एक दिन रेहाना को अपने पर्स से कुछ निकालने की जरूरत पड़ी। जब उसने पर्स में हाथ डाला तो उसके हाथ वह लिफाफा लगा, जो साजिद जाते वक्त देकर गया था। उसे साजिद की कही हुई बात याद आ गई कि इसमें बहुत कीमती तोहफा है। उसने धड़कते दिल के साथ झट से लिफाफा खोला। उसमें एक कागज था, वह कागज क्या था, बम का ट्रिगर था, जिसे छूते ही उसके सिर पर बम फट गया था। वह काला नाग था, जिसने उसकी सारी खुशियों को डस लिया था। वह आग का शोला था, जिसने उसके पूरे वजूद को झुलसा दिया था। एक दर्दनाक चीख उसके हल्क से निकली और फिर रेहाना मानो पत्थर का बुत हो गई। अम्मी-बाबा सब उसकी चीख सुनकर दौड़े आए। रेहाना के हाथ में भिंचा कागज बाबा ने पढ़ा तो गिर पड़े। यह क्या हो गया था? रेहाना एक बार फिर उजड़ गई थी। जाते-जाते साजिद जो लिफाफा रेहाना को दे

गया था, दरअसल वह तलाकनामा था। बाद में पता चला कि साजिद इसी तरह कई मासूम लड़कियों को अपना शिकार बना चुका था। उसके पास दौलत की कोई कमी नहीं थी। वह हर दूसरे साल हिंदुस्तान आकर मजबूर लड़कियों से निकाह करता, उनको खूब तोहफे देता, फिर महीने-दो महीने बाद इसी तरह उन्हें तलाक देकर लौट जाता। मेहर की रकम से बहुत ज्यादा कीमत के होते थे वे तोहफे, इसलिए लड़कियों के माँ-बाप भी चुप रह जाते और फिर बदनामी के सिवा होता भी क्या। दोष तो लड़की में ही खोजा जाता। दूसरी तरफ साजिद को इत्मीनान रहता कि वह हरामखोरी नहीं कर रहा है। हलाल और शरीयत से जायज तरीके से नई-नई लड़कियों को पाने का शौक पूरा करता रहता।

रेहाना जिंदा लाश बन गई थी। जी रही थी, क्योंकि मौत नहीं आती थी और खुदकुशी गुनाह है। नमाजों में रो-रोकर दुआएँ माँगती और खुदा से अपना कसूर पूछती। अम्मी सजदों में पड़ी रहतीं। बाबा बिखर गए थे। मर्द थे, रोकर अपना गम भी हल्का नहीं कर सकते थे। दिल ही दिल में घुटते रहे और एक दिन खुदा को प्यारे हो गए। भाभी ने अब खुल्लमखुल्ला रेहाना में कीड़े निकालने शुरू कर दिए थे। बाप की मौत का ताना तो उठते-बैठते मिलता। शुक्र था तो बस इतना कि अम्मी थीं और उनके होशो-हवास कायम थे। खुदा ने माँ को इतनी हिम्मत दी है कि वह औलाद के हर दु:ख-दर्द में उसके साथ खड़ी रहती है, टूटती नहीं बल्कि औलाद का मजबूत सहारा बनती है। वैसे ही हमीदा बेगम भी मजबूती से रेहाना के साथ खड़ी थीं। यह उन्हीं का हौसला था, जो रेहाना जिंदा थी और अपनी तकदीर से लड़ रही थी। इस घटना को चार साल बीत चुके थे। रेहाना के जख्म थोड़े भर चुके थे और तभी यह रिश्ता आया था। लड़का नहीं, आदमी कहिए। बहुत दौलतमंद, बहुत खूबसूरत नहीं था। पर अच्छे खानदानी लोग थे और अनीस साहब खुद सरकारी इंटर कॉलेज में लेक्चरर थे। नेक, शरीफ, दीनदार, परहेजगार आदमी थे।

आखिर रेहाना की जिंदगी की काली रात अब खत्म होने को थी। सुबह का सूरज ज्यादा चमकीला लग रहा था। वह यादों के बीहड़ से बाहर निकल आई थी, उठकर वह महल के खँडहरों में चली आई थी। हवा के ताजा झोंके स्फूर्ति प्रदान कर रहे थे। शौहर के प्यार और विश्वास से अब वह मायूस नहीं थी। अम्मी नहीं रहीं, लेकिन रेहाना जानती है कि वह अम्मी ही थीं, जिनकी वजह से वह आबाद है और समाज में उसकी इज्जत है। फिर भी कभी-कभी वह सोचती जरूर है कि क्या औरत के लिए शादी इतनी जरूरी है? उसके बिना समाज में न उसकी कोई इज्जत है, न स्वीकार्यता? ऐसा क्यों है? और यह सवाल भी उसके मन में उठता रहता कि खुशहाल जिंदगी के लिए क्या चाहिए—मोहब्बत या दौलत?

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
दूरभाष : ०८४३९०५८१२७

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।

अब दुःख नहीं है

मूल : **वाई. गोपाल कृष्णन**

अनुवाद : **एस. भाग्यम**

राजेश आज बहुत परेशान है, क्योंकि जिस माँ ने उसे पैदा किया व लालन-पालन कर इतना बड़ा आदमी बनाया, आज वह माँ मरणासन्न अवस्था में पड़ी परेशान हो रही है। उसे वह सहन नहीं कर पा रहा है। उसने उनके हाथों को प्रेम से पकड़ा। अम्माँ कुछ कहना चाह रही थीं, पर उनके गले में से आवाज नहीं निकल पा रही थी। पास में ही उसके पिता बहुत दुःखी होकर बैठे थे। बड़ी मुश्किल से माँ ने अपने तकिए के नीचे से रिकॉर्ड किए एक कैसेट को निकालकर राजेश को दिया। राजेश ने तुरंत उस कैसेट को चलाकर सुना।

''प्यारे राजेश, तुम्हें व तुम्हारी पत्नी और तुम्हारे पैदा होनेवाले बच्चे को मेरा आशीर्वाद!

''जलते दीये में पहले तेल समाप्त होगा या बत्ती, पता नहीं, वैसी ही हालत में अब मैं व तुम्हारे पिताजी हैं। अब मुझे लग रहा है, तुम्हारे पिताजी के पहले मैं ही इस दुनिया से कुछ दिनों में चली जाऊँगी। मैं अब बिल्कुल भी बात करने में समर्थ नहीं हूँ। अभी तक मैं तुमसे आमने-सामने बात करने में हिचकिचाती रही। पर उन बातों को मैंने कैसेट में रिकॉर्ड कर दिया। मैं अभी मर जाऊँ तो सुहागिन, फूल, कुमकुम और माँग में सिंदूर के साथ चली गई, ऐसा संसार बोलेगा। परंतु तुम्हारे पिताजी, जो सीधे-सादे व बच्चों जैसे मनवाले इनसान को अकेले छोड़कर जाने का दुःख मुझे परेशान कर रहा है। तू हमारा इकलौता बेटा है। तूने हम वृद्धों के लिए सब सहूलियत कर दी हैं। आरामदायक चीजें तुमने इतनी दी हैं कि सचमुच में हमें बहुत खुशी है। फिर भी कभी-कभी तू हमारे ऊपर कठोरता के साथ झल्लाता है और गुस्से से बोलता है तो तुम्हारे स्वभाव को जानकर मैं उसे ज्यादा महत्त्व नहीं देती तथा उसे साधारण बात सोच छोड़ देती हूँ। ऐसे समय में कभी-कभी तुम्हारे पिताजी का मन बुरी तरह आहत हो जाता है, उनका मन बुरी तरह टूट जाता है। ऐसा कई बार हुआ। इसे मैंने कई बार महसूस किया, उनको कई बार सांत्वना देकर मैंने उनके मन का समाधान किया।

''तुम अपने कर्तव्य को पूरा करते हो, पर तुम तुम्हारे अप्पा के सही व न्यायोचित अपेक्षाओं को समझकर वैसा ही चले, इसलिए ही तुम्हें समझाने व सही बात बताने के लिए ये बातें मैंने इस टेप में रिकॉर्ड कर तुम्हें दीं।

''मोबाइल, टी.वी., रिमोट, कंप्यूटर, इंटरनेट, वॉशिंग मशीन, ए.सी. आदि आधुनिक साधनों के बारे में समझकर उन्हें उपयोग करना हमें नहीं आता। इसलिए तुम हम पर नाराज होते हो। हम बड़ी उम्र के लोगों को समझ आए, ऐसे बताओ, इतनी सहनशक्ति तुममें नहीं है। पर क्यों? तुम जब छोटे बच्चे थे, उस समय तुम्हारे पिताजी तुम्हारी पढ़ाई में आनेवाली कठिनाइयों को कितने सहनशील होकर तुम्हें कहानियों के द्वारा, उदाहरणों के द्वारा समझाते थे। वे बातें तो अब भी तुम्हें याद होंगी।

''अशक्त हो चले हमें तुम 'आपके हाथ कितने गंदे हैं? आपने कितने गंदे कपड़े पहने हैं? घर पर कोई मेहमान आए तो आप थोड़ी देर शांति से क्यों नहीं रहते? आपको सभ्यता से बात करना नहीं आता।' ऐसी बातें कहकर हमारी कई कमियाँ निकालते रहते हो।

''तुम जब बच्चे थे, तब नहाने के लिए मना करते। तुम बेहद जिद्दी थे। तुम्हें मनाना आसान नहीं था। तुम्हें कई तरह बहला-फुसलाकर बाथरूम में ले जाकर तुम्हारे अप्पा साबुन लगाकर नहलाते। हम तुम्हें समझाते कि अपने आप रोज नहाना है व अच्छे तथा सुंदर कपड़े पहनना है। दूसरों के साथ तुम्हें कैसे सभ्यता से पेश आना है, हम सब तुम्हें बताते। जिंदगी में जब कभी बिना सोचे अचानक ही कुछ हो जाए तो उस समस्या से कैसे निपटें। तुम्हें सिखानेवाले तुम्हारे वही अप्पा हैं, जिसे भूलकर आज तुम उनसे जब वे असमर्थ शारीरिक अवस्था में हैं, तुम उन्हें अपनी पसंद के विपरीत प्रतिबंधित करने की कोशिश करना क्या न्यायोचित है? हवा के चलने से, पेड़ के पके हुए पत्ते को देख, नई कोंपल फूट रहे हरे पत्ते को क्या उनका मजाक उड़ाना चाहिए?

''उम्र बढ़ने के साथ-साथ पंचेंद्रीय शरीर व मन साथ देने से मना करते हैं। याददाश्त की कमी तथा कान से सुनना कम हो जाता है,

आँखों से दिखना कम हो जाता है। याददाश्त की कमी होने के कारण किसी चीज को याद नहीं रख पाते। किसी चीज को तुरंत समझना मुश्किल होता है। याद करने में ही बहुत समय लग जाता है। पैरों की शक्ति कम होने से चलने में ही तकलीफ होती है। लाठी लेकर चलने योग्य हमें तुमको समझना चाहिए।

''तुम जब छोटे बच्चे थे तो पहले पलटते, फिर घुटने चलने लगे, फिर पकड़कर खड़े हुए व डगमगाते चलते तो हम कितने खुश होते व तुम नीचे गिर न पड़ो। अत: सँभालने के लिए पास में खड़े रहते। उम्रदराज हम भी आज उसी तरह एक बच्चे ही हैं। इसे तुम्हें महसूस करना चाहिए राजेश!

''एक विशेष समय के बाद; पके हुए फल जैसे हम अधिक, और अधिक जीना नहीं चाहते। हम क्या करें, जो नियति में लिखा है, उतने दिन तो जीना ही पड़ेगा और इस जिदंगी को धकेलना भी पड़ेगा। जो हम कर रहे हैं। यदि अनजाने में भी हम तुम्हारे साथ गलत ढंग से पेश हो जाएँ तो भी तुम सदा अच्छे रहो, यही हमारा मन चाहता है और भगवान् से यही प्रार्थना करते हैं।

''हमारी मृत्यु भी तुम्हारे सामने हो, जब तुम पास रहो व तुम्हारे गोद में ही होनी चाहिए, यही हमारी प्रार्थना है।

''तुम्हें एक लड़का या लड़की पैदा होने के बाद ही अर्थात् तुम एक बाप बनोगे तब ही तुम माँ-बाप के महत्त्व, उनकी महिमा व कर्तव्य के बारे में जानोगे व समझोगे, राजेश बेटा!

''हमें हमेशा तुम्हारा प्यार चाहिए, तुम्हारा सहारा चाहिए। हम तुम्हारी विनम्र बातें सुनना चाहेंगे। तुम हमारे इकलौते बेटे हो, हम तुमसे नहीं बोलेंगे तो किससे बोलकर इस सच्चे प्यार को अधिकार के साथ पा सकेंगे? समझो राजेश!

''जब तक रहें, मुसकराहट के साथ हमसे प्यार का व्यवहार कर हमारी यात्रा शांति से करने में हमारी मदद करो। पहले मैं रवाना हो रही हूँ। कम-से-कम वे तो अपने पोता या पोती के मन की इच्छा पूरी कर उसे ममत्व से प्यार दे पाएँ। मेरे पास वे सुरक्षित पहुँच सकें, इसके लिए तुम उनकी मदद करो। करोगे न राजेश?''

टेप बजकर बंद हो गया।

राजेश की आँखें भर आईं और उसने अपनी अम्माँ का सिर अपनी गोद में रख लिया। अपने अप्पा को भी एक हाथ से प्यार से कसकर पकड़ लिया। उसकी अम्माँ मुश्किल से एक हाथ से राजेश को व दूसरे हाथ से अपने पति को छूते हुए स्वयं अपने बेटे से जो कहना चाहती थी, उसे कह दिया। सोच-संतोष के साथ शांतिपूर्वक आँखें बंद करती है।

उसकी जान आनंद के साथ अलग होती है। ''अब दु:ख नहीं है।'' कहकर उसकी आत्मा को शांति मिलती है।

बी-४१, सेठी कॉलोनी,
जयपुर-३०२००४
दूरभाष : ०९३५१६४६३८५

सत्यं शिवं सुंदरम्

कविता

● रूपनारायण काबरा

चुभन शूल की, सुरभि सुमन की
भले-बुरे जैसे भी मृदु कटु
जो कुछ भी अनुभव जीवन में हम पाते हैं
उत्तरदायी स्वयं हमीं हैं
सुख-दु:ख और हताशा सबके।
चिंतन-बिंदु प्रत्येक हमारा
है भविष्य का निर्माता
वर्तमान का हर क्षण ही है
स्वयं नियामक
और उसी में शक्ति निहित है
दिशा भविष्य को देने की
रोग, शोक उत्पाद वस्तुत:
रचनाएँ हैं स्वयं हमारी,
मुक्त हमें करना अपने को
अपने ही बीते अतीत से
और क्षमा करना है सबको

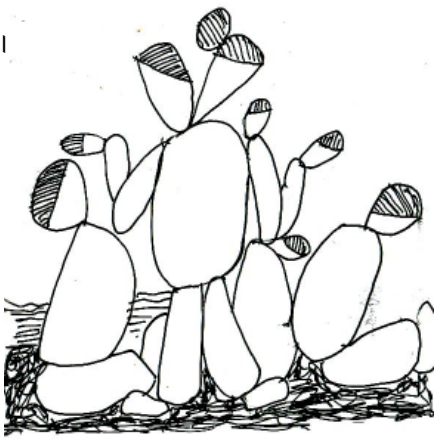

क्योंकि स्वयं ही उत्तरदायी
हैं हम अपने रोग शोक के
यश-अपयश के, हानि-लाभ के,
हमें सीखाना
सच्चा प्रेम स्वयं से करना।
जब हो जाए प्रेम वास्तविक हमें स्वयं से
तब ही तो हम क्रोध, अहं
प्रतिशोध और हिंसा, असत्य से दूर रहेंगे
और सबकुछ पा लेंगे जीवन में
यही सत्य है
यही शिवम् है
और यही सुंदर भी तो है।

ए-४३८, किशोर कुटीर
वैशाली नगर, जयपुर-३०२०२१

मेरे पिता का संगीत प्रेम

● शोभा शुक्ला

जब से होश सँभाला। प्रात: नींद खुलते ही एक धीर-गंभीर कंठ से उतरी भैरवी की स्वर लहरी कानों में उतरती चली जाती—

जागिये रघुनाथ कुँअर पंछी बन बोले
चंद्र किरन सीतल भई, चकई पिय से मिलन गई
त्रिविध मंद चलत पवन, पल्लव द्रुम डोले।

स्व. पं. गंगा प्रसादजी मिश्र

यह स्वर था, हमारे स्व. पिता पं. श्री गंगा प्रसादजी मिश्र का। वे प्रात:कालीन सैर के लिए तैयार होते जाते और इस भजन द्वारा हम बच्चों के लिए मॉर्निंग अलार्म का संकेत देते जाते। यह समय होता (प्रात: पाँच बजे) हम बच्चों का अपने बिस्तर छोड़ देने का। इसके बाद नित्य कर्म से निवृत्त होकर अध्ययन व संगीत साधना का समय होता। इसके बाद की दिनचर्या कालांतर में हम सभी की आदत बन गई।

यों तो हमारे पिता अध्यापन क्षेत्र में थे, पर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। नौकरी के साथ साहित्य, कला एवं संगीत से जीवनपर्यंत जुड़े रहे। वे जाने-माने लेखक, शौकिया चित्रकार एवं शास्त्रीय संगीत के शिक्षार्थी थे। आज के प्रसिद्ध भातखंडे संगीत महाविद्यालय लखनऊ, जो कि उनके समय में मैरिस कॉलेज था, में उन्होंने कुछ वर्षों तक संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी। संगीत का यह शौक उनमें समय-समय पर मैंने देखा। एक से बढ़कर एक ठुमरियाँ व बंदिशें वे सहज भाव से गाते थे। जब मैं प्रयाग संगीत समिति से 'संगीत प्रभाकर' कर रही थी तो विभिन्न रागों में बँधी बंदिशें पहले ही उनके द्वारा सुन चुकी थी। मैंने अपनी शिक्षिका से कहा कि इन रागों में मैं यही बंदिशें गाऊँगी, जो मैं बचपन से सुनती आई हूँ।

मुझे स्मरण है कि शिवरात्रि के दिन स्नान के पश्चात् हम लोग उनके साथ बैठकर शिव भजन गाते। भक्तिभाव में डूबकर वे गाते— '*बावरो रावरो नाह भवानी!*'

और हम उनका अनुसरण करते। उनके पास अथाह खजाना था। हम सब जन्माष्टमी में व्रत करते और उनके साथ मिलकर कृष्ण भजन गाते। रामनवमी के दिन 'भये प्रगट कृपाला' के साथ भजन शुरू होते और 'जननी निरखत बान धनुहिया', 'ऐसो को उदार जग माहीं' आदि न जाने कितने भजन कंठस्थ थे उन्हें। 'मैं हरि पतित पावन सुने' उनका प्रिय भजन था। उन्होंने कभी साथ बिठाकर तो नहीं सिखाया, पर हमें उनसे सुनते-सुनते आज तक याद है।

हमें अपनी स्कूली शिक्षा में अन्य विषयों के साथ संगीत विषय लेना अनिवार्य था और उसके लिए प्रात: चार-पाँच बजे उठकर रियाज करना भी अनिवार्य था, ऐसा उनका सख्त आदेश था। अपनी अधूरी संगीत शिक्षा वे संभवत: हम बच्चों के माध्यम से पूर्ण करना चाहते थे।

वर्षा ऋतु में बारिश होते ही वे राग मल्हार में निबद्ध 'रूम-रूम झूम बदरवा घिर-घिर आए' गाना शुरू करते। हम सब मंत्रमुग्ध से उनके धीर-गंभीर कंठ से निकली यह मधुर बंदिश सुनते रह जाते। राग कामोद में 'कारे जाने न दूँगी, मैं तो अपने रसिक को, नैनन में कर राखूँ पलकन मूँद-मूँद' मैंने पहली बार उन्हीं के मुख से सुनी थी। बाद में फिल्म 'चित्रलेखा' में इसी पर आधारित 'एरी जाने न दूँगी' मीना कुमारीजी पर फिल्माया गया।

होली पर हमारे उत्तर प्रदेश में अष्टमी तक होली-मिलन कार्यक्रम होते रहते थे और अभी भी होते हैं। हर गोष्ठी में वे राग पीलू व काफी में स्वरबद्ध होरी गाते—

होरी के दिनन माँ एसी लाडली मान
लाडली मान न कीजै, होरी के दिनन माँ।

या

ऐसे ही न जाने कितने शास्त्रीय, न जाने कितने ऋतु पर्व से संबंधित गीत उन्हें याद थे, जो अपने बच्चों को अनजाने ही सौंपते चले गए, कम-से-कम मुझे तो अभी भी सब याद हैं। वो सब मन प्राण में बस गए हैं।

मेरी बड़ी बहन डॉ. इंदु शुक्ला के पति हमारे परम आदरणीय पितृवत् बहनोई डॉ. दयाशंकरजी शुक्ल, उनके यानी अपने श्वसुर के बहुत निकट थे। वे उन्हें अपना बड़ा बेटा मानते थे और जीजाजी उन्हें पिता समान।

विश्वविद्यालय के नाट्य विभाग की अध्यक्षा श्रीमती अंजलि मेढ़ ने यूनिवर्सिटी ऑडिटोरियम में भरतनाट्यम नृत्य का आयोजन किया था, जिसमें अपनी शिष्याओं के साथ स्वयं भी भाग लिया था। प्रस्तुति बहुत ही उत्तम थी। हमारे साथ चाचा भी यह कार्यक्रम देखने गए थे। उन्होंने इस कार्यक्रम की प्रशंसा की थी। इस पर प्रो. सुकुमार मेढ़, जो श्रीमती मेढ़ के पति थे, ने कहा, 'मिश्रजी, आपने तो भरतनाट्यम कभी देखा नहीं होगा।' मिश्रजी बोले, 'मेढ़ साहब, मैंने तो श्रीमती रुक्मिणी देवी का नृत्य अपने मित्र डॉ. सुरेश अवस्थी के निवास पर दिल्ली में देखा था।

यह सुनकर मेढ़ साहब ने कहा, 'अच्छा।' इस प्रकार यूनिवर्सिटी के शास्त्रीय गायन विभाग के प्रसिद्ध गायक श्री भरत व्यास अपने ध्रुपद-धमार गायन के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। वे बड़े स्वाभिमानी और कुछ हद तक अभिमानी भी कहे जा सकते थे। उन्होंने तत्कालीन सूचना प्रसारण मंत्री डॉ. केसकर के आमंत्रण को भी ठुकरा दिया था। व्यासजी हमारे मित्र थे। अत: हमने चाचा को उनसे मिलवा दिया। चाचा की इच्छा थी कि वे व्यासजी से कुछ सुनेंगे। व्यासजी चाचा से इधर-उधर की बातें करते रहे, लेकिन संगीत की चर्चा नहीं छेड़ी, इस पर चाचा ने कहा, 'आप इतने बड़े गायक हैं, कृपा करके आप मुझे कुछ सुनाइए।' व्यासजी को क्या पता कि गंगा प्रसाद मिश्र क्या हैं। बोले, 'मिश्रजी, आप शास्त्रीय संगीत को क्या समझेंगे।' इस पर चाचाजी ने उनसे कहा, 'व्यासजी, मैं सुप्रसिद्ध भातखंडे संगीत महाविद्यालय का छात्र रहा हूँ और मैंने श्री रतनजिनकरजी से संगीत सीखा है। यह सुनते ही व्यासजी चाचा के सामने झुककर प्रणाम करने लगे और कहा, 'पंडित रतनजिनकरजी तो मेरे भी गुरु रहे हैं। आप तो हमारे गुरुभाई हुए' और फिर उन्होंने अपनी कुछ बंदिशें चाचाजी को सुनाईं।

मिश्रजी को संगीत की बारीकियों की भी जानकारी रहती थी और नृत्य की मुद्राओं को भी जान लेते थे। वे स्वयं भी बहुत अच्छा गाते थे। उन्होंने बाहर कहीं नहीं गाया होगा, हमने उन्हें परिवार के कार्यक्रमों में यदा-कदा गाते सुना है। ताल और लय की उनकी समझ प्रशंसनीय थी।

व्यासजी चाचा से इधर-उधर की बातें करते रहे, लेकिन संगीत की चर्चा नहीं छेड़ी, इस पर चाचा ने कहा, 'आप इतने बड़े गायक हैं, कृपा करके आप मुझे कुछ सुनाइए।' व्यासजी को क्या पता कि गंगा प्रसाद मिश्र क्या हैं। बोले, 'मिश्रजी, आप शास्त्रीय संगीत को क्या समझेंगे।' इस पर चाचाजी ने उनसे कहा, 'व्यासजी, मैं सुप्रसिद्ध भातखंडे संगीत महाविद्यालय का छात्र रहा हूँ और मैंने श्री रतनजिनकरजी से संगीत सीखा है। यह सुनते ही व्यासजी चाचा के सामने झुककर प्रणाम करने लगे और कहा, 'पंडित रतनजिनकरजी तो मेरे भी गुरु रहे हैं। आप तो हमारे गुरुभाई हुए' और फिर उन्होंने अपनी कुछ बंदिशें चाचाजी को सुनाईं।

यह थे एक जामाता के उनके प्रति श्रद्धाभाव। ताल-लय सभी के विषय में उन्हें अच्छी तरह जानकारी थी। संगीत की प्रत्येक विधा का उन्हें ज्ञान था। ध्रुपद, धमार, ठुमरी, टप्पा, कजरी, चैती, दादरा, कव्वाली; कौन सी विधा उनकी रचनाओं में प्रयुक्त नहीं हुई है। अब आइए, एक नजर उनकी रचनाओं में प्रयुक्त संगीत प्रेम पर डालते हैं। उनकी कहानियों व उपन्यासों में कहीं-न-कहीं संगीत से संबंधित वर्णन हुआ है। जहाँ तक मुझे स्मरण है—पाँच कहानियों के नायक या नायिका, गायक या गायिका अथवा नर्तक हैं—तबलिया, हंसकिंकनी, सरोद की गत, खानदानी पीलू व नर्तक।

सुपरिचित साहित्यकार। हिंदी साहित्य में एम.ए., संगीत प्रभाकर, प्रयाग संगीत समिति से, लेखन व संगीत में रुचि, आकाशवाणी लखनऊ में गायिका।

'तबलिया' कहानी पढ़कर तो मुझे लगा कि उन्हें तालों की कितनी जानकारी थी। लक्ष्मी ताल, रुद्रताल, ब्रह्मताल आदि तो सिक्स्थ इयर (प्रभाकर) में सिखाई जाती है। जरा देखिए, त्रिताल से एकताल पर आए, एक ताल से लक्ष्मीताल, लक्ष्मीताल से रुद्रताल—वाह इतनी जानकारी तो ग्रेजुएशन के बाद ही संभव है। मुझे तो यह भी नहीं पता कि वे कितने साल शास्त्रीय संगीत सीखे, पर जितना उन्हें सुना, जाना और पढ़ा, उनकी जानकारी की तो दाद देनी पड़ेगी। हंसकिंकनी, सरोद की गत व खानदानी पीलू में रागों की व ताल की जानकारी से पाठक परिचित हो जाता है। हर शास्त्रीय संगीत साधक को खरज की साधना सबसे पहले सिखाई जाती है, यह बात उन्हें भली-भाँति पता थी और इसका जिक्र उनकी रचनाओं में है।

लखनऊ आकाशवाणी से उनकी कहानियाँ प्रसारित होती थीं, वे स्वयं पढ़ते थे। 'खानदानी पीलू' कहानी का प्रसारण हो रहा था, कहानी पढ़कर वे बाहर निकले। एक जाने-माने उस्ताद अपनी बारी की प्रतीक्षा में रिकॉर्डिंग स्टूडियो के बाहर बैठे थे, उनकी आँखों में आँसू थे। वह बोले, 'तुमने हमारा दर्द समझा और अपनी कहानी के जरिए उसे दुनिया को बताया।'

सरोद की गत, तबलिया और हंसकिंकनी में कैसे गायक और तबलिये के बीच जुगलबंदी होती है, कैसे एक-दूसरे को हराने की होड़ होती है और अंत में गायक और संगतकार कैसे एक-दूसरे का सम्मान करते हुए गले मिलते हैं या उस्ताद के पैर छूते हैं और आशीर्वाद प्राप्त करते हैं, भली-भाँति चित्रित है।

'नर्तक' कहानी के नायक और उसकी पत्नी के नाचते समय नृत्य संबंधी जिन बारीकियों का प्रयोग उन्होंने किया है, वह ध्यान देने योग्य है। कत्थक करते समय लहरा बजाते हैं, ढाई-ढाई सेर के घुँघरू बाँधकर कैसे सिर्फ एक घुँघरू की आवाज निकालते हैं, परन के बोल आदि सभी का उल्लेख इस कहानी में है। 'तुम्हें ले के साँवरिया निकल चलिबे' ठुमरी के एक-एक मिसरे में कैसे रस उत्पन्न कर सकते हैं, इसका सही चित्रण हुआ है। नायक के शिव-तांडव नृत्य प्रस्तुत करते समय 'नेत्र चलते, भृकुटि भाव बताती, मुँह हृदय स्थिति का ध्यान कराता, हाथ-पैर गति का ध्यान कराते, कमर कभी इधर, कभी उधर हो जाती' कितना सही चित्रण किया है उन्होंने और नायिका अन्नपूर्णा के भाव नृत्य का वर्णन तो अभूतपूर्व है। 'राधा-कृष्ण के रूठने-मनाने का वर्णन चल रहा है, अन्नपूर्णा ने नटवरी में राधा-कृष्णवाला नृत्य शुरू कर दिया। भाव-नृत्य के बीच में अन्नपूर्णा ने अठगुन पर एक टुकड़ा मारा, तबलिया सात

मात्रा पीछे रह गया। लय की तेजी व पैरों की सफाई देखकर भोला महराज का दिल बाँसों उछल गया।'

रात-रात भर जागकर संगीत-सम्मेलनों में शास्त्रीय संगीत न सुनते तो कैसे इतना सजीव चित्रण कर पाते। संगीत-सम्मेलन रात के रागों से शुरू होते और प्रात: चार-पाँच बजे भैरवी से समाप्त होते। मेरे पिता बिना पलक झपकाए एक-एक राग ध्यान से सुनते। कई बार हम लोग भी उनके साथ जाते, पर माँ के कंधे पर लुढ़ककर सो जाते।

कुछ उपन्यासों में भी उन्होंने संगीत ज्ञान का काफी विशद वर्णन किया है। 'तसवीरें और साये' उपन्यास के दसवें खंड में नायक चंद्रभाल अपने बच्चों के विद्यालय संस्थापक दिवस के समारोह में जाते हैं। वहाँ समारोह का आरंभ एक ध्रुपद 'परब्रह्म परमेश्वर पुरुषोत्तम परमानंद' से होता है। उन्हें पता था कि ध्रुपद चारताल में गाया जाता है। अन्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त एक छात्रा ने राग छायानट का खयाल प्रस्तुत किया। लौटते समय आपसी बातचीत में चंद्रभाल और संगीत के एक शिक्षक के मध्य जो वार्त्तालाप होता है, उससे भी संगीत और राग-रागिनियों के प्रति उनकी रुचि व विस्तृत जानकारी का आभास होता है। ''ध्रुपद की बंदिशों में अधिकांश ईश्वर की स्तुति है, मुगल काल में जब खयाल की पद्धति का आविर्भाव हुआ तो धीरे-धीरे रीतिकाल के प्रभाव स्वरूप पहले राधाकृष्ण की प्रेमलीला और रूठने-मनाने, रीझने-खिजाने और दोषारोपण करने का चित्रण गीतों में हुआ, फिर सीधा मनुष्यों के मनोभावों का चित्रण होने लगा। इन गीतकारों को यह भी ध्यान न रहा कि गोपनीय मनोभाव, जिन्हें सबके सामने प्रकट करना वर्जित है, गीतों में न बाँधा जाए। मुगलकालीन विलासिता ऐसी सिर पर सवार हो गई कि हम अच्छे-बुरे गीतों का अंतर भूल गए। यह भी न ध्यान रहा कि कौन सा गीत कहाँ और किसके सामने गाया जाए। बाप बैठा सुन रहा है, बेटी बैठी गा रही है—'*पिउ पल न लागी मोरी अँखियाँ*' अथवा 'एरी आली पिया बिन, कल न परत मोहे घड़ी पल छिन-दिन'

इसमें उन्होंने चंद्रभाल के माध्यम से अपनी नापसंगी भी जताई है। हम लोगों को भी वे फिल्मी गीत नहीं गाने देते थे, सिर्फ शास्त्रीय संगीत या भजन गाने की अनुमति थी। आगे उन्होंने यह भी बताया कि किस प्रकार राग रामकली की बंदिश अपनी शिष्या को सिखाते समय उसके पिता ने कहा कि मास्टरजी इससे अच्छी कोई बंदिश नहीं है ? बंदिश थी—

सिगरी रैन के जागे-पागे, सुघर चतुर मन हरवा बलमा
भोरहिं मोरे आये। सिगरी··
उर बिनु माल, नयन बिनु अंजन, जावक तिलक लगाए।

मास्टरजी ने उत्तर दिया कि गायन में शब्दों का महत्त्व बहुत थोड़ा होता है। गीत दो-चार पंक्तियों के होते हैं, परंतु गायन घंटों चलता है। असल में आलाप और तानों का महत्त्व है। बड़े गवैयों को तो अकसर बंदिशें भूल ही जाती हैं, पर राग का स्वरूप उनके मस्तिष्क में स्पष्ट रहता है और स्वरों की सहायता से वह उसी को उपस्थित कर देते हैं। यह बड़े-बड़े गवैये ही गीतकार थे। उन्होंने शायद रागों की बंदिशों की रचना करते समय शब्दों पर ध्यान दिया ही नहीं होगा।

मास्टर साहब के माध्यम से मेरे पिता ने अपनी बात कही है। आज पंडित भीमसेन जोशी या जसराज पंडित जैसे महान् गायकों को सुनते समय कई बार शब्द समझ ही नहीं आते, पर उन्हें सुनते हुए श्रोता किसी दूसरे लोक में पहुँच जाते हैं। यही नहीं, लोकगीतों व संस्कार गीतों के विषय में भी उनकी जानकारी थी। पुत्र जन्म के अवसर पर स्त्रियाँ ढोलक-मंजीरे बजाकर सोहर-सरिया गाती हैं, इसका वर्णन भी तसवीरें और साये के पच्चीसवें अध्याय में किया गया है। गर्भवती सुशीला स्वयं ही कल्पना कर रही है कि बेटा हुआ है और सास-ननद कोई नहीं है, वह स्वयं ही सोहर गा रही है—

हमने सही है पीर, सइयाँ के लाल कैसे कहावें
आओ सास रानी बैठो पलंग चढ़, हमरा न्याय चुकावो
सइयाँ के लाल कैसे कहावें, हमने सही है पीर··

इस प्रकार कई जगह गजलों का भी प्रयोग हुआ है।

उनके एक उपन्यास 'सोनाखाणी के पार' की तो नायिका ही 'संगीत निपुण' है। उपन्यास में कई स्थान पर उनके संगीत ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है। एक स्थान पर नायक अनुराग नायिका स्नेह से कहता है—'शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में जो कुछ भी है, पुराना ही है या तो हमारे शास्त्रों और प्राचीन ग्रंथों से हमें उसका ज्ञान होता है या मध्यकाल में उस्ताद और हिंदू विद्वान् जो कर गए हैं, वह हमें प्राप्त होता है। आधुनिक काल में संगीत के क्षेत्र की प्रगति रुक गई है। इसका एकमात्र कारण है कि पढ़े-लिखे बुद्धिमान व्यक्तियों ने इस ओर आना बंद कर दिया है। अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित व्यक्तियों के हाथ में इसकी बागडोर है, जो लकीर पीटे जा रहे हैं। कुछ नया कार्य कर सकें, इतनी उनमें बुद्धि नहीं है। समय के अनुसार हमारे शास्त्रीय संगीत में क्या परिवर्तन होने चाहिए, इस पर कोई विचार करनेवाला नहीं है। संगीतज्ञों की दशा इतनी खराब है, पर उसके सुधार के लिए कोई आवाज उठानेवाला नहीं है।'

मेरे पिता स्वयं भी शास्त्रीय गायकों की दुर्दशा से बहुत व्यथित रहते थे, इसकी झलक उनकी कहानी 'खानदानी पीलू' में भी मिलती है, इसका व्यक्तिगत उदाहरण मैं बाद में दूँगी। 'सोनारवाणी के पार' में एक स्थान पर नायिका 'राग जोगिया' का अभ्यास कर रही है। श्री ओंकार नाथ ठाकुर और श्री पटवर्धन के प्रिय गीत के ही बोल उसने ले रखे हैं—*'जोगी मत जो मत जा मत जा।'* सुनकर अनुराग को आनंद आ गया। राग का स्वरूप स्नेह ने समझ रखा था। उसकी आवाज अद्‌भुत थी, उसमें जादू था। वैसी मिठास, वैसी लोच और ऊपर तथा नीचे के स्वरों में उतना स्पष्ट तथा मधुर कार्य करने की क्षमता जरा कम ही दिखाई देती है।

एक दिन वह उसके घर पहुँचा तो स्नेह गा रही थी—

चलो काहे को झूठी बनाओ बतियाँ
वहीं जाओ बिताई हैं जहाँ रतियाँ, चलो काहे को··

इसी प्रकार म्यूजिक कॉन्फ्रेंस के वर्णन में उन्होंने गायन, वादन और नृत्य के सभी कार्यक्रमों की विशद और सुंदर व्याख्या की है। कुमुदिनी पांडेय ने भीमपलासी का आलाप किया और बंदिश शुरू की—

काहे सताओ मनमोहन हमें नाहक तुम,
चरचा करे सकल नगर के नर-नारी जन।
हो कुलीन घर-नार नव जीवन,
तुम हो प्रसिद्ध चतुर रसिक तरुन,
लोक कुटिल खल शंकित गुरुजन। काहे सताओ मनमोहन''

गायिका बड़े मधुर स्वरों में छोटी-छोटी तानों और मुरकियों के साथ गा रही थी।

इसके बाद शरण रानी माथुर ने सरोद पर राग दरबारी प्रस्तुत किया। तबले पर संसार प्रसिद्ध गुदई महराज संगत कर रहे थे। सरोद बजानेवाली स्त्रियाँ कम ही दिखाई देती हैं। शरण रानी का आत्मविश्वास, व्यक्तित्व और राग पर अधिकार बड़ा ही प्रभावोत्पादक था। उन्होंने इतना जमकर बजाया कि जनता को आनंद आ गया, फिर गुदई महाराज की संगत का क्या कहना। तानों के एक-एक टुकड़े के जवाब में ऐसी-ऐसी जवाबी परनें लगाते थे कि श्रोता झूम-झूम उठते थे।

इसके पश्चात् कामिनी सरकार का कत्थक नृत्य हुआ। अंत में उस्ताद अली अकबर खाँ ने सरोद वादन प्रस्तुत किया। खानदानी तबियतदारी और घंटों अभ्यास के फलस्वरूप प्राप्त जबरदस्त तैयारी और अपने कार्य की तल्लीनता ने स्वरों की ऐसी होली उस हाल में मचा दी कि रसिक श्रोताजन झूम-झूम गए। प्रसिद्ध तबलावादक मुन्ने खाँ की संगत ने कार्यक्रम में चार चाँद लगा दिए। अनेक ऐसे क्षण आए, जब श्रोता अपना अस्तित्व भूल गए। न जाने कितने रागों की अवतारणा हुई। जब उस्ताद अली अकबर खाँ ने सरोद वादन समाप्त किया तो होश में आकर लोगों ने करतल ध्वनि से हाल गुँजा दिया। घड़ियों पर निगाह गई तो मालूम हुआ कि सरोद बजते हुए साढ़े तीन घंटे हो चुके हैं। कार्यक्रम समाप्त हुआ तो सुबह के चार बज चुके थे।

इसी प्रकार के न जाने और कितने उदाहरण दिए जा सकते हैं, परंतु यही काफी हैं उनके संगीत के प्रति लगाव को दरशाने के लिए। ज्यादा लिखने पर तो एक पूरी पुस्तक ही तैयार हो जाएगी।

जैसा मैंने कहा था कि वे स्वयं शास्त्रीय गायकों की दुर्दशा से बहुत व्यथित रहते थे। सुना तो मैंने काफी था, उनके परोपकारी स्वभाव के विषय में और देखा भी, परंतु एक दृष्टांत आपके समक्ष रख रही हूँ। सुल्तानपुर में अपनी पोस्टिंग के समय उन्होंने कई कार्यक्रमों का आयोजन किया, वहीं उनकी भेंट एक बहुत अच्छे शास्त्रीय गायक से हुई। वह आर्थिक रूप से संपन्न नहीं थे और वह समय आ गया था, जब शास्त्रीय गायकों को प्रोग्राम व पैसे नहीं मिलते थे। मेरे पिता ने कई जगह उनके कार्यक्रम करवाए। मुझे याद है कि कई बार हमारे घर की टेरेस पर रात में उनका कार्यक्रम होता था और उनके मित्र, जिनमें शहर के बड़े-बड़े अधिकारी व नेता आमंत्रित होते थे। कार्यक्रम समाप्त होने पर सबसे पहले मेरे पिता उनको कुछ धन देते व देखकर सभी उन्हें कुछ-न-कुछ देते। यह कई बार हुआ, मुझे अच्छी तरह याद है।

कितना लिखूँ, क्या-क्या लिखूँ, बस यह जानती हूँ कि यदि वह लेखक न होते तो संगीतज्ञ होते, संगीतज्ञ न होते तो चित्रकार होते, चित्रकार न होते तो खिलाड़ी होते, पर जो भी होते अपनी मेहनत व लगन से उस क्षेत्र में नाम करते व खूब काम करते।

हे प्रभु, आपसे यही प्रार्थना है कि अगले जन्म में ही नहीं, हर जन्म में उन जैसा पिता देना मुझे और उनकी प्रतिभा के सागर में से कुछ बूँदें मुझे भी दे देना, ताकि मैं भी संगीत या लेखन के क्षेत्र में कुछ कार्य कर सकूँ। मेरी प्रार्थना स्वीकारोगे न प्रभु!

बी-९०६, कृष्ण अपरा सफायर
वैभव खंड, इंदिरापुरम्, गाजियाबाद-२०१०१२
दूरभाष : ०९८१११११९७९९

लघुकथा

डर

● सेवा सदन प्रसाद

विधवा माँ की मौत के बाद शालिनी ने एक अहम फैसला लिया कि वह अपनी छोटी बहन को अकेली नहीं छोड़ सकती। उसे साथ रखने से उसकी चिंता भी खत्म हो जाएगी और मोहिनी अपने आप को अकेला महसूस नहीं करेगी। पति की सहमति ने उसे बल प्रदान किया।

मोहिनी दीदी के इस निर्णय से अपने सारे गम भूल गई। सोचा, जीजा और दीदी का सहयोग रहा तो अपना भविष्य सँवार लेगी। महानगरी में आए दिन हादसों की वजह से उसके अंदर एक डर पैदा हो गया था और अपने आपको असुरक्षित महसूस करने लगी थी। ऐसे में दीदी के संरक्षण ने एक ताकत बन उसके डर को दूर कर दिया। वह बहुत खुश रहने लगी और जीजा एवं दीदी का भी भरपूर खयाल रखने लगी।

अचानक पेट दर्द की वजह से शालिनी को नर्सिंग होम में भरती होना पड़ा। थोड़ी देर के बाद जब दीदी की कुशलता की खबर सुनी तो आश्वस्त होकर सो गई, 'पता नहीं जीजाजी नर्सिंग होम से कब लौंटे। आखिर उन्हें अपनी पत्नी के स्वास्थ्य की चिंता जो है। वैसे उनके पास डुप्लीकेट चाबी भी है या फिर सुबह नर्सिंग होम जाकर जीजू को घर भेज दूँगी।'

आधी रात को किसी का स्पर्श पाकर मोहिनी जाग उठी। सामने जीजू को देखकर चौंक पड़ी। जो 'डर' अब तक मर चुका था, वह पुन: जीवित हो गया। नफरत भरे क्रोध ने जीजा के चेहरे को नाखूनों से लहू-लुहान कर डाला। अब सिर्फ अपने घर में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया के इस 'डर' से लड़ने के लिए तैयार हो गई। प्रात: उसके कदम बढ़ चले गर्ल्स हॉस्टल की ओर।

६०१, महावीर दर्शन सोसाइटी,
प्लॉट नं. ११ सी, सेक्टर-२०
खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०
दूरभाष : ९६१९०२५०९४

छायावादी कविता का प्रस्थान बिंदु 'इंदु'

● कुमुद शर्मा

स्वाधीनता संग्राम और विश्वयुद्ध की विभीषिका के दौर से गुजरते हुए जिस छायावादी कविता ने काव्य की व्यापक सार्थकता को विशिष्ट आयाम देते हुए अपना स्वरूप गढ़ा, उसकी पृष्ठभूमि साहित्यिक पत्रिका 'इंदु' के पन्नों पर तैयार हुई। 'इंदु' छायावादी कविता का प्रस्थान बिंदु बनी। छायावाद का बीज यहीं पड़ा, यहीं फूटा, अंकुरित हुआ और आगे चलकर लहलहाया। 'इंदु' ने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को तोड़कर, पूर्व प्रचलित रूढ़ियों को भेदकर आनुभूतिक संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए रास्ता तैयार किया।

इस पत्रिका के प्रेरणास्रोत थे—जयशंकर प्रसाद। 'इंदु' के संदर्भ में प्राप्त जानकारियों और चर्चा के अनुसार प्रसादजी ने इस पत्रिका के जरिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'साहित्य शास्ता' की भूमिका को चुनौती दी। इस समूचे प्रकरण को समझने के लिए समय संदर्भ को टटोलना होगा। प्रसादजी का समय जागृति और नव चेतना का समय था। एक ओर खड़ी बोली में सुधारवाद की आवाज बुलंदी पर थी तो दूसरी ओर आधुनिक कवि रीतिकालीन शृंगार का आँचल छोड़ने को तैयार न थे। भाषा और भाव दोनों की स्थिति असमंजसपूर्ण थी। खड़ी बोली के सामने ब्रजभाषा चुनौती थी और प्रेम के सामने द्विवेदीयुगीन सुधारवाद।

महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के माध्यम से भाषा और साहित्य को एक खास तरह के अनुशासन में बाँधकर रखना चाहते थे। अज्ञेय इस संदर्भ में टिप्पणी करते हैं कि 'सरस्वती-संपादक पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी स्वयं बड़े साहित्य सर्जक नहीं थे, लेकिन हिंदी की एक पूरी पीढ़ी के साहित्य शास्ता हैं ही। उनका काम साहित्य के रथ को लीक पर रखने और सारथी को बराबर ताकीद देते रहने का है।' द्विवेदीजी का मताग्रह कई बार अत्यंत असहिष्णु और पूर्वग्रही भी होता था। यहाँ तक कि वे अस्तित्व मिटा देने का आयोजन कर सकते थे।

बात बहुत स्पष्ट है, हिंदी की पाठशाला समझी जानेवाली 'सरस्वती' छायावादी प्रवृत्ति का आभास देनेवाली कविता को गति देने के लिए अपने वितान का विस्तार न कर सकी। नए कल्पनात्मक संसार के लिए उसके कपाट बंद रहे। जीवन के उद्दाम आवेग और जीवन के अनगिनत रंग उसमें समाहित होने से रह गए। यही नहीं, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सुकवि किंकर' के छद्म नाम से मुकुटधर पांडेय और प्रसाद की आलोचना की। छायावादी कवियों को 'कवित्व हंता छोकड़े' भी कहा।

लेखक-समीक्षक। 'हिंदी के निर्माता', 'भूमंडलीकरण और मीडिया', 'स्त्रीघोष विज्ञापन की दुनिया', 'समाचार बाजार की नैतिकता', 'नई कविता में राष्ट्रीय चेतना', 'आधी दुनिया का सच', 'अमृतपुत्र' '१००० हिंदी साहित्य प्रश्नोत्तरी'। 'भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार', 'साहित्यश्री सम्मान' एवं अन्य सम्मान।

निराला की 'जूही की कली' कविता वे वापस कर चुके थे। प्रसाद की कविताओं को भी न तो 'सरस्वती' में जगह मिली और न ही उन्हें समझने की कोशिश हुई।

एक तरफ द्विवेदीजी सुधारक के अति उत्साह और समर्पण भाव से भाषा और साहित्य को अनुशासित, परिष्कृत और परिमार्जित कर रहे थे, दूसरी ओर पूर्व सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक सुधार आंदोलनों का प्रभाव भी बना हुआ था। रामधारी सिंह दिनकर इसी प्रभाव की चुटकी लेते हुए कहते हैं, 'रीतिकाल के ठीक बाद वाले काल में हिंदी भाषी क्षेत्र में जो सबसे बड़ी सांस्कृतिक घटना घटी, वह थी स्वामी दयानंद का पवित्रतावादी प्रचार। इस प्रवित्रतावादी प्रचार से घबराकर द्विवेदीयुगीन कविगण नारी के कामिनी रूप से आँखें चुराने लगे। इस युग के कवियों को शृंगार की कविता लिखते समय यह प्रतीत होता था कि जैसे स्वामी दयानंद पास ही खड़े सबकुछ देख रहे हों। इस भय से छायावादी कवि भी प्रत्यक्ष नारी के बदले 'जूही की कली' अथवा विहंगनियों का आश्रय लेकर अपने भावों का रेचन करने लगे।'

प्रेम, सत्य, कल्पना, सौंदर्य और स्वप्न जैसे भावों के समुच्चय से भावों का जो झरना प्रसाद की कविताओं के फलक पर फूट चला था, उस झरने के प्रवाह को रोकने के लिए बाँध बनने लगे तो 'इंदु' पत्रिका के जरिए उसने अपना रास्ता स्वयं बनाया। 'सरस्वती' से मिली अवहेलना से आहत प्रसादजी ने अपने भानजे अंबिका प्रसाद गुप्त के संपादकत्व में 'इंदु' मासिक पत्रिका का प्रकाशन करवाया। काशी से सन् १९०७ में मासिक पत्रिका के रूप में 'इंदु' का प्रकाशन शुरू हुआ। संपादक या प्रकाशक के रूप में प्रसादजी के नाम की घोषणा नहीं थी, लेकिन इसके संपादन और प्रकाशन में प्रसादजी की भूमिका और सक्रियता जग जाहिर थी। इसलिए यह कहलाई प्रसाद की 'इंदु'।

'इंदु' प्रत्येक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को प्रकाशित होती थी।

शीर्षक के साथ इस पत्रिका की सिद्धांत सूचक यह काव्यांजलि प्रकाशित होती थी—

'सज्जन चित्त चकोरन को, हुलसावन भावन पूरो अनिंदु है।
मोहन काव्य के प्रेमिन के हित, साँच सुधारस को बलिबिंदु है॥
ज्ञान प्रकाश प्रसारि हिय बिच, ऐसो जो मूरखता तम बिंदु है।
काव्य महोदधि ते प्रकट्यो, रस रीति कला युत पूरण 'इंदु' है॥'

कुछ अंकों के बाद पत्रिका में नई सूक्ति पढ़ने को मिली—

'सुखद शीतल राशि बरस सुधा शिव भाल से,
चहुँ दिशि कला प्रकाश 'इंदु' सकल मंगल करन॥'

जातीय अस्मिता की भव्यता और साहित्य की उन्नति के लिए उसके विभिन्न पार्श्वों को उभारने का उद्देश्य पत्रिका की प्रस्तावना ने स्पष्ट किया, 'जातीय उन्नति के लिए साहित्य की उन्नति की आवश्यकता होती है।'''साहित्य स्वतंत्र प्रकृति, सर्वतोगामी प्रतिभा के प्रकाशन का परिणाम है, वह किसी की परतंत्रता को सहन नहीं कर सकता, संसार में जो कुछ सत्य और सुंदर, वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौंदर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौंदर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है। आनंदमय हदय के अनुशीलन में और स्वतंत्र आलोचना में इसकी सत्ता देखी जा सकती है। और यह सर्वव्यापी प्रेम ही मनुष्य का धर्म और मनुष्यत्व का आदर्श अथवा लक्षण होता है और यही क्रमशः उन्नति और विश्वप्रेम मनुष्य को देवता बना देता है।'

प्रसादजी के लेखन का बहुत बड़ा हिस्सा 'इंदु' के माध्यम से सामने आया। कविता के साथ-साथ उनके गद्य की सार्थक अभिव्यक्ति इस पत्रिका के पन्नों पर हुई। हिंदी साहित्य के इतिहास में पहली कहानी की चर्चा में शामिल प्रसादजी की 'ग्राम' कहानी 'इंदु' में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त उनकी चंदा, पंचायत, ब्रह्मषि, गुलाम, चित्तौर का उद्धार आदि कहानियाँ भी 'इंदु' में प्रकाशित हुईं।

२४ पृष्ठों की इस पत्रिका के प्रथम अंक की विषय सामग्री ११ शीर्षकों में प्रकाशित हुई—१. प्रस्तावना, २. प्रार्थना पत्र (संपादक), ३. शारदाष्टक (जयशंकर प्रसाद 'साहु'), ४. उद्योग (संपादक), ५. प्रकृति सौंदर्य (जयशंकर प्रसाद 'साहु'), ६. सावन सोहावन (चौधरी लक्ष्मी नारायण सिंह), ७. शुभ समय, ८. आवश्यकता, ९. मनोरंजन, १०. इंदुमती (चौधरी लक्ष्मीनारायण सिंह)। आगे चलकर इस पत्रिका के मुख्य स्तंभों में मस्तराम के मंतव्य, मासिक संवाद, कसौटी, मिस्टर लतखोरी लाल, मकरंद बिंदु, विविध प्रसंग, पुस्तक परिचय, चित्र चर्चा, आलोचना-प्रत्यालोचना, मोती के दाने, सामयिक प्रसंग आदि स्तंभ खूब चर्चित हुए।

'इंदु' की प्रस्तावना और विषय सामग्री इस बात का संकेत देती है कि पत्रिका का कलेवर सत्य, प्रेम, सौंदर्य, प्रकृति, हृदय और बुद्धि के आयामों से समन्वित था। 'इंदु' ने इतिवृत्तात्मकता से बोझिल बनी कविता को सरसता और सूक्ष्मता की ओर मोड़कर खड़ी बोली कविता को नई अर्थवत्ता दी। मानव की मंगलकामना से प्रेरित, कला और कल्पना के सूक्ष्म तत्त्वों से पुष्ट प्रसाद के साहित्य की जमीन 'इंदु' ने तैयार की। छायावाद की कांति, उसकी आंतरिक अन्विति का शुरुआती अहसास कराया। इसीलिए कहा गया कि 'छायावादी कविता की मूल प्रवृत्ति का आभास इसमें मिलता है। इसी के द्वारा प्रसादजी साहित्य जगत् में अवतीर्ण हुए।

प्रसादजी के लेखन का बहुत बड़ा हिस्सा 'इंदु' के माध्यम से सामने आया। कविता के साथ-साथ उनके गद्य की सार्थक अभिव्यक्ति इस पत्रिका के पन्नों पर हुई। हिंदी साहित्य के इतिहास में पहली कहानी की चर्चा में शामिल प्रसादजी की 'ग्राम' कहानी 'इंदु' में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त उनकी चंदा, पंचायत, ब्रह्मषि, गुलाम, चित्तौर का उद्धार आदि कहानियाँ भी 'इंदु' में प्रकाशित हुईं। प्रसादजी कहानियों की विकास प्रकिया को दरशाती ये कहानियाँ बाद में उनके कहानी संग्रह 'छाया' में संगृहीत हुईं। इसके अतिरिक्त उनके चार नाटक 'सज्जन', 'प्रायश्चित्त', 'राज्यश्री', 'करुणालय' १९१० से लेकर १९१५ के बीच 'इंदु' में प्रकाशित हुए। इस तरह प्रसादजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के गढ़ाव का इतिहास 'इंदु' के पन्नों पर दर्ज है।

इस पत्रिका में रायकृष्ण दास, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय, राधिकारमण सिंह, रामदहिन मिश्र, लोचनप्रसाद पांडेय, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, विश्वंभरनाथ जिज्जा, निराला, कृष्णबिहारी मिश्र, हरिऔध आदि रचनाकारों की रचनाएँ प्रायः पढ़ने को मिलती रहीं। राधिकारमण सिंह की 'कानों में कंगना' कहानी इसी पत्रिका में प्रकाशित हुई।

'इंदु' एक आधुनिक दृष्टिकोण से संपन्न पत्रिका थी। इसने स्त्री लेखन और स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया। उसकी घोषणा थी कि 'इंदु'! बिना मूल्य भी दिया जाता है किसको? (१) जो महाशय उत्तमोत्तम लेखों द्वारा प्रतिमास 'इंदु' की सहायता करते रहेंगे। (२) और जो स्त्रियाँ अपने हाथ से स्वच्छ हिंदी में लिख, किसी उपयोगी विषय पर लेख भेजेंगी। स्त्री शिक्षा के संदर्भ में उनकी स्वाधीनता के लिए 'इंदु' स्त्री शिक्षा को अनिवार्य मानती है, 'लड़कियों का शिक्षा ग्रहण करना परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त उन्हें छोटे में पिता के अधीन, युवावस्था में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहकर अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है, अतएव उन्हें स्वाधीनता कहाँ?' *(इंदु कला १, किरण-१०, बैसाख संवत् १९६७)*।

यह पत्रिका लगभग आठ वर्षों तक नियमित प्रकाशन के बाद संकट में आ गई। दस वर्ष बंद रहने के बाद १९२७ में इसका पुनः प्रकाशन तब शुरू हुआ, जब 'इंदु' के पन्नों पर बोए गए छायावाद के बीज लहलहाने लगे थे। इंदु में प्रकाशित मुकुटधर पांडेय का लेख इन्हीं संकेतों को लेकर लिखा गया। पुराने अभिभावकों को शिकायत है कि

अस्पष्टता और उच्छृंखलता बढ़ रही है, पर वह यह भूल जाते हैं कि ये दोनो बातें जीवन के बसंत और यौवन के संधिकाल के दो बहुत आवश्यक उपकरण हैं। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि सौंदर्य सदैव एक रहस्य है। जहाँ जितनी सुंदरता होगी, वहाँ उतनी ही अस्पष्टता संकोच और (सिर झुकाकर कभी-कभी ऊपर देख लेनेवाली) लज्जा की सहेली है। वहीं साहित्य में प्रगति और विज्ञान में प्रतियोगिता का चिह्न है। परिवर्तन की इस अवस्था पर रोनेवाले रोएँ, पर वह रोने की नहीं, मुसकराने की चीज है, हँसने की भले ही न हो। 'इंदु' को गर्व है कि इसने जीवन के प्रारंभिक दिनों में जो बीज बोए थे, वे अपना रूप बदलकर लहलहा रहे हैं।'

'इंदु' के माध्यम से मानवीय अनुभूति की जटिल रहस्यात्मक परतों को दर्ज करती कविताओं, कहानियों और नाटकों के साथ-साथ उत्कृष्ट गद्य का नमूना रचते निबंध और लेख भी प्रकाशित हुए। इसी पत्रिका में प्रकाशित निबंध 'कवि और कविता' में प्रसादजी ने प्रकृति से रचनाकार के रागात्मक संबंधों के अतिरिक्त उसके ज्ञान को भी महत्त्व देते हुए लिखा कि 'कवि मानव स्वभाव के परिज्ञान के समान ही प्रकृतिज्ञान का भी उद्योग करता है और वह उसके अनुशीलन में उसी तरह लगा रहता है।' *(इंदु कला-२, किरण-१, १९१० ई.)*। इसी पत्रिका में प्रकाशित उनका निबंध 'प्रकृति सौंदर्य' परिस्थित की सृजनात्मकता का उदाहरण बनता है।

'इंदु' की प्रारंभिक घोषणा थी कि इस पत्र में राजनीतिक लेख नहीं छापे जाते। लेकिन सामयिकता के आग्रह को जल्दी ही 'इंदु' ने स्वीकार कर लिया। वेदना की मनोभूमि पर सृजनशील मन के संकल्प के साथ देश के राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षिक माहौल से अपने को पृथक् न रख सकी। राष्ट्रीय चेतना के धरातल पर इसने जातीय और साहित्यिक उन्नति का ध्येय लिये साहस, बुद्धि और कौशल को निखारने के लिए लोगों में शिक्षा और सूचना के प्रति जागरूकता पैदा करने का प्रयत्न किया—

तुमसे एक विनती है यार, कभी-कभी देखो अखबार।
दुनिया में क्या होता जाता, कैसा समय पलटता जाता।
जो-जो जाति सभ्य कहलाती, अखबारों को वह पढ़वाती।
समाचार सब पढ़ो-पढ़ाओ, जिससे सभ्य यहाँ कहलाओ।
मातृभूमि की उन्नति चाहो, अखबार में चित्त लगाओ।
धर्म, बुद्धि, साहस नहीं छोड़ो, आलस ही से मुख मोड़ो।
(इंदु, कला-१, किरण १ शुक्ल श्रावण संवत् १९६७ प्रथम अंक)

'इंदु' का समूचा इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह अपने समय से आगे की पत्रिका थी, जिसे पिछड़ेपन और मूरखता को दूर करने के लिए परंपरावादी ताकतों से टकराना पड़ा। जिसने यह सिद्ध कर दिया कि साहित्य को 'संरक्षणवाद' की जकड़न से बाहर निकालकर रचनात्मक स्तर पर लोकतंत्र का उत्सव मनाते हुए मानवीय क्रियाओं और अभिक्रियाओं से जोड़ा जा सकता है।

१८८, नेशनल मीडिया सेंटर
एन.एच.-८, गुड़गाँव-१२२००२
दूरभाष : ०९८११७१९८९८

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

मनवा आठों याम

● कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'

सुपरिचित कवि, गीतकार एवं समीक्षक। 'फिर भी शेष रह गया', 'बतियाती भोर' (गीत-संग्रह); 'गीत खुशी के गाओ तुम' (बालगीत-संग्रह) के अलावा अब तक लगभग ७ हजार रचनाएँ प्रकाशित। काव्य शिरोमणि, काव्यश्री, साहित्यश्री, गीत शिरोमणि, तुलसी सम्मान, हिंदी सम्राट् सहित दर्जनभर सम्मान प्राप्त।

मान और अपमान का, जब तक तुझको भान।
तब तक कब कर पाएगा, नाम रूप रसपान॥

किस-किसको देता दुआ, खुद को कहे महान।
तेरी क्या औकात है, देत वही पहचान॥

आते-जाते रोज ही, लाख-करोड़ अनेक।
कर-कर चिंता खो रहा, कितना जीवन नेक॥

रहता तू जिस हाल में, हाल हुए बे-हाल।
यदि तुझको है देखना, तो फिर देख कमाल॥

कालों का भी काल जो, भूत-प्रेत-बेताल।
उठता उसके सामने, नहीं 'अचूक' सवाल॥

सबको सबकुछ दे रहा, मनवा आठों याम।
घूम रहा क्यों बावरे, तू 'अचूक' हर धाम॥

अपनी रोटी सेंकते, अपनी करके बात।
कुछ तो सोच 'अचूक' ले, किसको, कौन खिलात॥

जीते जी हरि नाम को ले 'अचूक' घट जान।
पास पड़ा रह जाएगा, बरसों का सामान॥

कच्चे-पक्के जा रहे, जो थे मालामाल।
दृष्टिहीन बन चल रहा, उल्टी जैसी चाल॥

कर्म-धर्म नित बेचते शर्म बेच बे-शर्म।
माया जान सके कहाँ, अति 'अचूक' यह मर्म॥

प्रीत गीत का गा रहे, बिना भाव के लोग।
इसीलिए कब हो सका, दूर 'अचूक' वियोग॥

आसमान भ्रम भासता, मन खग उड़ता रोज।
उड़ते-उड़ते थक गया, रही अधूरी खोज॥

पंख पखेरून फड़फड़ा चले गगन की ओर।
खुशी 'अचूक' विफल हुई, नहीं चला कुछ जोर॥

सूखे पादप चल दिए दे 'अचूक' संदेश।
काल चबेना जग बना, कौन बचा है शेष॥

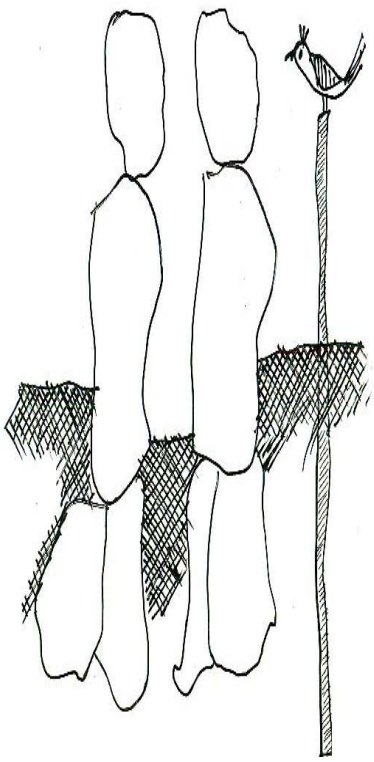

कागज नाव बनाय के, चले नदी उस पार।
पार 'अचूक' नहीं हुए, डूब गए मझधार॥

इठला जंगल ने कहा, मेरे जैसा कौन।
जीवन रहे आनंद से, सुन 'अचूक' है मौन॥

पेट काट धन जोड़ वे, कर-कर जतन करोड़।
जो अब तक था जोड़ना, रहा अधूरा जोड़॥

सुख-सुविधा की दौड़ में दौड़ रहे दिन-रात।
वह 'अचूक' अति पास है, जो मन नहीं सुहात॥

बात करे सब ज्ञान की, दें 'अचूक' संदेश।
भीतर भेष न बदलते, बाहर बदला भेष॥

भाग भरोसे बैठ के, समय किया बरबाद।
नमक हराम 'अचूक' ने, कब कीना हरि याद॥

पुण्य कमाने के लिए चले साथ परिवार।
मूल 'अचूक' चुका नहीं और चढ़ा सिर भार॥

साधन संगति साधना, तीनों जब मिल जात।
फिर 'अचूक' सतनाम की, होन लगे बरसात॥

आगम निगम सभी कहें बार-बार हर बार।
साथी तो परमात्मा, यारों का भी यार॥

करके कृपा कृपालु ने, दीनी मानुष देह।
नित 'अचूक' सुमिरन करो, बढ़े निरंतर नेह॥

३८-ए, विजय नगर, करतारपुरा,
जयपुर-३०२००६
दूरभाष : ०९९८३८११५०६

वह अजनबी

● सरिता कुमारी

'किलं ग··· !' फेसबुक मेसेंजर ने अपने काम पर मुस्तैदी से लगे होने की सूचना देते हुए मेसेज रिसीव होने का ऐलान किया।

'हे हलो! हाउ आर यू? आयम सो हैप्पी टू सी यू हेयर!'

'होप यू रिमेंबर मी!' किसी अनजान अकाउंट से पहचान की खुशबू लिये यह मेसेज झाँक रहा था।

वह सोच में पड़ गया कि इतने अपनेपन से मेसेज भेजनेवाला कौन है? अपने दिमाग में भागते-दौड़ते सवालों को शांत करने के लिए सहज ही उसने माइकल नाम का प्रोफाइल खँगालना शुरू किया। प्रोफाइल फोटो एक खूबसूरत जगह पर मोहक उगते सूरज की थी। लाल, गुलाबी, नारंगी रंगों का मनमोहक घालमेल सहज ही ध्यान आकर्षित कर रहा था। पर मैसेज भेजनेवाला उगता सूरज तो नहीं था, जो था उसे इस तसवीर से जान पाना असंभव था। प्रोफाइल पर और कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी, शायद उसने पब्लिक में कोई पोस्ट डाली ही नहीं थी। इसलिए मजबूर होकर बिना किसी पहचान की कड़ी के उसे पूछना पड़ा।

'आई एम फाइन! थैंक यू! मे आय नो हू इज़ देयर! सॉरी आई डोंट रिमेंबर माइकल।'

माइकल का झट से जवाब आया, 'या, आई अंडरस्टैंड, प्लीज एक्सेप्ट माय फ्रेंड रिक्वेस्ट। आई एम माइकल, वंस वी मेट एट हांगकांग पार्क इन हांगकांग इन फ्रंट ऑफ योअर होटल, टू ईयर्स बैक, होप यू रिमेंबर नाउ!'

ओह माइकल! यहाँ ऐसे फेसबुक पर! उसे उम्मीद नहीं थी। इस एक सूचना भर से पहचान और एक न भूल पानेवाली अजब-अजनबी मुलाकात की याद जेहन में तैर गई। कुछ लोगों का जीवन में यों ही मिल जाना और सिर्फ कुछ मिनटों या कुछ घंटों का साथ अविस्मरणीय याद बन दिमाग के कोने में दुबककर हमेशा के लिए बैठ जाता है। माइकल उनमें से ही एक था। वह उसे कैसे भूल सकता है।

दो साल पहले वह जनवरी की एक गुनगुनी सुबह थी। वह हांगकांग पार्क में टहल रहा था। टहलते-टहलते उसकी नजर कलाई पर बँधी घड़ी पर गई और वहीं उसकी नजर ठिठक गई। उसने समय देखने के लिए घड़ी पर नजर डाली थी, पर समय के साथ-साथ तारीख पर भी ध्यान गया। आज तेईस तारीख··· ! नहीं···नहीं···वह चौंका और सोचने

सुपरिचित लेखिका एवं रचनाकार। 'अनुभूति', 'एक टुकड़ा धूप का' (कविता-संग्रह) तथा पत्र-पत्रिकाओं में कहानी आदि रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति भारतीय राजस्व सेवा (आयकर) में कार्यरत।

लगा कि क्या आज सचमुच तेईस तारीख है? दिमाग पर जोर डालते ही वह इस निश्चय पर पहुँच गया कि आज तेईस तारीख तो किसी हाल में नहीं है। निस्संदेह आज चौबीस तारीख है, क्योंकि आज रविवार है और उसे काम पर जाने का कोई दबाव नहीं है। यह खयाल आते ही उसे यकीन हो गया कि हाँ, घड़ी तो गलत तारीख ही बता रही है और वह उसे ठीक करने के उद्देश्य से पास पड़ी बेंच पर बैठ गया।

घड़ी ठीक कर उसने नजर उठाई और इत्मीनान से अपने चारों ओर मुग्ध भाव से देखने लगा। सतरंगी, नरम, रेशमी किरणों से नहाते पार्क के फूल, पौधे, पत्ते बाहर भागते-दौड़ते शहर से अलहदा एक अलग ही जादुई दुनिया रच रहे थे। जिसमें न जाने क्या पाने को, न जाने कहाँ पहुँचने की जल्दी में दौड़ते जा रहे इनसान और मोटर गाड़ियों का तनाव तथा बेरुखी नहीं थी और न ही अपने में होकर भी, अपने में न होते हुए जीवन की आपा-धापी की गुत्थियाँ सुलझाने में गुम लोगों की फौज थी। यहाँ चारों ओर हरी घास की सुकून भरी चादर बिछी पड़ी थी। हरे-नीले तालाबों में जीवन का शांत ठहराव था और उनमें उछलती-कूदती रंग-बिरंगी मछलियों में उन्मुक्त सपनों का सैलाब था। वह खोया-खोया सा, धुले-धुले पत्तों की हरी-पीली रंगत से छन-छनकर आती जनवरी की गुलाबी धूप से सराबोर, पार्क की गुनगुनी ऊष्मा अपने तन-मन में महसूस कर रहा था।

वह कुछ दिन पहले ही दफ्तर के काम से अपने कुछ सहकर्मियों के साथ हांगकांग आया था। जब से वे यहाँ आए थे, लगातार बारिश हो रही थी, जिससे मौसम में सामान्य से अधिक ठंडक घुल गई थी। बारिश के कारण उनकी दिनचर्या होटल से ऑफिस और ऑफिस से होटल तक सिमटकर रह गई थी। पर आज सुबह जब उसकी नींद खुली तो देखा, मौसम साफ था। हल्के-फुल्के उजले बादलों के बीच से सूरज की गुनगुनी नरम किरणें धरती का रोम-रोम नरमी से सहला रही थीं। देखते ही मन खुश हो गया। ऐसे मोहक मौसम में कमरे में बैठने का

कोई तुक नहीं था। वह हाथ-मुँह धोकर, फटाफट जूते पहनकर प्रसन्न मन होटल से बाहर निकल आया और होटल के पास ही स्थित इस खूबसूरत पार्क में, जिसे हांगकांग पार्क कहते हैं, घुस गया। इतने दिनों से बोझिल वातावरण मानो आज चहक रहा था। साथ ही उसका मन भी रुई के फाहे सा हल्का होकर मौसम की खुमारी में घुलकर तैर रहा था। पार्क में बड़ी देर टहलने के बाद उसने समय देखने के लिए घड़ी देखी थी, जिसकी तिथि ठीक करने को पार्क के बीच में पड़ी उस बेंच पर बैठ गया था। उसे बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि उसकी बेंच के दूसरे छोर पर एक आदमी आकर बैठ गया। उसने उड़ती नजर से उसे देखा, निस्संदेह वह यहाँ का निवासी तो नहीं था। उसका गहरा काला रंग, मध्यम कद मानो जलने से गुँजिल हुए से बाल उसके परदेशी होने का बयान दे रहे थे। नजर मिलते ही वह बड़े अपनेपन और सहज भाव से मुसकराया, 'हलो! गुड मॉर्निंग!'

'गुड मॉर्निंग!'

उसके आत्मीयता से पगे संबोधन के जवाब में गौरव ने कहा। उस अजनबी में उसे सहज ही एक अपनापन जाग गया। 'आज मौसम बहुत खुशगवार है! (वेदर इज वेरी प्लेजेंट टुडे!)' उसने बातचीत का सिरा थामते हुए अंग्रेजी में कहा।

'हाँ, सचमुच!' गौरव ने उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा। थोड़ी देर उसे गौर से देखने के बाद उसने पूछा, 'आप कहाँ से हैं, यहाँ के तो नहीं हैं?'

'जी, सही कहा आपने। मैं इंडिया से हूँ। यहाँ कुछ दिनों के लिए सरकारी काम से आया हूँ।'

'आप इंडिया से हैं?' उसने हैरान होते हुए कहा, 'लगते नहीं हैं!'

वह हँस पड़ा, 'जी मैं इंडिया से ही हूँ! आपको कहाँ का लग रहा हूँ?'

'मुझे लगा आप यूरोपियन हैं। आप अपना हाथ देखिए, ऐसी स्किन तो यूरोपियंस की होती है।' उसने उसका हाथ पकड़ उलट-पुलटकर देखते हुए कहा।

वह हँसने लगा। अपने गोरे-गुलाबी रंग के कारण बचपन से ऐसी बातें सुनने का वह अभ्यस्त है।

'नहीं दोस्त, मैं इंडियन ही हूँ! इंडिया में भी मेरे जैसे लोग मिल जाते हैं। हाँ, तुम्हारी तरह मुझे कोई 'यूरोपियन' कहता है तो कोई 'ईरैनियन'!

'हाँ, ईरैनियन भी हो सकते हैं! पर आप इंडियन नहीं लगते।'

'आप कहाँ के हैं?' बात बदलते हुए उसने जानना चाहा।

'तंजानिया!'

'पर मेरे पिता मूलत: गुजराती और माँ अफ्रीकन हैं। एक तरह से मेरी जड़ें भी इंडिया तक जाती हैं।' उसने मुसकराते हुए ऐसे कहा, मानो इस नाते से उससे कोई रिश्ता ढूँढ़ निकाला हो। गौरव भी मुसकरा दिया।

'आपको किस नाम से पुकारूँ दोस्त?' उसने पहचान को एक नाम देने की इच्छा से पूछा।

'मुझे आप गौरव नाम से बुला सकते हैं।' उसने सवाल की अगली कड़ी भाँपते हुए सवाल के पहले ही जवाब जोड़ते हुए कहा। 'आप मुझे माइकल कहिए दोस्त।' उसने अपने अजनबी वजूद को एक नाम दे दिया।

'आप अपनी फैमिली नहीं लाए?' पहचान की कड़ी जुड़ते ही वह मानो इसे पुख्ता करने की इच्छा से व्यक्तिगत सवालों की ओर मुड़ गया। माइकल बात करने के मूड में था।

'नहीं, इस बार नहीं! उन्हें पहले की विजिट में हांगकांग घुमा चुका हूँ।'

'ओह! तो आप अकसर आते हैं।'

'अकसर तो नहीं, पर यहाँ यह तीसरी बार है।'

'अच्छा! और भी कहीं गए हैं आप? मेरा मतलब है इंडिया से बाहर।'

'जी, माइकल, मेरा वर्क प्रोफाइल ऐसा है कि मैं अब तक अलग-अलग कई देशों में जा चुका हूँ।' मैंने उसकी जिज्ञासा शांत करते हुए कहा।

वह मेरी बातों से बहुत प्रभावित हो चुका था। 'आप जानते नहीं गौरव कि आप कितने भाग्यशाली हैं। आपका कोई करीबी निस्संदेह आपके लिए निरंतर सच्चे दिल से प्रार्थना करता होगा! शायद आपकी पत्नी या आपकी माँ या फिर और कोई शुभचिंतक! तभी आप जीवन में ऐसा सुख देख पा रहे हैं! इसे भरपूर जिओ दोस्त और तहेदिल से ईश्वर के शुक्रगुजार रहो।'

वह भावविभोर होकर बोल रहा था। न जाने क्यों वह बेहद भावुक हो चला था। गौरव उसकी बातों से अभिभूत होता हुआ, उसकी प्रतिक्रिया से थोड़ा हैरान हो रहा था। उसने द्रवित होकर पूछा, 'और आपकी फैमिली माइकल? कौन-कौन हैं आपके परिवार में? आप उन्हें नहीं लाए क्या अपने साथ?'

'नहीं दोस्त, मैं किसी को नहीं लाया अपने साथ। घर पर मेरी पत्नी और तीन बच्चे हैं। मैं यहाँ अकेला ही आया हूँ। उनको लाना संभव नहीं था।' कहते-कहते वह रो पड़ा। गौरव इस भावुकता के लिए तैयार नहीं था। उसने घबराकर पूछा, 'क्या हुआ माइकल? सब ठीक तो है?' माइकल ने अपने को सँभालते हुए कहा, 'ठीक नहीं है दोस्त। मैं अकेला इलाज के लिए आया हूँ। मेरे पास इतने पैसे नहीं कि किसी को साथ ला सकता।' बोलते-बोलते वह ठिठक गया।

गौरव साँस रोककर उसकी बात सुन रहा था। उसने घबराकर पूछा, 'क्या हुआ? आपको क्या हुआ है दोस्त? देखने में तो आप बिल्कुल ठीक दिख रहे हैं।' उस बमुश्किल कुछ मिनटों की मुलाकात में ही वह

उस अजनबी से एक पहचान की डोर से बँध चुका था। किसी अनहोनी की आशंका से उसका दिल धड़क रहा था।

अपने भर्राए गले को साफ करते हुए माइकल बोला, 'दोस्त, मुझे एक जानलेवा बीमारी है। कुछ ही दिन पहले मुझे थायरॉइड कैंसर डिटेक्ट हुआ है। मेरे डॉक्टर ने सलाह दी कि मुझे सही इलाज के लिए या तो यूरोप या फिर हांगकांग जाना चाहिए। यूरोप अधिक महँगा है, इसलिए मैंने हांगकांग आना डिसाइड किया।' कहते-कहते उसका गला फिर भर आया, वह थोड़ी देर ठिठक गया। गौरव साँस रोककर दु:ख में डूबता-उतरता हैरानी से उसकी बात सुन रहा था।

थोड़ा सँभलकर उसने आगे कहना शुरू किया, 'जब इस बीमारी का पता चला। हम पर जैसे कहर टूट पड़ा। मैं एक मामूली स्कूल टीचर हूँ। मेरी सैलरी से घर-परिवार का खर्चा ठीक-ठाक चल जाता है। पर इस महँगी बीमारी के इलाज के लिए हमारे पास पैसे नहीं थे। पत्नी और बच्चों ने जिद कर सारी जमा-पूँजी और जो भी जमीन-जायदाद थी, सब बेचकर इलाज के पैसे इकट्ठे किए। यहाँ इलाज के लिए ९५ हजार डॉलर चाहिए थे। सारे जोड़-तोड़कर इतने पैसे इकट्ठे कर मैं अकेला ही इलाज के लिए आया हूँ। किसी और का यहाँ आने का खर्चा उठाने को पैसे नहीं थे।

उस समय गौरव के पर्स में मात्र १०० डॉलर ही थे। उसने माइकल को वे पैसे थमाए और समझाया कि ऑक्टोपस कार्ड कहाँ और कैसे बनवाना है। माइकल इस अप्रत्याशित मदद से अभिभूत था। उसने सजल आँखों से गौरव को देखा और उसका हाथ पकड़कर बोला, 'दोस्त, तुम मेरे लिए ईश्वर के भेजे दूत हो। देखो, तुम्हारे ही कारण होटल के रिसेप्शन में मुझे कितनी अच्छी तरह अटेंड किया गया, मदद की गई। नहीं तो ये तो मुझे आस-पास भी फटकने न देते और बुरी तरह घुड़ककर भगा देते।

'जब मैं घर से यहाँ के लिए निकला, उस वक्त अपनी उदास-रोती पत्नी और बच्चों का चेहरा एक मिनट के लिए भी नहीं भूल पाता।' यह कहकर माइकल रोने लगा।

'मुझे जीना है दोस्त, हर हाल में जीना है। अपने परिवार के लिए मुझे जीना है!

'जब यहाँ अस्पताल में भरती होने के लिए पैसे जमा कराए तो उन्होंने कहा कि मेरे पास पाँच हजार डॉलर कम हैं। इलाज का खर्चा अब एक लाख डॉलर हो चुका है।'

गौरव अविश्वास और दु:ख से भरा माइकल की बात सुन रहा था। माइकल ने अपनी गरदन के पीछे के निशान और अपने पैर दिखाए, जो बीमारी के कारण गलना शुरू हो गए थे।

उसकी हालत देखकर गौरव ने घबराकर पूछा, 'तो फिर आप यहाँ क्या कर रहे हैं माइकल? बाकी पैसों का इंतजाम कैसे करेंगे?'

'इसी सोच में पड़ा हूँ दोस्त। यही सोचता-सोचता यहाँ पार्क में आकर बैठ गया हूँ। मुझे नॉर्दन प्वॉइंट जाना है। वहाँ हमारी चर्च है। मुझे पूरी उम्मीद है कि वहाँ कोई-न-कोई व्यवस्था हो जाएगी।' उसने उम्मीद भरी उदास आवाज में कहा।

'क्या तुम्हें पता है कि वह कहाँ है?' गौरव ने चिंतित स्वर में पूछा।

'वही पता करने की कोशिश कर रहा हूँ। पर यहाँ के लोग, यहाँ के लोग अच्छे नहीं हैं। मुझे देखते ही उपेक्षा से मुँह फेर लेते हैं। कोई कुछ भी बताने को तैयार नहीं।' उसने हताशा से कहा।

'यहाँ आप पहले इनसान हैं गौरव, जिसने मुझसे इतने प्यार से सम्मानपूर्वक बात की है।' उसने अपनी गीली आवाज में कहा।

'कोई बता दे तो मैं वहाँ पैदल ही चला जाऊँगा।' उसने कुछ सोचते हुए आगे जोड़ा।

'पर वह यहाँ से बहुत दूर है माइकल। ऐसी हालत में इतनी दूर पैदल कैसे जाओगे?' उसके गलते हुए पैरों की हालत याद कर गौरव ने परेशान होकर पूछा।

'मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं दोस्त कि मैं वहाँ तक के किराए पर खर्च कर सकूँ।' उसने बेचारगी से टूटी आवाज में कहा।

उसकी असहाय अवस्था पर गौरव का दिल डूबने लगा। इसे इस हालत में कैसे छोड़ सकते हैं। उसके मन में विचार कौंधा, 'दोस्त, क्यों न तुम मेरे साथ मेरे होटल चलो, वहीं पता करने की कोशिश करते हैं कि वह चर्च है कहाँ और वहाँ तक कैसे पहुँचा जाए।

'होटल पास ही है, बस सड़क पार करके सामने ही!'

'ठीक है, जैसा आप कहें!' वह सहज ही तैयार हो गया।

दोनों साथ ही गौरव के होटल के कमरे में आए। रास्ते में माइकल उससे बताता रहा कि कैसे उसने अपनी ऐबेंसी में बात की और उनके सुझाने पर चर्च से मदद मिलने की उसे पूरी उम्मीद लग रही है और वह जल्द-से-जल्द चर्च पहुँचकर पैसे का इंतजाम करना चाहता है, जिससे जितनी जल्दी हो सके, अस्पताल में भरती हो सके, जहाँ उसका इलाज तुरंत शुरू हो जाए। गौरव उसकी बात सुनता रहा और सोचता रहा कि इसकी मदद कैसे की जाए, उसकी हालत जानने के बाद से वह सकपकाया हुआ था।

होटल के कमरे में पहुँचकर उसने रिसेप्शन में बात की और उनसे रिक्वेस्ट की कि कोई उन्हें नॉर्थ प्वॉइंट में स्थित चर्च तक पहुँचने का रास्ता और सही तरीका समझाए। माइकल कमरे में आकर काफी खुश था। वह कमरे की साज-सज्जा देखकर सम्मोहित था। मदद मिलने से वह अब थोड़ा रिलैक्स और खुश था। थोड़ी देर में होटल के रिसेप्शन पर एक जानकार अटेंडेंट ने उसे विस्तार से चर्च पहुँचने तक का रास्ता और तरीका समझाया। चूँकि वहाँ मेट्रो से आराम से पहुँचा जा सकता था, इसलिए गौरव ने उसे सुझाया कि वह मेट्रो का ऑक्टोपस (पास) बनवा ले, जिससे उसे आने-जाने में आसानी रहे। उस समय गौरव के पर्स में मात्र १०० डॉलर ही थे। उसने माइकल को वे पैसे थमाए और समझाया कि ऑक्टोपस कार्ड कहाँ और कैसे बनवाना है। माइकल इस अप्रत्याशित मदद से अभिभूत था। उसने सजल आँखों से गौरव को देखा

और उसका हाथ पकड़कर बोला, 'दोस्त, तुम मेरे लिए ईश्वर के भेजे दूत हो। देखो, तुम्हारे ही कारण होटल के रिसेप्शन में मुझे कितनी अच्छी तरह अटेंड किया गया, मदद की गई। नहीं तो ये तो मुझे आस-पास भी फटकने न देते और बुरी तरह घुड़ककर भगा देते।

'मैं तुम्हारा शुक्रिया कैसे अदा करूँ दोस्त। तुम्हारी यह मदद मैं पूरी जिंदगी नहीं भूलूँगा।' कहते हुए वह रो पड़ा।

गौरव की आँखें भी नम हो गईं। बस वह इतना ही कह पाया, 'जल्दी निकलो माइकल, तुम्हारे पास समय कम है। ऑल दि बेस्ट मित्र! तुम्हारा काम पूरा हो!'

'शुक्रिया! शुक्रिया··· !' कहता हुआ माइकल चला गया। पीछे खड़ा गौरव उसे तब तक देखता रहा, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। उसके जाने के बाद गौरव सुबह से घटी घटनाओं की एक के बाद एक कड़ियाँ जोड़ता रहा और हैरानी से सोचता रहा कि आखिर आज यह सब हुआ क्या। सुबह उसका पार्क जाना, घड़ी में गलत तारीख का होना, उसे ठीक करने के लिए उसका बेंच पर बैठना, उसी बेंच पर आकर माइकल का बैठना, माइकल से बातचीत, उसकी गंभीर बीमारी···सोचते हुए उसका सिर घूमने लगा।

कहाँ तंजानिया का माइकल, कहाँ भारत से वह, यहाँ अनजान जगह हांगकांग में आकर एक अनजान अजनबी की तरह मिलते हैं, और कुछ समय के परिचय में जीवन भर न भूल पानेवाली याद में बदल जाते हैं। हाँ, वह माइकल से हुई यह संक्षिप्त मुलाकात ताउम्र नहीं भूल सकता। पता नहीं, उससे दोबारा कभी मुलाकात होगी भी या नहीं। पर हांगकांग और यहाँ माइकल से मिलना इस जगह की न भूल पानेवाली धरोहर है। वह यह सोचकर आहत था कि पराये देश में लोग बिना यह जाने-समझे कि कोई किन हालात और परेशानियों से लड़ रहा है, मशीन की तरह अपना कीमती पल अनजान पर खर्च नहीं करना चाहते। किसी के बाहरी रंग-रूप से निश्चय कर लेते हैं कि उससे बात करनी भी है कि नहीं। जबकि उनके बस एक क्षण के प्यार और सम्मान भरी मदद से, कुछ बोल से किसी को कितनी बड़ी राहत मिल सकती है, किसी की बड़ी-से-बड़ी मुश्किल आसान हो सकती है। कुछ नहीं तो उसे अपनी लड़ाई लड़ पाने का एक हौसला, एक नई ताकत मिल सकती है। बस चंद परवाह भरे बोलों से। पर दु:खद है कि मशीनों के साथ मशीन ही बनते जा रहे हम इनसानों में वह संवेदनशीलता ही समाप्त होती जा रही है। नहीं तो अकेले यों अनजान देश में भटक रहे माइकल की इतनी छोटी सी मदद तो कोई भी यहाँ का रहनेवाला राह चलते ही कर सकता था।

गौरव को इस बात का संतोष था कि उन हालात में जो थोड़ा-बहुत वह उसके लिए कर सकता था, उसने करने की कोशिश की। उसके जाने के बाद उसकी चिंता, उसका दर्द उसके मन में कहीं गहरे पैठ गया था। सच है, सुख इनसानों को उतना नहीं जोड़ता, जितना दु:ख और दर्द जोड़ता है। किसी की तकलीफ से उपजी आह सीने में हमेशा के लिए जम जाती है और किसी भी कमजोर पल में पिघलकर बहने लगती है। माइकल का दर्द वही दर्द था, जो गौरव के सीने में जाकर जम गया था और गाहे-बगाहे पिघलकर बहने लगता और वह सोचता कि पता नहीं माइकल कैसा होगा? कहाँ होगा? वह दुआ करता कि वह पूरी तरह स्वस्थ होकर अपने परिवार के बीच चला गया हो। कई बार वह सोचता कि उसे उसका स्थायी कॉण्टैक्ट डिटेल्स ले लेना चाहिए था, पर वह सबकुछ इतनी तेजी से घटा था कि उस समय हड़बड़ी में उसके दिमाग में यह खयाल आया ही नहीं। समय के साथ माइकल की याद थोड़ी धुँधली तो हो गई थी, पर मिटी बिल्कुल भी नहीं थी।

आज अचानक माइकल का ऐसे फेसबुक पर मिल जाना किसी माँगी मुराद के पूरी हो जाने से कम नहीं था। वह सुखद आश्चर्य से डूब-उतर रहा था। दोनों बड़ी देर तक चैट करते रहे। माइकल ने विस्तार से अपने इन दो वर्षों के संघर्षपूर्ण समय का लेखा-जोखा दिया। वह साँस थामे उसके कठिन समय की पीड़ा में डुबकियाँ लगाता रहा, कभी उसकी आँखें नम हो जातीं, कभी उम्मीद की लौ से उसकी आँखें दपदपा जातीं। वह सुनता रहा, गुनता रहा, महसूसता रहा, माइकल की पीठ पर उस भयावह समय की मार के निशान।

''जानते हैं गौरव, आप उस दिन अगर मुझे अचानक उस तरह नहीं मिलते तो मेरा न जाने क्या हाल होता?''

माइकल की इस बात से उसके जीवन के उतार-चढ़ाव में खोए हुए गौरव की तंद्रा अचानक भंग हुई। वह चौंक गया, पर कुछ कह न सका, क्योंकि माइकल से हुई उस अद्‌भुत मुलाकात की पहेली गौरव आज तक नहीं सुलझा पाया था।

''मैं आपको बहुत शिद्‌दत से याद करता रहा, इन पिछले दो सालों में। आपसे एक बार बात करने की दिली ख्वाहिश थी।''

''आपसे हुई उस छोटी मुलाकात ने मुझे यह समझ दी कि मैं खुद अब किसी अजनबी का दु:ख-दर्द बाँटने को हर पल तैयार रहता हूँ। मैं समझता हूँ, एक मायने में हम सब एक ही वजूद के कई हिस्से हैं।''

माइकल एक रौ में बोलता जा रहा था।

''मैं आज स्वस्थ होकर जो आपसे फिर जुड़ सका, यह निस्संदेह आप ही की दुआओं का जादू है दोस्त। देखा जाए तो हम कभी अजनबी थे ही नहीं। है न मित्र?''

''बिल्कुल माइकल, मैं पूरी तरह से सहमत हूँ आपसे।'' माइकल के सवाल पर गौरव ने भावुक होकर कहा। वह मुग्ध भाव से माइकल की बातें सुनता, उसकी हाँ में हाँ मिलाता जा रहा था।

गौरव की खुशी की कोई थाह नहीं थी कि उस लड़ाई में उसका सरल हृदय हांगकांग में मिला अजनबी दोस्त विजेता था और अब तंजानिया में अपने प्यारे परिवार के साथ एक स्वस्थ-सुखी जीवन जी रहा था। उसका वह मिलकर बिछुड़ा अजनबी दोस्त अब खोया अजनबी नहीं था। गौरव खुश था, संतुष्ट था, जीवन के इस अप्रत्याशित उपहार और एक सुखद मोड़ से, जिसका नाम 'माइकल' था।

हाउस नं. २, नेशनल एकेडमी ऑफ डायरेक्ट टैक्स,
छिंदवाड़ा रोड, नागपुर (महा.)
दूरभाष : ०९४२२१२२०८३

एक माँ की कहानी

मूल : **हंस क्रिचन ऐंडरसन**
अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

माँ छोटे बच्चे के पास बैठी थी। वह बहुत उदास थी और डर रही थी कि कहीं मर न जाए। उसका नन्हा चेहरा पीला पड़ गया था और आँखें बंद थीं। बच्चा कठिनाई से साँस ले पा रहा था। कभी इतनी गहरी साँस लेता था जैसे वह आहें भर रहा हो। तब माँ पहले से और अधिक उदास हो जाती थी।

दरवाजे पर दस्तक हुई और विनीत बूढ़ा आदमी अपने को किसी चीज में लपेटे अंदर आया; उसका ओढ़ना घोड़े के बड़े कपड़े जैसा था जिससे वह अपने आपको गरम रख सके। उसे इसकी जरूरत थी क्योंकि शरद् ऋतु थी। बाहर हर वस्तु बर्फ से ढकी हुई थी और हवा इतनी तेज चल रही थी कि चेहरा कट रहा था।

बूढ़ा सरदी से काँप रहा था। क्षण भर के लिए बच्चा शांत हो गया, तो माँ अंदर गई और उसके लिए थोड़ी बीयर छोटे बरतन में गरम करने के लिए स्टोव पर रख दी। बूढ़ा आदमी बैठ गया और झुला झुलाने लगा तथा माँ पुरानी कुरसी पर उसके पास बैठ गई और बच्चे को देखने लगी जिसे साँस लेने में भी पीड़ा हो रही थी; इसने उसका नन्हा हाथ थाम लिया।

''तुम सोचते हो कि मैं इसे रख सकूँगी?'' उसने पूछा, ''अच्छा, ईश्वर इसको मुझसे ले तो नहीं जाएगा न?''

वह बूढ़ा आदमी—जो साक्षात् मृत्यु था—उसने इस अजीब ढंग से सिर हिलाया जिसका अभिप्राय हाँ और ना—दोनों हो सकते थे। माँ ने आँखें नीची कर लीं और आँसू उसके गालों पर टपकने लगे। उसका सिर भारी हो गया, क्योंकि तीन दिन और तीन रात वह अपनी आँखें बंद नहीं कर पाई थी और अब वह एक क्षण के लिए सोई थी। फिर वह उठी और सरदी से काँपने लगी।

यह क्या हुआ? उसने पूछा और चारों तरफ देखा, परंतु बूढ़ा व्यक्ति जा चुका था और साथ में उसका बच्चा भी अपने साथ ले गया था। कोने में पुरानी दीवार घड़ी गुनगुना और घरघरा रही थी। भारी साँसों का बोझ फर्श पर गिरा—स्थूल!—और घड़ी रुक गई।

परंतु माँ बच्चे के लिए रोते हुए घर से बाहर दौड़ी।

बाहर एक औरत बर्फ में काले कपड़े पहने बैठी थी, उसने कहा—

''मृत्यु तुम्हारे साथ कमरे में थी, मैंने उसे, तुम्हारे बच्चे के साथ जल्दी से जाते हुए देखा था; वह हवा से भी तेज कदम भर रही थी। जिसे वह एक बार ले जाती है, फिर उसे कभी नहीं लौटाती।''

''वह गई किस तरफ है, मुझे इतना बता दो,'' माँ ने पूछा, ''मुझे रास्ता बता दो, मैं उसे ढूँढ़ लूँगी।''

''मैं उसे जानती हूँ,'' काले कपड़ोंवाली औरत ने कहा, ''परंतु इससे पहले कि मैं तुम्हें बताऊँ, तुम वे सारे गीत मुझे सुनाओ जो तुमने बच्चे को सुनाए थे। मुझे वे गीत अच्छे लगते हैं; मैं उनको पहले सुन चुकी हूँ। मैं रात हूँ और मैंने तुम्हारे आँसू देखे हैं जब तुम उन्हें गाती थी।''

''मैं उन सबको गाऊँगी—सबको,'' माँ ने कहा, ''परंतु मुझे जाने दो, ताकि मैं उसे पकड़ सकूँ और अपने बच्चे को पा सकूँ।''

परंतु रात मौन और निश्चल बैठी रही। फिर माँ ने अपने हाथ सिकोड़े, गाना गाया और रोई। बहुत गाने और उनसे अधिक आँसू बहाने पर, रात बोली, ''दाईं ओर देवदार के घने जंगल में जाओ क्योंकि मैंने मृत्यु को तुम्हारे बच्चे के साथ उधर ही जाते देखा था।''

जंगल में काफी अंदर सड़कों का चौराहा था और वह जानती थी कि कौन सा रास्ता पकड़े। वहाँ बिना फूल-पत्तों के काले काँटों की एक झाड़ी थी; ठंडी शरद् ऋतु के कारण टहनियों से बर्फ के तोदे लटक रहे थे।

''क्या तुमने मृत्यु को मेरे नन्हें बच्चे के साथ जाते हुए नहीं देखा?''

''हाँ,'' झाड़ी ने उत्तर दिया—''परंतु मैं तुम्हें तब तक नहीं बताऊँगी कि वह किस तरफ गई है, जब तक तुम अपनी छाती से मुझे गरम नहीं करती। मैं यहाँ जम रही हूँ; मैं बर्फ बन रही हूँ।''

उसने झाड़ी को सीने से लगा लिया, बिलकुल पास ताकि अच्छी तरह गरम कर सके। काँटे उसकी चमड़ी में घुस गए और उसका रक्त बड़ी-बड़ी बूँदों में बहने लगा। काले काँटोंवाली झाड़ी के ताजा पत्ते निकल आए और उस काली शरद् रात में फूल खिल गए। एक दुःखी माँ का सीना कितना गरम होता है! काले काँटोंवाली झाड़ी ने बता दिया कि वह कौन सा रास्ता पकड़े।

फिर वह एक बड़ी झील के पास आई जहाँ न कोई जहाज था और न ही कोई नाव। झील न इतनी जमी हुई थी कि वह उसपर चल सके और न ही इतनी काफी खुली थी कि उसमें से चलकर निकल सके; फिर भी उसको इसे पार करना था—यदि वह बच्चे को पाना चाहती थी। फिर

वह झील को ही पीने के लिए लेट गई; ऐसा करना किसी के लिए भी असंभव था, परंतु दु:खी माँ ने सोचा कि शायद कुछ अजूबा हो जाए!

''नहीं, यह कभी नहीं हो सकता,'' झील ने कहा, ''आओ, हम देखें कि हम समझौता कैसे कर सकते हैं। मुझे मोती इकट्ठे करने में रुचि है और तुम्हारी दोनों आँखें इतनी साफ हैं जैसी मैंने कभी नहीं देखीं। यदि तुम अपने आँसू मुझमें डाल दो तो मैं तुम्हें बड़े ग्रीन हाऊस तक पहुँचा दूँगी जहाँ मृत्यु फूल और वृक्ष उगाती है; उनमें से हर मानव एक जीवन है।''

''ओह, मैं बच्चे को पाने के लिए क्या कुछ नहीं दे सकती?'' प्रभावित माँ ने कहा; वह और रोई। उसके आँसू झील की गहराई में गिरकर दो अमूल्य मोती बन गए। झील ने उसको ऊपर उठा लिया जैसे झूले में बैठी हो, फिर उसे दूसरे किनारे पर पहुँचा दिया जहाँ मीलों में एक शानदार घर खड़ा था। कोई यह नहीं बता सकता था कि वह जंगलों और गुफाओंवाला पर्वत था या ऐसी कोई जगह थी जो बनाई गई थी, परंतु बेचारी माँ उसे देख नहीं सकी क्योंकि वह अपनी आँखें खो चुकी थी।

''ओह, मैं बच्चे को पाने के लिए क्या कुछ नहीं दे सकती?'' प्रभावित माँ ने कहा; वह और रोई। उसके आँसू झील की गहराई में गिरकर दो अमूल्य मोती बन गए। झील ने उसको ऊपर उठा लिया जैसे झूले में बैठी हो, फिर उसे दूसरे किनारे पर पहुँचा दिया जहाँ मीलों में एक शानदार घर खड़ा था। कोई यह नहीं बता सकता था कि वह जंगलों और गुफाओंवाला पर्वत था या ऐसी कोई जगह थी जो बनाई गई थी, परंतु बेचारी माँ उसे देख नहीं सकी क्योंकि वह अपनी आँखें खो चुकी थी।

''जो मेरे बच्चे को अपने साथ ले गई है, उस मृत्यु को मैं कहाँ ढूँढूँ?''

''वह अभी यहाँ नहीं पहुँची।'' भूरे बालोंवाली बूढ़ी औरत ने कहा, जो मृत्यु के शीशे के मकान में इधर-उधर ध्यान से घूम रही थी। ''तुमने यह रास्ता कैसे ढूँढ़ा और किसने तुम्हारी सहायता की है?''

''अच्छे ईश्वर ने मेरी सहायता की है,'' उसने उत्तर दिया—''वह कृपालु है और तुम भी कृपालु होगी। कहाँ—मैं अपने बच्चे को कहाँ ढूँढूँ?''

''मैं नहीं जानती,'' बूढ़ी औरत ने कहा, ''और तुम भी देख नहीं सकती हो। कई फूल और वृक्ष रात को मुरझा गए हैं। मृत्यु आएगी और उनका जल्दी पुनरारोपण करेगी। तुम भली प्रकार जानती हो कि क्रमानुसार प्रत्येक मानव के पास जीवन-वृक्ष अथवा जीवन-पुष्प है। वे दूसरे पौधों की तरह नजर आते हैं परंतु उनके दिल धड़कते हैं। बच्चों के दिल भी धड़क सकते हैं। इसपर विचार करो। संभवत: तुम अपने बच्चे के दिल की धड़कन को पहचान सको, परंतु तुम मुझे क्या दोगी यदि मैं बता दूँ कि तुम्हें और क्या करना होगा?''

''मेरे पास देने को और कुछ नहीं है,'' प्रभावित माँ ने कहा, ''परंतु मैं तुम्हारे लिए पृथ्वी के छोरों तक जा सकती हूँ।''

''वहाँ तुम्हारे करने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है,'' बूढ़ी औरत ने कहा, ''परंतु तुम अपने लंबे बाल मुझे दे सकती हो। तुम्हें स्वयं ज्ञात होना चाहिए कि ये सुंदर हैं और मुझे अच्छे लगते हैं। इन के बदले में तुम मेरे सफेद बाल ले सकती हो; ये सदा के लिए कुछ-न-कुछ हैं।''

''तुम और कुछ नहीं चाहती?'' उसने पूछा, ''मैं खुशी से इनको दे दूँगी।'' और उसने अपने सुंदर बाल उसे दे दिए और बूढ़ी औरत के सफेद बाल ले लिये।

इसके बाद वह उसे मृत्यु के महान् शीशे के घर में ले गई जहाँ फूल और वृक्ष आश्चर्य ढंग से आपस में मिले उग रहे थे। वहाँ घास के फूलों के नीचे सुंदर फूल खिले थे; कुछ बिलकुल ताजा और बाकी कुछ-कुछ मुरझाए हुए; पानी के साँप उनके आसपास मिलन कर रहे थे और केकड़े टहनियों में दृढ़ता से चिपक रहे थे। वहाँ पाम के भड़कीले वृक्ष थे; बलूत, केले, अजमोदा और पोदीने के खिले हुए पौधे भी थे। हर फूल और वृक्ष का नाम था; प्रत्येक मानव जीवन था; लोग जीवित थे, एक चीन में, दूसरा ग्रीनलैंड में—दुनिया में बिखरे हुए। बूढ़े, बड़े वृक्षों को गमलों में ढकेला गया था और काई में लिपटे रक्षित छोटे, दुर्बल फूल धरती में उपज रहे थे। परंतु दु:खी माँ तमाम छोटे-से-छोटे पौधों पर झुकी और प्रत्येक में मानव हृदय को धड़कते पाया और लाखों पौधों में से अपने बच्चे के दिल को पहचान लिया।

''यह है वह!'' वह चिल्लाई और केसर के नन्हें फूल की ओर हाथ फैलाए जो पीला और मुरझाया हुआ लटक रहा था।

''फूल को मत छूओ,'' बुढ़िया ने कहा, ''यहाँ बैठ जाओ, जब मृत्यु, जो कुछ ही मिनटों में आनेवाली है, आएगी तो उसे पौधे उखाड़ने मत देना बल्कि उसको धमकाना कि यदि उसने ऐसा किया तो तुम दूसरे पौधे उखाड़ दोगी; तब वह डर जाएगी; उसको इन सबका हिसाब देना होता है; जब तक परमात्मा की आज्ञा नहीं होगी, एक भी पौधा उखाड़ा नहीं जाना चाहिए।''

एकाएक बड़े कमरे में से एक बर्फीला झोंका आया और अंधी माँ ने महसूस किया कि मृत्यु आ पहुँची है।

''तुमने यहाँ का रास्ता कैसे ढूँढ़ा?'' उसने पूछा, ''तुम मुझसे पहले जल्दी कैसे आ गईं?''

''मैं माँ हूँ।'' उसने उत्तर दिया।

मृत्यु ने कोमल नन्हें फूल की ओर अपने हाथ बढ़ाए; परंतु उसने हाथ कसकर रखे और दृढ़ता से थामे रही; फिर भी उसने पूर्णत: सावधानी रखी ताकि वह एक पत्ती भी छू न सके। फिर मृत्यु ने अपने हाथों पर फूँक मारी और महसूस किया कि उसकी साँस बर्फीली हवा से अधिक ठंडी थी; और उसके हाथ शक्तिहीन होकर नीचे गिर गए।

''तुम मेरे विरुद्ध कुछ नहीं कर सकती।'' मृत्यु ने कहा।

''परंतु दयालु परमात्मा कर सकता है।'' उसने उत्तर दिया।

''मैं केवल वही करती हूँ जिसकी वह आज्ञा देता है,'' मृत्यु ने

कहा, ''मैं उसकी मालिन हूँ। मैं उसके तमाम फूल और वृक्ष ले जाती हूँ और स्वर्ग के विशाल उपवन की अनजानी धरती पर पुनरारोपण करती हूँ, परंतु ये वहाँ कैसे शोभायमान होते हैं, वहाँ कैसे, क्या होता है, मैं तुम्हें नहीं बताऊँगी।''

''मेरा बच्चा मुझे लौटा दो।'' माँ ने कहा और याचना करके रोई। एकाएक उसने अपने दोनों हाथों में दो प्यारे फूल पकड़ लिये और मृत्यु को पुकारा—''मैं तुम्हारे सारे फूल नष्ट कर दूँगी क्योंकि मैं निराशा में हूँ।''

''उन्हें हाथ मत लगाओ,'' मृत्यु ने कहा, ''तुम कहती हो कि तुम दु:खी हो और एक दूसरी माँ को दु:खी करने पर तुली हो।''

''दूसरी माँ?'' विनीत औरत ने कहा और फूलों को छोड़ दिया।

''यह दूसरी माँ आँखें हैं,'' मृत्यु ने कहा, ''मैंने इनको झील से निकाला है; ये तेजी से चमक रही थीं। मुझे मालूम नहीं था कि ये तुम्हारी हैं। इन्हें वापस ले लो, ये पहले से ज्यादा साफ हैं, निकटवाले गहरे कुएँ में झाँककर देख लो। मैं तुम्हें इन दो फूलों के नाम बताऊँगी जो तुम उखाड़ना चाहती थी और जान जाओगी कि तुम निराशा और विनाश को प्राप्त होने जा रही थीं।

उसने कुएँ में झाँका; यह प्रसन्नता की बात थी कि उनमें से एक संसार के लिए किस प्रकार आशीर्वाद बन गई; उसके आसपास कितना आनंद और उल्लास फैल गया था। एक औरत ने दूसरी के जीवन को देखा कि वह रक्षा, निर्बलता, दु:ख और आहों से बना था।

''दोनों ही परमात्मा की इच्छाएँ हैं।'' मृत्यु ने कहा।

''इनमें से हत-भाग्य कौन सा फूल है और कौन सा भाग्यवान्?''

''यह मैं तुम्हें नहीं बताऊँगी,'' मृत्यु ने कहा, ''परंतु तुम्हें इतना मालूम होना चाहिए कि इन दो फूलों में से एक तुम्हारे बच्चे का है। यह तुम्हारे बच्चे का भाग्य था कि तुम उसका भविष्य बनी।''

फिर माँ ने डरकर जोर से चीख मारी।

''इनमें से मेरे बच्चे का कौन सा है? मुझे बताओ! मासूम बच्चे को छोड़ दो! इन तमाम दु:खों से मेरे बच्चे को मुक्ति मिल जाए। बेशक इसे ले जाओ! इसे परमात्मा के राज्य में ले जाओ। मेरे आँसुओं को भूल जाओ, मेरी प्रार्थना को भूल जाओ और उस सबको भूल जाओ जो मैंने किया है।''

''मैं समझ नहीं पा रही हूँ,'' मृत्यु ने कहा, ''क्या तुम अपना बच्चा वापस चाहोगी या मैं उसे ऐसे स्थान पर ले जाऊँ जिसे तुम नहीं जानती?'' फिर माँ ने हाथ मले और घुटनों के बल गिरकर प्रार्थना करने लगी।

''यदि मैं तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध प्रार्थना करती हूँ तो उसे मत सुनो! तुम्हारी इच्छा सदा सर्वोत्तम है। मुझे मत सुनो! मत सुनो मुझे!''

उसने अपने सिर को अपने सीने पर गिरा दिया।

मृत्यु उसके बच्चे के साथ अनजाने स्थान को चली गई!

साअ

लघुकथा

सरल स्वभाव

● **ओमप्रकाश बजाज**

बनारस में जीवन बीमा का बड़ा दफ्तर गंगाजी के हरिश्चंद्र घाट के निकट ही है। विश्वविख्यात मणिकर्णिका घाट के बाद सर्वाधिक दाह-संस्कार इसी घाट पर ही होते हैं। दिन भर 'रामनाम सत्य है' की गुहार सुनाई देती रहती है। शव शत्राएँ दफ्तर के सामने से निकलती रहती हैं। अधिकांश कंधों पर, कई वाहनों पर, कुछ साइकिलों पर भी। इनमें अधिकतर शव बनारस के बाहर से लाए गए होते हैं, क्योंकि प्राचीन मान्यता चली आई है कि काशी में दाह-संस्कार होने पर मुक्ति मिल जाती है।

कुछ समय पहले की बात है—प्रात: एक अरथी को लिये-लिये ग्रामीण दफ्तर के गेट के अंदर ही चले आए। उन्होंने अरथी उतारकर बरामदे में रख दी। चौकीदार ने मना किया और उन्हें घाट की ओर जाने को कहा तो उन्होंने कहा, 'मरनेवाले का बीमा हुआ है। बीमा करनेवाले एजेंट ने बताया था कि मरने पर बीमा का पैसा मिलेगा। हम इसीलिए उसका शव लेकर आए हैं। साहब को बुलाइए। वह शव को देख लें और बीमे का रुपया दे दें।' चौकीदार ने उन्हें समझाने की भरपूर कोशिश की कि ऐसे नहीं होता। शव को लाने की जरूरत नहीं होती, मृत्यु प्रमाणपत्र से ही काम चल जाता है, वगैरह-वगैरह। किंतु वे नहीं माने। थक-हारकर चौकीदार ने अधिकारियों को सूचित किया।

अधिकारियों ने भी उन्हें समझाने-बुझाने की हर कोशिश की, मगर कोई लाभ नहीं हुआ। धीरे-धीरे बात खुली कि उनके पास दाह-संस्कार हेतु पैसे नहीं थे। वे तो इस भरोसे पर आए थे कि बीमा दफ्तर से पैसे मिल जाएँगे।

क्या करते! इस बीच दफ्तर खुलने का समय हो गया था। कर्मचारी आने लगे थे। सबने विचार करके आपस में चंदा इकट्ठा करके उन्हें दिया और घाट की ओर रवाना किया।

साअ

पोस्ट बॉक्स नं. ५९५, जी.पी.ओ., इंदौर-४५२००१
दूरभाष : ०९८२६४९६९७५

हिंद देश की भाषा हिंदी

● शिवनंदन कपूर

हिंद देश के प्रांत-प्रांत में जो जानी-पहचानी है।
कीर्ति राष्ट्रभाषा हिंदी की, इस जग में फैलानी है॥

रग-रग में अंगार जगाते थे, इससे चारण रण में,
आल्हा की गाथाएँ मुखरित अब भी कण-कण में,
प्राण फूँकती, गगन गुँजाती, गाँव-गाँव में, जन-मन में,
कभी न चूके छंद-चंद के, यह वीरों की बानी है।
कीर्ति देश-भाषा हिंदी की, इस जग में फैलानी है॥

गंगा जैसी पावन बानी, नानक और कबीर सुनाते,
अपनी निर्मलता से मन का दर्पन ही उज्ज्वल कर जाते,
'साधो! सहज समाधि भली' या जग में, सदा कर्मरत रहो।
संत कह गए इस बानी में, ऊँच-नीच नादानी है।
कीर्ति हमें ऐसी भाषा की, इस जग में फैलानी है॥

जगती में तन-मन शोधन कर, देता नव जीवन 'मानस' जल,
सबके 'राम तपस्वी राजा', निर्बल मन के शाश्वत संबल,
मर्यादा, आदर्श लिये हैं, 'तुलसी-दल' साहित्य-जगत् का,
करना यदि कल्याण देश का, नीति वही अपनानी है।
राम कीर्ति वाली रसना की फिर मिठास फैलानी है॥

ओढ़ कफनिया जब बलि-पथ पर निकला वीरों का टोला,
हिंदी का ही गीत नसों में, लहराया बनकर शोला।
(माँ रंग दे वसंती चोला, माँ! ए रंग दे वसंती चोला)
गोली खाते, हँसते-गाते फाँसी पर झूले जाते।
देशप्रेम की अमर पंक्तियाँ दोहराते बलिदानी हैं।
वही रवानी, वही जवानी, वही भावना लानी है।

हिंदी में ही चरित राम का, 'राजा' जी के मन भाया
नव सुधार हित दयानंद ने हिंदी को ही अपनाया,
कहने को सुभाष बंगाली, गांधीजी गुजराती हैं
हिंदी के प्रचारकों में रूसी, फ्रांसीसी जापानी हैं,
रंग जमे अब सकल विश्व में, ऐसी धाक जमानी है।
आज ठान लो अब आजीवन, हिंदी ही अपनानी है॥

हरि चरणों की दासी मीरा के गीतों की यह माला
तन्मयता के साथ समर्पण लिये गरल भी पी डाला,
रस की खान, तान वंशी की, सुनते थे रसखान सदा,
सूर तथा विद्यापति की रसधारा सतत बहानी है।
कीर्ति देश-भाषा हिंदी की, इस जग में फैलानी है॥

लिखते वही पढ़ा करते, ऐसी वैज्ञानिक भाषा है,
मुद्रण, कंप्यूटर तक छाई, अब तो नहीं निराशा है।
ज्ञान तथा विज्ञान समेटे, अब तो बढ़ती जाती है,
प्रण है अपना, अब घर-बाहर हिंदी ही अपनानी है।
कीर्ति शुभ्र भाषा हिंदी की, जगती में फैलानी है॥

इस सागर की विविध बोलियाँ बहती रसमय धाराएँ
अपना-अपना भाग लिये हैं एक वृक्ष की शाखाएँ,
तान भिन्न हों भले गान की, भाव एक ही रहता है,
पाव गंगा, यमुना, रेवा सबका इसमें पानी है।
कीर्ति देश-गौरव हिंदी की, हमको फैलानी है॥

हिंदी में ही कवि बशीर ने वेदों का अनुवाद किया
पूर्ण सिंह, हरिऔध, महीप ने हिंदी को आबाद किया,
कालेलकर कोचकर, वरेरकर ने इसको अपनाया
हिंदी गौरव-गर्व हमारा, हिंदी के अभिमानी हैं।
अब भी उससे दूर रहे तो कैसी नादानी है।
हम हिंदी से दूर रहेंगे, कैसे हिंदुस्तानी हैं?

जो भी भारत का वासी है, हिंदी उसकी भाषा है,
जाति, धर्म या संप्रदाय से परे, सभी की आशा है।
जीवित 'माँ' को ममी, पिता को 'डेड' बनाते क्यों भाई?
अपनी ही संस्कृति में रँगकर, अपनी भाषा लानी है।
कीर्ति देश-गौरव हिंदी की हमको ही फैलानी है॥

ज्ञान और विज्ञान सुमन की, मधु सुगंध होगी हिंदी,
तुम अपनाओ इसे गर्व से, विश्व-वंद्य होगी हिंदी।
उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम सब इससे जुड़ एक बने,
देश-प्रेम की पूर्ण प्रेरणा हिंदी ही अपनानी है।
कीर्ति देश-भाषा हिंदी की, इस जग में फैलानी है॥

कपूर क्लीनिक, भगत सिंह चौक,
खंडवा-४५०४०१

लोकगीतों में पति-पत्नी प्रेम

● अरविंद मिश्र

लोकगीतों की परिधि अत्यंत व्यापक है। लोकगीतों में जन-कलाकारों की आत्मा बोलती है। अनादिकाल से लोक-गीतों में जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति होती आई है। मानव-मन के आवेग-संवेगों का जैसा स्वाभाविक चित्रण लोकगीतों में दिखाई पड़ता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। लोकगीतों में नारी-समाज की सुकोमल भावनाओं के जितने नैसर्गिक चित्र प्राप्त होते हैं, उतने पुरुष-समाज के नहीं। नारी का कंठ सरस्वती का निवास माना गया है, जहाँ से लोकगीत प्रकट होकर जन-समाज को मुखरित करते हैं।

लोकगीत पति-पत्नी के संयोग-वियोगमय परिस्थितियों के चित्रण से सुरभित हैं। लोकगीतों में पति-पत्नी को उच्चतम स्थान प्रदान किया गया है। सभी लोकगीतों में पति 'राजा' है और पत्नी 'रानी'।

किसी लड़की का ब्याह हो चुका है, पर गवना नहीं गया है। मायके में दूल्हे से अकस्मात् उसकी भेंट हो गई। फिर क्या होता है, देखिए—

फुलवा बिनन गई धेरिया लाड़िलरी,
हाथे गुलउवा मुख पान।
बीच मा मिलिगे दूल्हे दुलरुआ,
धरे बहियाँ झकझोर।

हाथ पकड़ने पर लड़की कुछ घबराती है। क्यों न घबराए? कोई देख ले तो! लड़की अपने को छुड़ाना चाहती है। इसके लिए वह दूल्हे से प्रार्थना करती है, पर उसकी बात दूल्हा नहीं सुनता। इस पर उसे धमकी देती हुई वह कहती है कि स्वामीजी, यदि आप मेरी बाँह न छोड़ेंगे तो मैं गोहार लगाऊँगी—

छोड़ो-छोड़ो मोरे बारे की बहियाँ,
मैं हौं अलप सुकुमार।
टूटत हैं मोरी कंचन चुरियाँ,
मुरकत है मोरी बाँह।
छड़िहौं न स्वामी मोरे बारे की बहियाँ,
मरिहौं मैं नगरी गुहार।
भइया मोरे दौरें, भतिजवा मोरे दौरें,
दौरें नगरिया के लोग।

स्त्री-प्रेम पर दूल्हा सभी कुछ न्योछावर करने को प्रस्तुत है। दूल्हे को तो अपनी प्रियतमा ही चाहिए।

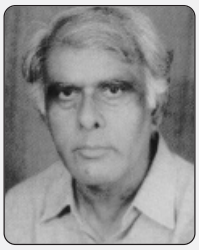

सुपरिचित रचनाकार एवं चित्रकार। उ.प्र. सरकार के सूचना एवं जन-संपर्क विभाग में सहायक निदेशक रहे। सेवा-निवृत्ति के बाद निरंतर लेखन, दो दर्जन से अधिक मौलिक ग्रंथों का संपादन एवं पत्र-पत्रिकाओं में सतत रचनाएँ प्रकाशित।

घोड़वा छड़े हैं, बछेड़वा छड़े हैं,
छिन ले हैं ढाल-तलवार।
घोड़वा छड़वे, बछेड़वा छड़वे,
छोड़ लेवे ढाल-तलवार।
तुम्हारी ऐसी धनिया न छड़वे,
जिन संग रचा है बिआह।

नववधू को विदा करानेवाले आए हैं। सभी आगंतुक वृक्ष के तले रुके हैं। दुलहिन को ले जाने के लिए एक-एक करके पहुँचते हैं, किंतु दुलहिन जाने की सहमति नहीं प्रकट करती। जब दूल्हे का आगमन हुआ, तो उसने उसके पास जाना स्वीकार कर लिया। पति के उत्कृष्ट प्रेम को लेकर गाया गया यह लोकगीत आज भी पतियों को प्रेरणा देता है—

अकती खेलन कैसे जाउँरी,
बर तरैं मेले लिबउआ।
पैले लिबउआ मोरे नउआ री आए,
नउआ के सँगै नई जाउँरी॥
बर तरैं मेले लिबउआ।

दूजे लिबउआ मोरे बमना री आए,
बमना के सँगै नई जाउँरी।
बर तरैं मेले लिबउआ।

तीजे लिबउआ मोरे ससुराजी आए,
ससुरा के सँगै नई जाउँरी।
बर तरैं मेले लिबउआ।

चौथे लिबउआ मोरे देउराजी आए,
देउरा के सँगै नई जाउँरी।

बर तरैं मेले लिबउआ॥
पाँचयँ लिवउआ मोरे जेठा री आए,
जेठा के सँगै नईं जाउँरी।
बर तरैं मेले लिबउआ॥
छटये लिबउआ मोरे राजा जू आए,
राजा के सँगै भली जाउँरी।
बर तैरैं मेले लिबउआ॥

पति विदेश में है। उसके बिना पत्नी का सारा संसार सूना है। आकाश में उमड़ती-घुमड़ती काली घटाओं ने पत्नी के वियोग को और बढ़ा दिया है—

अरे-अरे कारी बदरिया,
तुहई मोरी बादरि।
बदरी, जाहि बरसहु वहि देस,
जहाँ पिय छाए॥

कोठरी पुरानी हो गई है, जिसके छिद्रों से पानी चूने लगा है। पलंग भी पुराना हो गया है, जिसका चौखट चटखने लगा है। इतना ही नहीं, विरहिणी पत्नी का शरीर भी जर्जर और पीला हो गया है। पत्नी अपने पति की प्रतीक्षा में है—

रावटी पुराणी भँवरजी हो गई जी।
हो जी कोई टपकण लाग्या जूण।
इब घर आवो गोरी का सायबा जे।
पिलंग पुराणा भँवरजी हो गया जे।
हाँ जी कोई तड़कण लाग्या साल।
इब घर आवो सुंदरा रा सायबा जे॥
झुर-झुर मारू जी मैं पिंजर हो गई जे।
हाँ जी कोई बिदरंग हो गयो वेस।
इब घर आज्या अँधेरे घर रा चानणा जे॥

कोई पति अपनी पत्नी को छोड़कर गंगा-स्नान के लिए जाना चाहता है। पत्नी इस विछोह को सहन करने में असमर्थ है। पति को रोकने के लिए उसने बड़ी चतुराई से काम लिया—

पनवा कतरि-कतरि भाजी बनावउ लौंगा दिहौ धौंगार।
अच्छे-अच्छे जेवना बनाओ मोरी कामिनि हमहूँ जाब गंगा नहाय॥
केके तू सौंपे अनघन सोनवा केके तू।
केके तू सौंपे हमें अस धनिया तू चले गंगा नहाय।
बाबा के सौंपेउँ अनघन सोनवा मइया के नौरंग बाग।
माया के सौंपेउँ तोहैं अस धनिया हम चले गंगा नहाय॥
घरही में कुँइयाँ खोदावो मोरे सइयाँ घर ही में गंगा नहाउ।
माता-पिता कै धोतिया पखारउ उन्हीं हैं गंगा तोहारि॥

पैसा कमाने के लिए पति जहाज पर चढ़कर विदेश चला गया है। पत्नी विरहाग्नि में जल रही है। पति-प्रेम विषयक यह लोकगीत सुप्रसिद्ध है—

पुरुब से आई रेलिया, पछिउँ से जहजिया,
पिय के लादि लेई गइ हो।
लेरिया होई गइ मोर सवतिया,
पिय के लादि लेई गइ हो।
रेलिया न बैरी-जहजिया न बैरी,
उहै पइसवा बैरी हो।
भुखिया न लागै, पिअसिया न लागै,
हमके मोहिया लागइ हो।
तोहरी देखिके सुरतिया,
हमके मोहिया लागइ हो।
सेर भर गोहूँवा बरिस दिन खइबै,
पिय के जाइ न देबै हो।
रखबै अँखिया हजुरवाँ,
पिय के जाइ न देबे हो।

एक लोकगीत में पत्नी का पतिव्रत अपनी चरम सीमा पर है—

मोरे पिछवारे लौंग का बिरवा लौंग चुअै आधी रात।
लौंग बीनि-बीनि ढेर लगावों लादत है बनिजार॥
लादि चले बनिजार के बेटा की लादि चले पिया मोर।
हमहूँ को पलकी सजावो रे पिआरे मोरा-तोरा जुरा है स्नेह॥
भूखेन मरिहौ-पिआसेन मरिहौ पान बिना होंठ कुम्हिलाय।
कुस की साथरी डासन पैहौ अंग छुलिय छुलि जायँ॥
भूख मैं सहिहौं-पिआस मैं सहिहौं पान डारौं बिसराज।
तुम्हरे साथ पिआ जोगिनि होइहौं ना संग माई न बाप॥

जीवन की धारा को पति-पत्नी के प्रेम के संबल द्वारा धर्माचार की नाव पर बैठकर कर्णधार पति के सहारे पार करने की कितनी उदात्त, शुभ्र और भोली अभिलाषा है—

धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु।
मोरा पिया उतरइँगे पार॥ धीरे बहु॥
काहेन को तोरी नइया रे,
काहे की करुवारि।
के तोरा नइया खेवइया रे,
के धन उतरइँ पार॥ धीरे बहु॥
घर मैं कइ मोरी नइया रे,
सत कइ लगी करुवारि।
सैयाँ मोरा नइया खेवइया रे,
हम धन उतरब पार॥ धीरे बहु॥

पति-पत्नी जीवन-सृष्टि के अनिवार्य अंग हैं। पति-पत्नी के संबंधों की पृष्ठभूमि में ही मानव-जीवन के विविध आयाम विकसित हुए हैं। लोकगीत पति-पत्नी की आंतर-अनुभूतियों की सजीव अभिव्यक्ति हैं।

सा अ

सरोजिनी-निवास, एम-१/६३,
सेक्टर-बी, अलीगंज, लखनऊ-२२६०२४
दूरभाष : ९३३५५५७८५२

अथ श्रीगोवर्धन तीर्थ-कथा

● प्रेमपाल शर्मा

ते ईस जनवरी स्वातंत्र्य समर के अद्‌भुत योद्धा नेताजी सुभाष चंद्र बोस की जन्मजयंती के साथ-साथ एक और विभूति, मेरे मित्र आनंद शर्मा की भी जन्मतिथि है। भाईजी ने नियम सा बना लिया है कि अपना जन्मदिन किसी तीर्थस्थल पर ही मनाते हैं। सो इस बार जन्मदिन वृंदावन धाम में मनाना तय हुआ। शीघ्र ही पाँच मित्रों का एक दल तैयार हो गया—मेरे मित्र आनंद शर्मा, इनके समधीजी बनवारीलाल शर्मा, आनंदजी के शिष्यवत् अमितजी और भाई जीत शर्मा। भाई बनवारीलालजी ने अपनी गाड़ी तैयार कर ली और इस पूरी यात्रा में वे ही हमारे सारथि बने, हम सबके तारनहार! सर्दी का मौसम होने के कारण घर से निकलते-निकलते ही नौ बज गए। बल्लभगढ़ से आगे एक ढाबे पर भोजन किया, फिर अपनी यात्रा पर आगे बढ़े। हमारी गाड़ी मथुरा राजमार्ग को छोड़ दाईं ओर नंदगाँव-बरसाना मार्ग पर मुड़ गई। लगभग नौ किलोमीटर चलकर हम कोकिला वन आ पहुँचे। इस सड़क के दाईं ओर लगभग ढाई कि.मी. की दूरी पर शनिदेव का प्राचीन मंदिर है। इस पूरे इलाके में विलायती बबूल बहुतायत में हैं।

इस शनि मंदिर के बारे में बताया जाता है कि द्वापर युग में जब श्रीहरि ने ब्रज में नंदबाबा-यशोदा मैया के घर कृष्ण के रूप में जन्म लिया तो स्वर्ग के सारे देवता किसी-न-किसी रूप में उनके बालरूप के दर्शन करने की इच्छा से गोकुल में आए। शनिदेव भी माता यशोदा के द्वारे हरि-दर्शन की इच्छा लेकर पहुँचे, तो मैया यशोदा ने उनके भयंकर रूप को देखकर अपने लाला के दर्शन कराने से साफ मना कर दिया। अब मैया ने मना कर दिया तो बस कर दिया। शनिदेव चाहे किसी को भी क्षण भर में मटियामेट करने की ताकत रखते हों, पर मैया यशोदा के आगे उनकी क्या बिसात! शनिदेव तो छोड़ो, देवादिदेव भोलेशंकर को भी माता यशोदा ने तीन दिन प्रतीक्षा कराने के बाद ही कान्हा के दर्शन कराए थे, वह भी तब, जब अपने भक्त को विवश देखकर लाला जार-जार रोने लगा। लेकिन शनिदेव की विवशता और तीव्र इच्छा देखकर कान्हा ने चुपचाप इशारा किया कि आप कोकिला वन में मेरी प्रतीक्षा करो, मैं वहीं आपको दर्शन दूँगा। भगवान् कृष्ण ने इस स्थान पर शनिदेव को दर्शन देकर उनकी मनोकामना पूरी की थी। तभी से शनिदेव यहाँ विराजमान हैं और यहाँ आनेवाले भक्तों की मनोकामना पूरी करते हैं।

गाड़ी बाईं ओर एक खुली जगह में खड़ी कर, जूता-चप्पल गाड़ी में ही रख छोड़े। शनि मंदिर के प्रांगण में प्रवेश कर यहाँ की धूली को मस्तक पर लगाया। शनि मंदिर विशाल और भव्य है। मंदिर-परिसर में प्रसाद की बहुत सी दुकानें सजी हैं। सजी क्या हैं, दुकानदार सब्जी बाजार की तरह आवाज लगाकर, मनुहार करके दर्शनार्थियों को अपनी दुकान की ओर बुला रहे हैं। एक दुकान के आगे हाथ धोकर प्रसाद की थैली ले ली गई। पचास रुपए की थैली में दो सौ मिली. तेल की एक बोतल, एक टीन का व एक मिट्‌टी का दीवा, उड़द, काले तिल, काला कपड़ा, धूपबत्ती, अगरबत्ती, माचिस तथा चार-पाँच छोटी-छोटी कीलें हैं। मंदिर के प्रवेश-द्वार से अंदर घुसे तो देखा कि मंदिर की दीवार के समानांतर काली टायल लगी लंबी बैंच जैसी बनी हुई हैं। इन्हीं के पीछे खड़े पंडा सब चीजें काले कपड़े में रखवाकर, तेल का दीया जलाकर पूजा कराते हैं। इन पंडों में बाल, वृद्ध, युवा, तरुण सभी हैं। देखने से लगता है, ये पुस्तैनी पंडा नहीं हैं, न ही सब ब्राह्मण हैं, मात्र कमाई के लिए पंडा बने हैं, इन्हें मंत्रों का कोई ज्ञान भी नहीं है। खैर, तीर्थ-पुरोहित जो ठहरे, जैसी भी हुई, पूजा कराकर हम आगे बढ़ गए। अब अगरबत्ती-धूपबत्ती के पैकेट, माचिस और तेल की बोतल हमारे साथ है। मुख्य मंदिर में शनिदेव के पार्श्व में सैकड़ों अगर-धूपबत्ती आदि जल रही हैं, यहीं पर हमने अपनी-अपनी धूप और अगरबत्तियाँ जलाकर शनिदेव को समर्पित कर दीं—धूपं-दीपं-सुगन्धिं समर्पयामि। फिर अन्य भक्तों की तरह हमने भी इत्मीनान से शिवलिंग रूपाकार शनिदेव का तेल से अभिषेक कर दंडवत् प्रणाम किया। इनके दाईं ओर बने छोटे मंदिरों में भी दंडवत् किया। यहाँ पर बड़ी संख्या में भक्त लोग आते हैं, यह सिद्ध मंदिर है। इसकी ख्याति और मान्यता दूर-दूर तक फैली हुई है। मंदिर का फर्श तेल से चिपचिपा रहा है।

सुपरिचित लेखक-संपादक। बुलंदशहर (उ.प्र.) के मीरपुर-जरारा गाँव में जन्म। देसी चिकित्सा लेखन में विशेष दक्षता। 'जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियाँ', 'स्वास्थ्य के रखवाले, शाक-सब्जी-मसाले', 'सचित्र जीवनोपयोगी पेड़-पौधे', 'घर का डॉक्टर', 'स्वस्थ कैसे रहें?' तथा 'स्वदेशी चिकित्सा सार' कृतियाँ चर्चित। पत्र-पत्रिकाओं में विविध लेख प्रकाशित। श्रीनाथद्वारा (राज.) की सुप्रसिद्ध संस्था 'साहित्य मंडल' द्वारा 'संपादक-रत्न' की मानद उपाधि। संप्रति 'सवेरा न्यूज' (साप्ताहिक) का संपादन एवं आयुर्वेद पर स्वतंत्र लेखन।

शनि मंदिर के सामने के आधे भाग में नवग्रह मंदिर, वंशीवट, वनखंडी बाबा का मंदिर है। बिल्कुल उत्तर की दिशा में जनाना-मरदाना दो तालाब हैं, जिनमें तीर्थयात्री स्नान कर रहे हैं, कहा जाता है कि इसमें स्नान करने से खाज-खुजली आदि मिट जाती है। स्नान के चलते यहाँ एक बुरी प्रथा प्रचलित है कि स्नान के भीगे कपड़े यहीं छोड़ दिए जाते हैं। कुछ लोग इन कपड़ों को यहाँ चारों ओर खड़े पेड़ों पर ही टाँग जाते हैं। यह सब बहुत बुरा और अशोभनीय लगता है। इस प्रथा को बदलना चाहिए। इन सबके दर्शन कर अब हम अपनी गाड़ी की ओर बढ़ रहे हैं, एक-दो जगह भक्तों द्वारा लंगर-भंडारे चलाए जा रहे हैं। सैकड़ों जूठे पत्तल-दोने इधर-उधर उड़ रहे हैं। इतने पवित्र स्थल पर इतनी गंदगी, यह बड़ी शर्मिंदगी की बात है। तीर्थस्थल पर अन्नसत्र चलाना अच्छी बात है, मगर इससे होनेवाली गंदगी का भी निपटारा साथ-साथ करें तो उससे मिलनेवाला पुण्य बढ़ेगा ही। जीतभाई हर तीर्थ के बारे में गहराई से जानकारी रखते हैं, उन्होंने केवल तेल की बोतल खरीदकर शनिदेव का अभिषेक किया, इस तरह वे फालतू की अंट-शंट से बच गए।

यहाँ से चलकर अब हमारा वाहन नंदगाँव आ पहुँचा है, जो मात्र तीन कि.मी. की दूरी पर ही है। वाहन सड़क के बाईं ओर खड़ा कर दिया। ठंडक बढ़ गई है। मुख्य सड़क से रास्ता मंदिर की ओर जाता है, जो आगे-आगे सँकरा होता गया है। इक्का-दुक्का चाय-मिठाई की दुकानें हैं, नहीं तो आज भी यह गाँव ही है। पैदल चलते हुए नंदबाबा के मंदिर तक आ पहुँचे हैं। यह काफी ऊँचाई पर है। इस मंदिर में नंदबाबा, माता यशोदा, बलदाऊ, श्रीकृष्ण, राधिका आदि की मूर्तियाँ विराजमान हैं। तीर्थ-पुरोहित यात्रियों को बैठाकर यहाँ की कथा सुना रहे हैं कि जब गोकुल में मथुरा के राजा कंस के अत्याचार बहुत बढ़ गए और वह बालकृष्ण को मारने के लिए नाना रूपधारी राक्षसों को वहाँ भेजने लगा, तब नंदबाबा कान्हा की प्राणरक्षा के लिए यहाँ आकर बस गए। इसी नंदभवन में कान्हा ने परमसुखकारी बाललीलाएँ कीं। यहीं पर रहकर कान्हा ने गौएँ चराईं, गोप-ग्वालों के साथ नाना लीलाएँ कीं। यह पूरा क्षेत्र कान्हा की पद-रज से पवित्र होकर पावन तीर्थ बन गया है। यह नंदभवन तो काफी विशाल है, लेकिन तीर्थयात्रियों को अधिक संख्या में आकर्षित करने में असमर्थ है। पेयजल तथा जन-सुविधाओं का यहाँ सर्वथा अभाव है। पंजाब से आया एक यात्री परिवार यहाँ गुरुद्वारे जैसी सुविधा न पाकर दु:खी है। दूर-दूर से आनेवाले यात्रियों के लिए कुछ तो सुविधा होनी चाहिए। संभवत: मंदिर समिति इस जरूरत को समझेगी।

दर्शन के बाद सड़क किनारे एक चाय की दुकान पर हम सबने चाय पी। फिर यहाँ से थोड़ी दूर पर इस सड़क के किनारे स्थित कृपालुजी महाराज की एक और विरासत 'रंगीली महल' देखने आ पहुँचे। यह मंदिर बरसाने की रंग-रँगीली और कान्हा की प्राणाधार श्रीराधाजी को समर्पित है। चप्पल-जूते उतारकर मंदिर में प्रवेश किया। श्रीराधा-कृष्ण की युगल छवि देखकर ठगे से खड़े रह गए, साज-सज्जा और शृंगार अद्‌भुत है। मंदिर काफी लंबा-चौड़ा है, यहाँ ठहरने की व्यवस्था भी है। जगद्‌गुरु कृपालु परिषद् द्वारा यहाँ एक और भव्य मंदिर बनवाया जा रहा है। मंदिर के प्रांगण में तराशे गए पेड़-पौधे तथा फुलवारी बड़ी मनोहारी है। यहाँ एक कमरेनुमा सभाभवन में आरती हो रही है, सो हम इसमें शामिल हुए। यहाँ के भक्तिमय वातावरण में मन सुखद अनुभूति से भर गया।

जब तक हमारा वाहन बरसाने की ओर दौड़ रहा है, तब तक हम आपको बरसाने के बारे में बताते हैं। बरसाना यहाँ से पाँच-छह कि.मी. तथा मथुरा से ३५ मील दूर है। पहले इसे बृहत्सानु, फिर ब्रह्मसानु तथा वृषभानुपुर कहा जाता था। यह श्रीराधाजी की पितृभूमि है, जो दो सौ फुट ऊँचे पहाड़ी ढलान पर अवस्थित है। इस पहाड़ी को साक्षात् ब्रह्माजी का स्वरूप माना जाता है। ठीक उसी तरह जैसे नंदगाँव की पहाड़ी को महेश्वर का तथा गिरिराजजी को विष्णु का स्वरूप माना गया है। इस पहाड़ के चारों शिखर ब्रह्मा के चार मुख माने गए हैं। इन्हीं शिखरों में से एक पर 'मोरकुटी' है, जहाँ पर कृष्णकन्हाई श्रीराधाजी को रिझाने के लिए मोर बनकर नाचे थे। दूसरे शिखर पर 'मानगढ़' है, जहाँ कन्हैया ने किशोरीजी को मनाया था। तीसरे शिखर पर 'विलासगढ़ है, जो श्रीजी का विलासगृह है और चौथा शिखर 'दानगढ़ है, जहाँ प्रिया एवं प्रियतम की दानलीला संपन्न हुई तथा कान्हा ने श्रीराधाजी और उनकी सखियों का माखन लूटकर खाया था।

बरसाने के दूसरी ओर एक पहाड़ी और है, इन दोनों पहाड़ों की खोह में बरसाना गाँव बसा है। इस सँकरी जगह को 'साँकरी खोर' कहा जाता है। यहीं पर किशोरीजी के जन्मदिन भादों की अष्टमी यानी राधाष्टमी को विशाल मेला लगता है तथा फागुन शुक्ल अष्टमी, नवमी एवं दशमी को होली-लीला संपन्न होती है। पहाड़ी पर कई मंदिर हैं, जिनमें मुख्य मंदिर सेठ हरगुलालजी द्वारा पुनर्निर्मित श्रीलाड़िलीजी का प्राचीन मंदिर है। सीढ़ियों के रास्ते में वृषभानुजी का मंदिर भी दर्शनीय है। यहीं पर 'भानोखर' यानी भानुपुष्कर नामक पक्का तालाब है, जो किशोरीजी के पिता वृषभानु द्वारा निर्मित बताया जाता है। इसके अलावा दो सरोवर और हैं, जिनमें एक का नाम 'मुक्ताकुंड' है तथा दूसरे को 'पीरी पोखर' यानी प्रियाकुंड कहते हैं। बताया जाता है कि यहाँ विवाह के बाद किशोरीजी ने अपने पीले हाथ धोए थे, इसलिए इसका नाम 'पीली पोखर' पड़ गया।

बातों-ही-बातों में बरसाने पहुँच गए। सड़क से ही मंदिर दिखाई पड़ रहा है, क्योंकि यह काफी ऊँचाई पर है। पैदल के रास्ते में मंदिर तक २३५ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं, तो दूसरे रास्ते से गाड़ियाँ ऊपर तक चली जाती हैं। लेकिन यह रास्ता थोड़ा आगे से है। बरसाना गाँव के तंग रास्ते पर जब आमने-सामने से गाड़ियाँ आ जाती हैं, तो बड़ी दिक्कत पेश आती है। तीर्थयात्रियों की चहल-पहल यहाँ हमेशा बनी रहती है। होली का पूरा महीना रंगों से सराबोर रहता है। बरसाने की लट्‌ठमार होली तो जगप्रसिद्ध है। गाड़ी ऊपर ले जाने के लिए गाँव में टोल टैक्स लगता है दस रुपया और ऊपर पार्किंग में खड़ी करने के तीस रुपए। ऊपर जाने का रास्ता सँकरा है, पर आने-जाने की लाजबाव व्यवस्था बना रखी है। मोड़ पर खड़ा गार्ड तभी ऊपर जाने का संकेत करता है, जब ऊपर से किसी वाहन के नीचे न आने का संकेत उसे मिल जाता है।

ऊपर मंदिर में स्थित पार्किंग की दीवार की खिड़की से गार्ड आने-जाने का संकेत करता है, जिसे नीचेवाला गार्ड समझ जाता है। कमाल का है न यह देसी वॉकी-टॉकी!

खैर, हमारी गाड़ी भी सर्पाकार मोड़ लेती हुई पार्किंग स्थल पर आ लगी। यहाँ पर भरतपुर के राजा द्वारा बनवाया गया विशाल मंदिर है, इसी के परिसर में पार्किंग है। पुराने जमाने का विशाल मजबूत फाटक मंदिर के प्रवेशद्वार पर शान से खड़ा है। यहाँ देखने को ज्यादा कुछ नहीं है, सो यहाँ दंडवत् प्रणाम कर लाड़िलीजी का मंदिर देखने चल पड़े। रास्ते के दोनों ओर भिक्षुक कतारबद्ध बैठे हैं—कुछ शांत कुछ वाचाल! इनमें महिला भिक्षुकों की संख्या ज्यादा है। वृषभानुकुमारी श्रीराधाजी का यह मंदिर भव्य और विशाल है। मंदिर में प्रवेश करते ही अजीब सुकून महसूस हो रहा है। जीतभाई लघुशंका करने गए थे तो हम दोनों पीछे छूट गए, सो पहले-पहल खाली हाथ ही दर्शन कर लिए, क्योंकि ऊपरवाले दरवाजे पर कुछ नहीं मिलता है। फिर हम दोनों नीचे जाकर सीढ़ियोंवाले द्वार से दो-दो पुष्पहार लेकर आए—एक अपने कन्हैया के लिए और एक कान्हा की प्राणाधार श्रीराधाजी के लिए। पुजारीजी ने पुष्पहार श्रीराधा-कृष्ण के चरणों में अर्पित कर दिए और फिर मुट्ठी भर-भर मिसरी का प्रसाद दिया। दर्शनार्थियों की भीड़ बराबर आ-जा रही है, पंक्ति टूटती नहीं है, सो हम लोग वहाँ से हट गए और मंडप में मूर्तियों के ठीक सामने दंडवत् प्रणाम किया। यहाँ का वातावरण बड़ा अलौकिक तथा सुकून देनेवाला है। आखिर संसार की स्वामिनी के यहाँ शोक कैसा!

श्रीलाड़िलीजी मंदिर (बरसाना)

मित्र आनंद शर्मा, भाई बनवारीलालजी तथा अमित भाई हमसे पहले ही पुष्पहार भेंट कर दर्शन कर चुके हैं, बस हमारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। लाड़िलीजी के सामने के विशाल सभामंडप में अनेकों तीर्थयात्री और भक्त बैठे अपने-अपने तरीके से श्रीराधाजी का गुणगान, चिंतन-ध्यान कर रहे हैं। लाड़िलीजी के धाम में आज भी वैभव चहुँओर बिखरा पड़ा है। 'राधारानी की जय, कृष्ण कन्हैयालाल की जय' बोलते हुए हम जिस रास्ते से आए थे, उसी रास्ते से लौटकर पार्किंग स्थल पर आ गए। यहाँ चाय की दुकान से चाय और पकौड़े का नाश्ता किया और फिर तरोताजा हो उल्लसित मन से गोवर्धन की ओर निकल पड़े।

सूर्यास्त हो रहा है, ताँबई बड़ा थाल क्षितिज के पीछे लुढ़क गया है। हल्की धुंध पड़ रही है, खुला इलाका है, बाहर अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। गाड़ी के अंदर का वातावरण बड़ा सत्संगी हो गया है, सब लोग मग्नमन भजन का आनंद ले रहे हैं। जब तक हमारी गाड़ी गोवर्धन की ओर दौड़ रही है, तब तक हम आपको यहाँ के बारे में भी कुछ बताए देते हैं। यहाँ से मतलब बरसाने से गोवर्धन १४ मील तथा मथुरा से १६ मील दूर है। गोवर्धन एक छोटी पहाड़ी के रूप में है, जिसकी लंबाई लगभग ४ मील है। इस पहाड़ की ऊँचाई बहुत थोड़ी है, कहीं-कहीं तो अब जमीन के बराबर रह गई है। गिरिराजजी की परिक्रमा हमेशा होती रहती है, जिसकी कुल लंबाई १४ मील है। गोवर्धन बिल्कुल बसावट के बीच में है। गिरिराजजी के उत्तर-पूरब में जतीपुरा गाँव फैला है, तो दक्षिण-पूरब में आन्यौर गाँव।

लगभग साढ़े सात बज रहे हैं और हम गोवर्धन आ पहुँचे हैं। पहले यहाँ ठहरने की व्यवस्था करनी है, सो दानघाटी से आगे, चौक से बाईं ओर स्थित श्री गौड़ीय वेदांत समिति ट्रस्ट के श्री गिरिधारी गौड़ीय मठ अतिथि सदन में कमरा मिल गया। गाड़ी अंदर मंदिर प्रांगण में खड़ी कर दी गई। बड़ा शांतिमय वातावरण है यहाँ! लगभग साढ़े आठ बजे यहीं के भोजनालय में भोजन किया। फिर गिरिराजजी की परिक्रमा के लिए निकले, पर पहले दानघाटी मंदिर में दर्शन करने लगे। इसे दानघाटी मुखारविंद गोवर्धन मंदिर कहते हैं। कहा जाता है कि गोपियों से यहीं पर नटखट कान्हा ने दधि का दान लिया था, सो यहाँ दूध चढ़ाया जाता है। हम देख रहे हैं कि यहाँ सूखे नीम-तने की जड़ में बने मंदिर में दूध अरोगाया जा रहा है। मंदिर खुलने-बंद होने का यहाँ कोई समय नियत नहीं है। पंडा और दुकानदार रात भर दुकानें खोले बैठे रहते हैं। पंडों को इतनी फुरसत नहीं कि भगवान् के ऊपर से दूध के खाली गिलास-दोने भी हटा सकें। खाली दोनों और गिलासों से भगवान् अँटे पड़े हैं। दूध के निकलने की समुचित व्यवस्था न होने के कारण भगवान् को चढ़ाया गया दूध भक्तों के पैरों को ही पावन कर रहा है। भक्त भी ऐसे कि कहीं भी दूध के भरे गिलास रखकर इतराते हुए चलते बनते हैं। हाय! गौओं का ताजा दूध पीने वाले कान्हा को सिंथेटिक दूध पिला रहे हैं। कैसी शर्म की बात है! लेकिन एक बात सच्ची है कि ये सब कान्हा के प्रेम के वशीभूत हो यहाँ तक चलकर आए हैं।

दर्शन कर हम भी परिक्रमा-पथ पर आ गए और दंडवत् कर परिक्रमा शुरू कर दी। नौ बज रहे हैं, उधर गोपालजी का फोन आ रहा है कि कहाँ तक पहुँचे, वे मुखारविंद पर हमारा इंतजार कर रहे हैं। गोपाल कौशिकजी आनंद शर्माजी के सालेसाहब के सालेसाहब हैं। यहीं पर उनका पुश्तैनी निवास है। नोएडा में एक कंपनी में जॉब करते हैं। शनिवार-रविवार के अवकाश में अपना तीर्थ-पुरोहित का कार्य भी कर लेते हैं। सो जल्दी-जल्दी पग बढ़ाते हुए हम आगे बढ़े। सैकड़ों स्त्री-पुरुष गिरिराजजी की परिक्रमा कर रहे हैं। परिक्रमा के दो मार्ग हैं—एक बाहरी मार्ग, दूसरा अंदर का। बाहरी मार्ग पर प्रकाश की व्यवस्था है तथा इस पर पर्याप्त आवागमन भी रहता है, पर अंदर का परिक्रमा मार्ग गिरिराज पर्वत के साथ-साथ चलता है, यहाँ प्रकाश की व्यवस्था नहीं है, सो यहाँ रात्रि को परिक्रमा नहीं लगती है। हम लोग बाहर वाले मार्ग से ही आगे बढ़ रहे हैं। देख रहे हैं कि परिक्रमा-पथ पर यात्रियों के एक दल के यात्री ने अपनी पीठ पर स्पीकर बाँध रखा है और ऊँची आवाज में भजन

सुनते हुए दल पूरी मस्ती में तेज गति से आगे बढ़ा चला जा रहा है। कुछ यात्री हमें पीछे छोड़ जाते हैं तो कुछ को हम पीछे छोड़ देते हैं। इस परिक्रमा मार्ग पर मंगतों की भरमार है। हृदय-विदारक नाना रूप बनाए, तरह-तरह की दर्द भरी आवाजें निकालकर भीख माँग रहे हैं, वो भी अकेले नहीं, फैमिली के साथ। अधिकतर पेशेवर भिखमंगे हैं, जरूरतमंद शायद ही कोई हो!

अहा! 'कृष्ण कुंड' पर आ गए। परिक्रमा-पथ पर जगह-जगह गायक अपनी मंडली के साथ अलाव जलाकर कड़ाके की ठंड में अपने इष्ट को अपनी कला प्रस्तुत कर भजन, कथादि सुना रहे हैं। इनसे परिक्रमा पथ चैतन्य बना हुआ है। अब 'संकर्षण कुंड' पर आ गए हैं। यह कुंड श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलदाऊ को समर्पित है, पास में ही दाऊजी का मंदिर है। और भी तीर्थ-स्थल यहाँ हो सकते हैं, अँधेरे में दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। अब यहाँ से राजस्थान की सीमा में प्रवेश कर रहे हैं और 'पूछरी का लौठा' पर आ लगे। इस स्थान को परिक्रमा मार्ग का मध्य भाग कहा जाता है। लौठा के बारे में बताया जाता है कि जब भगवान् श्रीनाथ गोवर्धन से नाथद्वारा के लिए प्रस्थान करने लगे तो पूछरी का उनका एक भक्त प्रभु के दर्शनों की प्रतीक्षा में अपनी लाठी टेककर यहीं पर बैठ गया, जो आज तक उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। आज भी इसे उनके लौटने का इंतजार है। यहाँ इस भक्त का छोटा सा मंदिर है। हम लोगों ने यहाँ रुककर दंडवत् किया, फिर आगे के लिए तेज-तेज कदम बढ़ाए। देख रहे हैं कि कड़क ठंडी में लोग नंगे पैर चल रहे हैं। हमारे मित्र आनंद शर्मा नंगे पैर हैं। कभी हम लोगों से काफी आगे निकल जाते हैं, कहीं मत्था टेकते हुए या भिक्षुकों को सिक्के देने के चक्कर में हम से पीछे रह जाते हैं। खूब जोरों की ओस पड़ रही है, धुंध भी। पर हमारे शरीर में गरमी आ गई है। बातों-बातों में 'सुरभि कुंड' पर आ गए हैं। जतीपुरा की ओर जाते हुए यह पूछरी के बाद पड़ता है। कहा जाता है कि जब भगवान् कृष्ण अहंकारी इंद्र पर रुष्ट हो गए और उसकी कोई अनुनय-विनय नहीं सुनी तो ब्रह्मा ने इंद्र की मदद के लिए स्वर्ग से गौमाता सुरभि को यहाँ भेजा, सुरभि की विनती पर श्रीकृष्ण ने इंद्र को माफ कर दिया और फिर सुरभि भी वृंदावन में वास करने लगी। तभी से इसका नाम भी 'सुरभि कुंड' पड़ गया। यहाँ पर परमानंददासजी का द्वार हुआ करता था तथा इसके ठीक उधर गिरिराज पर्वत पर 'धुकादाऊजी' पवित्र स्थल है। बताया जाता है कि भगवान् कृष्ण जब गोपियों के साथ रास रचाते थे तो दाऊ को रास देखने की इच्छा हुई, सो वे गिरिराज पर्वत की कंदरा में छिपकर (धुककर) बैठ गए और फिर यहीं से रास देखा। अत: इस स्थान का नाम 'धुका दाऊ' पड़ गया। अब यहाँ एक छोटा सा मंदिर भी है। कुल मिलाकर यहाँ १४ कंदराएँ हुआ करती थीं, पर अब उनका कहीं अता-पता नहीं है। यहीं पर भगवान् कृष्ण गऊओं को चराते हुए अपने गोप सखाओं के साथ बैठते और नाना खेल खेला करते थे।

यहाँ से थोड़ा आगे बढ़े ही थे कि देखा, सामने उस ओर दूध की कई दुकानें लगी हैं। हम भी एक दुकान पर लगी कुरसियों पर बैठ गए। नीचे अलाव जल रहा है, अपने घर के सामने लगी इस दुकान को एक बुढ़िया सँभाल रही है। उसका जवान लड़का कड़ाही के पास बैठा दूध तैयार कर रहा है। हमसे पहले तीन-चार यात्री और बैठे थे और वे दूध पी चुके थे। हम सब ने दूध के कुल्हड़ थाम लिये और जलेबी भी ले लीं। सब लोगों ने जलेबियाँ खाईं और उन यात्रियों को भी खिलाईं। कुछ देर बाद वे लोग उठकर चले गए। इतने समय में ही दुकानदार बुढ़िया तीन-चार बार पैसों के लिए कलप चुकी थी, 'यहाँ दो जने बैठे काए, तुमाए संगए का! अरे पईसा दए के नाँय दए।' हमने कहा, 'अम्माँ, वे हमारे साथ नहीं थे, और वे तो पैसे देकर गए हैं। हम पाँच लोग हैं, और तुम्हारे सामने बैठे हैं।' इसके बावजूद बुढ़िया का कलपना जारी रहा। अविश्वास इसके मन में गहरे बैठ चुका है। इसकी बातों से ऐसा लग रहा है, जैसे यहाँ यात्री लोग खा-पीकर बिना पैसा दिए ही चले जाते हों। वैसे भी ये लोग संतोषी जीव नहीं हैं, लालच के पुतले हैं। एक द्वारका नगरी ठहरी, जहाँ पिछले साल की यात्रा में हम चार जन होटल में खाना खाकर बाहर निकल गए, काउंटर पर बैठे व्यक्ति ने हमें टोका तक नहीं। बाहर सड़क पर खड़े अपने साथियों से मैंने पूछा कि वहाँ पैसे दे दिए कि नहीं! उन्होंने कहा कि नहीं। तब मैं वापस लौटा और उन सज्जन को पैसे चुकाए। कितना अंतर है दोनों में! यहाँ बुढ़िया ने हमारा दूध पीना हराम कर दिया। कैसी दूध की जली है या आदत से मजबूर कि इसे हर यात्री बेईमान और चोर नजर आता है। जबकि इन यात्रियों के सहारे ही इनकी रोजी-रोटी चल रही है। तनिक भी लज्जा नहीं आती इन लोगों को कि दूध के नाम पर यात्रियों को सफेद पानी पिला रहे हैं। गलती इनकी नहीं है। पाप से ये लोग तनिक नहीं डरते, कन्हैया जो इनका हिमायती है। यात्रियों से ये लोग झगड़ा कर बैठते हैं कि हमारी परवरिश का ठेका तो कन्हैया ने ले रखा है, तुम न सही, कोई और सही। बोलो, जय कन्हैयालाल की!

खैर, हमने दूध के पैसे चुकाए और अपनी यात्रा पर आगे बढ़ चले। हम लोगों के बीच शुरू से ही हरि-चर्चा चल रही है। जीतभाई अपने अनुभव तथा पौराणिक आख्यान अमित भाई को सुनाते चल रहे हैं। इससे रास्ते का पता ही नहीं चल रहा है। हरजू कुंड तक आ पहुँचे हैं, कान्हा के एक गोप सखा थे हरजू, यह उन्हीं के नाम पर है। यहीं पर कृष्ण श्रीराधाजी के साथ कुंड में स्नान किया करते थे। अब तो जतीपुरा मात्र दो कि.मी. रह गया है। जलेबियाँ बच गई थीं, कोई खा नहीं रहा था, सो भाई बनवारीलालजी ने जलेबी बंदरमामा के हवाले कर दीं। इस पूरे मार्ग पर प्रकाश तो अपर्याप्त है ही, पर शौचालय-मूत्रालय जैसी जन-सुविधाओं का सर्वथा अभाव है। तीर्थयात्रियों से हमेशा गुलजार रहनेवाले इस परिक्रमा मार्ग के प्रति उत्तर प्रदेश सरकार की बेरुखी चुभनेवाली है। अच्छा होता कि सरकार द्वारा परिक्रमा मार्ग पर जगह-जगह बैठने के लिए यात्री-शेड, मूत्रालय, शौचालय आदि बनवाकर पेयजल की व्यवस्था भी कर दी जाती तो यहाँ आनेवाले तीर्थयात्रियों की संख्या में शर्तिया इजाफा होता। इससे शासक का नाम तो होता ही, सरकार को प्रचुर मात्रा में राजस्व की प्राप्ति होती—एक पंथ दो काज!

रात्रि के लगभग साढ़े दस बज रहे हैं और हम लोग भी मुखारविंद

(जतीपुरा) पहुँच गए हैं। यहीं इंद्र का मान-मर्दन कर बालकृष्ण ने इंद्र पूजा बंद कर गिरिराजजी की पूजा शुरू करवाई थी। इंद्र ने यहाँ प्रायश्चित्त किया तथा इंद्राणी सहित गिरिराजजी की परिक्रमा कर अपने पापों के लिए क्षमा माँगी। आज भी भक्तजन अपने पापों के शमन के लिए गिरिराजजी की परिक्रमा करते हैं। यहीं पर 'दंडवती शिला' भी है। गोपालजी सोए नहीं, हमारा इंतजार करते रहे। एक दुकान के आगे जूता-चप्पल उतारकर हाथ धोए। उन्होंने गिरिराजजी के भोग के लिए आलू की जलेबियाँ ले लीं, फिर हमें मुखारविंद के दर्शन कराने ले गए। गोपालजी ने संभवत: मुख्य पुजारीजी को हमारे बारे में बता दिया था। सो हम सबने बारी-बारी से मुखारविंद पर दंडवत् किया और पुजारीजी ने पीले पटके पहनाकर हमें आशीर्वाद दिया। फिर दाईं ओर स्थित ऊँचे चबूतरे पर बिछी दरी पर बैठे। गोपालजी ने गिरिराज पर श्रीनाथजी के प्रकट होने की कथा सुनाई कि यहीं गिरिराजजी की दक्षिणी तलहटी में बसे आन्यौर गाँव के सद्दू पांडे की नरो नाम की बेटी यहाँ अपनी गौएँ चराने आया करती थी। उसकी एक गाय चुपचाप गिरिराजजी की एक कंदरा में अपना सारा दूध गिरा देती। घर जाती तो उसके स्तन खाली होते। नरो इस बात से चिंतित हुई कि हमारी गाय का दूध कौन पी रहा है? इस रहस्य को जानने के लिए वह चुपचाप गाय का पीछा करने लगी। उसने देखा कि एक नियत स्थान पर खड़ी होकर गाय अपना दूध गिरा रही है। उस स्थान पर वैसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, लेकिन थोड़ी सी खुदाई करने पर भगवान् श्रीनाथजी की भुजा दिखाई दी। सद्दू पांडे ने मूर्ति निकालकर उस कंदरा में स्थापित कर दी और तब से श्रीनाथजी की पूजा होने लगी। मुखारविंद वही स्थान है, जहाँ प्रभु का प्राकट्य हुआ। यहाँ श्रीनाथजी को दूध का ही भोग लगाया जाता था, पर जब वल्लभाचार्यजी को श्रीनाथजी के प्राकट्य का भान हुआ, तब वे वहाँ आए और दोनों का प्रगाढ़ आलिंगन हुआ। उन्होंने अपने हाथ से नैवेध बनाकर अरोगाया, तब से प्रभु श्रीनाथ अन्न का भोग भी ग्रहण करने लगे।

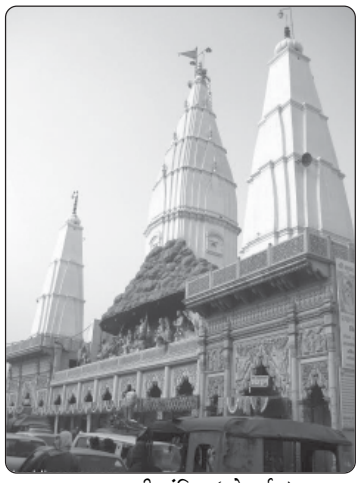

दानघाटी मंदिर (गोवर्धन)

इस प्रकार गोपाल भाई ने प्रभु के प्राकट्य की कथा सुनाई और प्रात: सात बजे सब स्थानों के दर्शन कराने का वादा कर हमसे विदा ली और हमने आगे बढ़कर अपनी परिक्रमा पूरी की। बड़ी परिक्रमा की समाप्ति पर गिरिराजजी को दंडवत् प्रणाम किया और फिर अपने डेरे की ओर लौट पड़े। लगभग बारह बजे हम लोग अपनी रजाइयों में दुबक गए। थके हुए थे, सो खूब मीठी नींद आई, आनंद शर्माजी के खर्राटों ने भी कोई बाधा नहीं डाली। प्रात: सात बजे गोपालजी का फोन आ गया, पर यहाँ सब अभी रजाइयों के आगोश में हैं। अमित भाई तथा बनवारीलालजी ने स्नान किया। तैयार होते-करते नौ बज गए। बाहर कड़ाके की ठंड तथा घना कोहरा पसरा हुआ है, सो गाड़ी में बैठ सीधे जतीपुरा जा पहुँचे। गाड़ी एक गली में खड़ी कर दी और पैदल चलकर मुखारविंद पर गोपालजी से मिले। वे हमें पीछे के रास्ते से गोवर्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथजी के दर्शन कराने ले जा रहे हैं। पहाड़ के पत्थर चिकने हो जाने से पैर फिसलते हैं, सो बड़ी सावधानी से आहिस्ता-आहिस्ता पैर जमाते हुए श्रीनाथ मंदिर के प्रवेश द्वार पर पहुँच गए। नंगे पैरों में ठंड भी लग रही है। पुरानी इमारत वाले इस छोटे से मंदिर में श्रीनाथजी विराजमान हैं और बाहर के बरामदे में ऊपर दीवारों पर अष्टछाप के कवियों के चित्र सजे हैं। तीर्थ पुरोहितजी ने प्यार से बिठाकर हमें श्रीनाथजी के प्राकट्य और फिर नाथद्वारा जाने की कथा सुनाई। पुजारीजी का दावा है कि श्रीनाथजी नित्य रात्रि में यहाँ शयन करने आया करते हैं। अंदर के कमरे में उनकी शैया लगी हुई है, इसी कमरे में सुरंग का द्वार खुलता है। हमने भी अंदर जाकर शैया और सुरंग देखी। इन सब चीजों को स्पर्श करना मना है।

शैया वाले कमरे में ऊपर छत से कुछ नीचे एक झरोखा है। बताया जाता है भगवान् का एक अछूत भक्त नित्य दर्शन करने आया करता था, पर पंडा-पुजारी उसे दर्शन नहीं करने देते थे। प्रभु ने उसे दर्शन देने के लिए यह झरोखा निकलवाया। वह अछूत भक्त यहीं से नित्य श्रीनाथजी के दर्शन किया करता था। इसे 'वाल्मीकि झरोखा' कहते हैं। इन सबके दर्शन और पुजारीजी को प्रणाम कर हम मंदिर से बाहर आ गए। यहाँ ऊपर महाप्रभु की १५वीं बैठक तथा १४वीं बैठक पहाड़ से नीचे है। मंदिर के बाईं ओर गोपालजी ने हमें बहुत सारे पवित्र चिह्न दिखाए। फिर ठीक सामने की गली में निकलते हुए जतीपुरा में दंडौतिया कचौड़ी वाले की दुकान पर गरमागरम कचौड़ी का नाश्ता किया।

अब गोपालजी हमें पूछरी के पास स्थित मूल मुखारबिंद पर लेकर जा रहे हैं, यहीं से पूजा की सब सामग्री पाँच लीटर दूध, धूप-दीप, धोती, पटका आदि ले लिया गया। यह वह स्थान है, जहाँ भगवान् कृष्ण ने इंद्र का मान-मर्दन करने के लिए इस शिला पर खड़े होकर गोवर्धन पर्वत को नख पर धारण किया था। यहाँ मुखारबिंद स्वरूप छोटे से मंदिर में मुख जैसी शिला विराजमान है। हम सभी ने गिरिराजजी का दुग्धाभिषेक किया, फिर स्वच्छ जल से धोया, गिरिराजजी को तिलक लगाया। उन्हें धोती पहनाकर पटका सजाया गया। फिर यहीं पर गिरिराजजी की सात परिक्रमा कर अपनी गलतियों के लिए क्षमा माँगते हुए दंडवत् प्रणाम किया। गोपालजी ने बताया कि पहले गिरिराजजी की इतनी ऊँचाई थी कि यहाँ से ५-६ कि.मी. दूर परासौली गाँव में स्थित चंद्र सरोवर तक इनकी परछाईं पहुँचती थी। गिरिराजजी लगातार पृथ्वी में समाते जा रहे हैं, अत: अब ऊँचाई बहुत कम रह गई है। वास्तव में कृष्णकाल के आज दो ही प्रत्यक्ष साक्ष्य रह गए हैं—एक गोवर्धन पर्वत और दूसरी माँ कालिंदी।

एक और बात खास है कि यहाँ धै के पेड़ या अन्य वृक्षों के शिखर ऊपर की ओर न जाकर नीचे की ओर झुके रहते हैं, कहा जाता है कि ये सब वृक्ष श्रीनाथजी के श्रीचरणों में झुके अपना प्रणाम निवेदित कर रहे हैं। यहाँ से लौटकर हम पूछरी आ गए। यहाँ पर गिरिराज पर्वत का आखिरी

छोर यानी पूँछ है, इसलिए इसे 'पूछरी' कहा जाता है। यहाँ हमने नवल और अप्सरा कुंड के दर्शन किए। नवल कुंड को पूछरी कुंड भी कहते हैं। एक बार गोवर्धन पर्वत पर देवताओं द्वारा १०८ पवित्र नदियों का आह्वान कर भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक किया गया था। उस समय इस समारोह में स्वर्ग की सात अप्सराओं ने यहाँ नृत्य किया था, भगवान् कृष्ण के अभिषेक से जो पवित्र जल इकट्ठा हुआ, उसी को 'अप्सरा कुंड' कहा जाता है। फिर हमने राघव पंडित की गुफा देखी, जो यहाँ स्थित श्रीनाथजी के मंदिर के पीछे है। दोपहर का एक बज गया है और मंदिर में श्रीनाथजी की आरती हो रही है। आरती में शामिल होकर बड़ा आनंद आया। श्रीनाथजी की साज-सज्जा तथा शृंगार मन को अभिभूत कर गया। प्रभु की बड़ी मनोहारी झाँकी है। आरती के बाद यहाँ के पुजारीजी से मिले तो उन्होंने श्रीनाथजी के बारे में बहुत सी बातें बताते हुए कहा कि यहाँ उनकी आज भी अष्टयाम सेवा हो रही है। पुजारीजी बड़े मृदुभाषी हैं। उनके आग्रह पर हमने यहीं पर भंडारे में भोजन (प्रसाद) ग्रहण किया। रोटी, पूरी, मिश्रित सब्जी, छाछ, कढ़ी और मिष्टान्न, सब परम स्वादु। आखिर भगवान् का प्रसाद क्या बेस्वाद हो सकता है, कभी नहीं। मन परम प्रसन्न हो गया।

जतीपुरा से निकलकर अब हम लोग परासौली गाँव में सूरदासजी की समाधि पर आ पहुँचे हैं। यहीं पर चंद्र सरोवर है। चंद्र सरोवर वह स्थान है, जहाँ महाप्रभुजी पधारे, चंद्रसरोवर में स्नान किया और एक छौकर वृक्ष के नीचे बैठ भागवत का पारायण किया था। उन्होंने वैष्णवन को बताया था कि कैसे उन्होंने दिव्य रासलीला तथा श्रीगिरिराजजी के दर्शन किए। पुराने समय में ब्रज में चंद्रसरोवर को 'सरस्वती कल्प' भी कहा जाता था। यहाँ मुरली की तान पर शरद पूर्णिमा की चाँदनी में गोपियों ने श्रीकृष्ण संग रास रचाया था, इसीलिए इस ग्राम को 'परासौली' कहा जाता है। यहीं पर सूरकुटी है। श्रीबिहारीजी के गुणगायक और परमभक्त सूरदासजी चिरनिद्रा में लीन हैं। इस अनन्य भक्त की समाधि पर हमने दंडवत् किया और सरोवर के जल से आचमन कर वापस लौट पड़े। गोपालजी हमें अपने घर पर ले गए। बड़े आग्रहपूर्वक और स्नेह से हमें चाय पिलाई, फिर अपने पिताजी से मिलवाया। आनंदजी के पूछने पर उन्होंने ब्रज की कई चमत्कारी बातें बताईं कि कृष्ण को समझना है तो कुछ दिन ब्रज में वास करो। अधिकतर लोग परिक्रमा करने आते हैं और मंदिर में प्रणाम कर लौट जाते हैं। भगवान् और उनके स्थानों के बारे में जानने की जिज्ञासा कोई नहीं दिखाता। ज्यादातर आयाराम-गयाराम का खेल दिन-रात चलता रहता है। उन्होंने हमें वृंदावन में दंडौती बाबा तथा कश्मीरी बाबा के बारे में बताया। इनकी बातों में ऐसा रस आ रहा है कि यहाँ से उठने को मन ही नहीं कर रहा है। आखिर उनका आशीर्वाद लेकर और गोपालजी से पुन: मिलने का वादा कर हम लोग ब्रह्मांड घाट की ओर निकल पड़े। यहाँ से मिट्टी का प्रसाद लेकर वृंदावन में बाँकेबिहारीजी के दर्शन किए। तुरत-फुरत गाड़ी में बैठ एक्सप्रेस-वे की ओर बढ़ चले।

आनंदजी ने कहा, किसी ढाबे पर भोजन करते चलें, अन्यथा उस रास्ते पर भोजन नहीं मिलेगा। यहाँ कई सारे होटलनुमा ढाबे हैं। गुलशन ढाबे पर गाड़ी रोक दी गई। यहाँ पर बड़ी सजधज, जंगल में मंगल है। मैं और जीतभाई पानी की बोतल लेकर खेतों में निवृत्त होने चले गए। लौटकर देखा कि आनंदजी ने पालक-सरसों का साग और मक्की की रोटी का ऑर्डर दिया है। सलाद और अचार के साथ गरमागरम साग-रोटी खाने में बड़ा मजा आया। खाना खाकर ढाबे से बाहर निकले तो देखते क्या हैं कि कुहरे में हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा है। अब रात्रि के आठ बज रहे हैं। चार-पाँच गाड़ियाँ उधर से निकलीं, सो हमारी गाड़ी भी उनके पीछे चल पड़ी। विश्वास इतना भर था कि कोई गाड़ी तो एक्सप्रेस-वे पर जरूर जाएगी, पर जल्दी ही यह विश्वास कोरा भ्रम साबित हुआ। हम एक्सप्रेस-वे पर नहीं चढ़ पाए और आगे निकल गए। हालाँकि हमारी पाँच जोड़ी आँखें भी मुस्तैदी से रास्ते को ढूँढ़ रही थीं। आखिर एक सब-वे के बाहर निकलते ही गाड़ी रोकी और बराबर में कोई कार्यालय है, उसका दरवाजा पीटा, एक व्यक्ति अपने बिस्तर से बाहर आया। उसने बताया कि 'एक्सप्रेस-वे पर जानेवाला कट पीछे छूट गया है, लेकिन इसी रास्ते पर आगे चलकर रेलवे फाटक पार कर एक्सप्रेस-वे पर पहुँचा जा सकता है।' इतने में एक मोटर साइकिल सवार उधर आ निकला। उसने कहा कि मेरे पीछे चले आओ, मैं रास्ते पर छोड़ दूँगा।

आगे वह रास्ता बताकर चला गया कि एक मोड़ पर फिर फँस गए, कुछ सूझ नहीं रहा है कि किधर जाएँ। गाड़ी से बाहर निकल वाहन को हाथ देते हैं तो कोई रोकता नहीं है। बड़ी मुसीबत में फँसे। गाड़ी की तेज रोशनी में भी दो हाथ आगे का भी रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा है। आखिरकार जीतभाई ने जीपीएस पर दिल्ली की दिशा ढूँढ़ निकाली। इस बीच हमारी तरह भटकी हुई एक गाड़ी और आ गई। कोई आगे चलने को तैयार नहीं। अंतत: ठाकुरजी के दम पर बनवारीलालजी ने धीरे-धीरे गाड़ी आगे बढ़ाई और हम एक्सप्रेस-वे पर आ गए। गाड़ी दिल्ली की ओर बढ़ने लगी। धीरे-धीरे आधा रास्ता पार कर चुके, तब कुहरा कुछ कम हुआ। गाड़ी में भजन चलते रहे, कोई सोया नहीं, दस आँखें बराबर चौकसी करती रहीं। लेकिन भाई बनवारीलालजी अनुभवी चालक हैं, हमें गहन कुहरे के काल-समुद्र से सकुशल बाहर निकालकर रात्रि के लगभग साढ़े ग्यारह बजे हमारे घर अध्यापक नगर छोड़ दिया। अमित भाई और बनवारीलालजी को आनंदजी ने अपने यहाँ ठहरा लिया। रात को जाने नहीं दिया। अगले दिन समाचार-पत्र में हमने पढ़ा कि एक्सप्रेस-वे पर धुंध में दर्जन भर एक्सीडेंट हुए, कई लोगों की जानें गईं, पर ठाकुरजी की हम पर असीम कृपा रही। मित्र आनंद शर्मा का जन्मदिन मनाने का यह तरीका अनुकरणीय है। ठाकुरजी से विनती है, मेरे मित्र के जीवन में ऐसे अनेक जन्मदिन बराबर आते रहें। बकौल आनंद शर्मा, ठाकुर अपने टहलुआ पर कृपा बनाए रखें। जय श्रीकृष्ण, जय गिरिधारी, जय बाँकेबिहारी!!

जी-३२६ अध्यापक नगर
नांगलोई, दिल्ली-११००४१
दूरभाष : ९८६८५२५७४१

व्यंग्य

सास की अटकी साँस

● सुनीता शानू

अब तो भैया साँस भी अटक-अटककर आने लगी है। सास के नाम की ऐसी साँस चुभी है कि निकालो तो दर्द, न निकालो तो दर्द ही दर्द।

सोचा तो था कि बहू को ही बेटी बना लूँगी, मैं सास नहीं बनूँगी, लेकिन बनने कौन देता है, यहाँ तो बनाने का काम किया जाता है, एक मुँह से हजार नसीहतें सुननी पड़ती हैं—'सुनो, तुम्हारे बेटी नहीं है न', मैंने कहा, 'हाँ पता है, सबको मालूम है, बेटी नहीं है।' 'तो तुम बहू को बेटी की तरह रखना', दूसरी नसीहत आई, 'अरे नहीं-नहीं, बहुओं को सिर पर नहीं चढ़ाना चाहिए, वरना तुम्हारे ही सिर पर खड़े होकर नाचेगी।' एक ने दुखती रग पर हाथ रख दिया—'आपके पास ऑप्शन क्या है मैडम, आप तो चेहरे से लगती ही नहीं हैं, लगता है आपको सासत्व का लबादा ओढ़ाया जा रहा है।'

सचमुच इतनी तैयारी तो बेटे के नामकरण-संस्कार में भी नहीं हुई थी, जितनी मुझे सास बनाने के लिए अड़ोसी-पड़ोसी और दोस्त कर रहे हैं, अब तो सुबह की सैर भी आफत बन गई है, तमाम बुढ़ौती, जिनको सुबह आंटी कहकर नमस्ते किया करती थी, अब वही मुझे मुसकराकर देखती है, जैसे कहना चाह रही हों—'कब तक बचेगी बच्चू, एक दिन तुझसे सत्संग करवाकर ही दम लेंगे।' दूसरी तरफ मेरी अपनी दोस्त है, जो यों देख रही है जैसे मेरे सिर पर मिट्टी के तेल का कनस्तर, गैस का सिलेंडर, स्टोव या फिर कोई दूसरी ऐसी चीजें हैं, जो मेरे सासपने को जगजाहिर कर रही हैं।

घर आनेवाले मेहमानों की गिनती में भी इजाफा हो गया है, कुछ सास की बिरादरी के हैं तो कुछ बहुओं की, इन नसीहतबाजों में कुछ बहू के आतंक से आतंकित हैं, तो कुछ बहुएँ हैं, जिनकी सास पर शशिकला या बिंदु का असर है। तीसरे वे लोग हैं, जिनके पास न बेटा है, न बहू आने की उम्मीद, लेकिन सास-बहू सीरियल देख-देखकर ट्रेनिंग सारी ले चुके हैं।

आतंकित लोग हर वक्त आतंक में ही रहते हैं—'देखो, शुरू में ही खूँटे से बाँधकर रखना, ज्यादा चूँ-चपड़ करे तो नकेल कस देना', अब बहू है कि गाय-भैंस, जो खूँटे से बाँधकर नकेल कस दी जाएगी। कुछ ने मुझे आईना दिखाया—'अरे भूल गई तेरे साथ क्या-क्या हुआ था, देख अब मौका है, हाथ से जाने न पाए, अपना बदला ले लेना, ऐसा मौका बार-बार नहीं आएगा। यही प्रथा है, तू कोई नया काम नहीं करेगी, हर सास अपना बदला बहू से ही लेती है, तुझे तो ईश्वर ने बहुत जल्दी यह

सुपरिचित रचनाकार। काव्य-संग्रह 'मन पखेरु उड़ चला फिर' तथा पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य, कविता, कहानियाँ आदि प्रकाशित। कई कवि सम्मेलनों में काव्य-पाठ। साधना टी.वी. चैनल पर काव्य-पाठ एवं संचालन।

गोल्डन चांस दिया है, समझी।'

समझी से इतनी समझ तो आ गई कि सास बनने के लिए मेहनत बहुत करनी होगी। इतने भारी-भरकम किरदार को निभाने के लिए कोई किताब होती तो अच्छा रहता, खैर टी.वी. की पाठशाला में ललिता पवार, शशिकला, बिंदू जैसी फेमस सासुओं के सारे कारनामे समझ लिये।

सास बनाने के लिए सामग्री की लिस्ट मुझे दे दी गई, कुछ जरूरी चीजों के साथ—एक रुद्राक्ष की माला और भजन की किताब भी रख ली गई, बस बालों का कालापन सारी-की-सारी गरिमा खराब किए जा रहा था, सलाह आई कि बालों को सफेदी करवाई जा सकती है।

मैं पूरी तरह से सास बनने की प्रक्रिया में संलग्न थी। घर में केरोसीन, गैस सिलेंडर, स्टोव और माचिस से लेकर आग लगाने के सारे सामान थे, कुछ रिश्तों में आग लगानेवाले भी घर में बिठा लिए थे, जिनका काम बहू और उसके मायके पर चलनेवाले व्यंग्य-बाणों की प्रैक्टिस करवाना था।

अभी पूरी तरह से बनना-बनाना हुआ ही नहीं था कि आस-पड़ोस की कुछ बहुएँ झगड़ने आ गईं, 'अरे! आप यह क्या करने जा रही हैं? हम बहुएँ भी किसी की बेटी हैं, आपकी बेटी के साथ कोई ऐसा करेगा तो कैसा लगेगा?' अब फिर पाला बदल गया, 'बहू मानती ही क्यों हो? तुम तो बेटी ही मानो, कभी-कभी बेटे से छुपकर उसे गिफ्ट भी दिया करो, ऐसा करने से दोनों प्रसन्न होंगे, थोड़ा चाय-पानी भी बना दोगी तो तुम्हारे हाथ नहीं टूट जाएँगे, बहू खुश रहेगी तो बेटा भी खुश रहेगा। ऐसा करो, कोशिश करके बेटे-बहू के बीच से ही हट जाओ, यह सब मृगतृष्णा है रे, संसार में कौन हमेशा रहा है, जो आया है, एक दिन जाएगा ही।' मैं कुछ शशिकलाओं के मुँह से देववाणियाँ सुनने का प्रयास करने लगी। तभी मेरी सासू माँ बोल पड़ीं, ''मैंने भी तो अपना बेटा तुम्हें सौंप दिया था, तुमने भी पैदा किया, बड़ा किया, पढ़ा-लिखा दिया, अब तुम्हारा काम खत्म हुआ।'' उनकी आँखों में कुछ पानी सा नजर आया, अगल-

बगल की महिलाओं ने मुझे तिरस्कार की नजर से देखना शुरू कर दिया, ''ओह बेचारी सास!''

आखिर यही डिसाइड हुआ कि शादी की है तो बेटा-बहू साथ ही रहेंगे। गोया हमें भी अपना बेटा सौंपकर भूल जाना होगा, बस यही जिंदगी है, बाकी सब बेकार है। तभी पड़ोसन की आवाज आई, ''अरे याद कर, बेटा पैदा करने में कितना दर्द सहा था, कितनी रातें गीले बिस्तर पर बिताई थीं, रही बात बेटा सौंपने की, तो यह तो प्रथा है, सौंपना कैसा?''

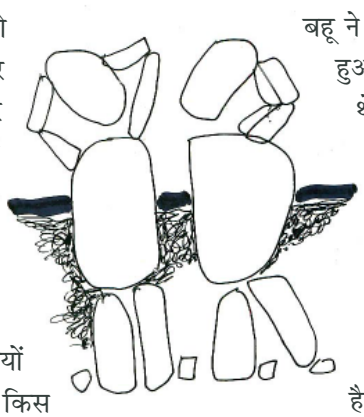

सास की साँस गले में अटकी ही थी कि कुछ कमजोर लड़कियाँ बोलीं, ''आंटीजी, आजकल की लड़कियों से बचकर ही रहना। क्राइम पेट्रोल में दिखाते हैं, बहुएँ किस तरह सास को साजिश का शिकार बना देती हैं। एक काम करो, आप घर में से केरोसिन, पैट्रोल, माचिस की डिब्बी सब हटा दो, हो सके तो गैस सिलेंडर पर भी पूरी नजर रखना, पिछले दिनों एक बहू ने सास को मिट्टी का तेल डालकर जला डाला था।'' सुनकर मेरे तो होश ही उड़ गए, यह कैसी उल्टी हवा चली। बहू सास को कैसे जला सकती है।

''अरे आंटीजी, जमाना बदल गया है, अभी हाल ही में एक बहू ने सास से दहेज तक माँगा है।'' मेरा सासत्व धराशायी हुआ जा रहा था, ये सारे काम जो सास की कोर्सबुक में थे, सास को ही करने थे, सास ही बहू को अच्छे से जला पाती थी, दहेज के लिए प्रताड़ित भी किया करती थी, बहू ने कभी ऐसा काम नहीं किया। चाहे जितनी हिंदी फिल्म देख लो, बहू जलते-जलते जल गई है, पर सास को कभी भी आँच तक नहीं लगने दी—''यह मुआ, नासपीटा क्राइम पेट्रोल मुझे सास बनाकर मार ही डालेगा। अरे भई, मेरी अभी उम्र नहीं है सास बनने की।''

२०६/३, भूतल, गली नं. ५, पद्म नगर
किशनगंज, दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ०८८६०५९५९३७

लघुकथा

भ्रष्टाचार

● सीताराम गुप्ता

गजराज सर कक्षा में पढ़ा रहे थे। वैसे तो साहित्य के शिक्षक हैं पर कई विषयों पर उनकी अच्छी पकड़ है। पढ़ाते-पढ़ाते न जाने कहाँ पहुँच जाते हैं और रुकने का तो नाम ही नहीं लेते। बात भ्रष्टाचार तक जा पहुँची। अचानक रजनीश ने खड़े होकर प्रश्न दाग दिया, ''सर, यह भ्रष्टाचार वास्तव में होता क्या है?'' गजराज सर ने कहा, ''वैरी सिंपल। ऐसा आचरण या कंडक्ट, जो भ्रष्ट हो और किसी भी तरह से ठीक न हो भ्रष्टाचार है जैसे सेलरी लेना पर ठीक से काम न करना या रिश्वत आदि लेना।'' रजनीश ने पूछने के अंदाज में किंचित् धृष्टतापूर्वक कहा, ''जैसे स्कूलों में स्टूडेंट्स के लिए जो पैसे या दूसरी चीजें आती हैं, टीचर उन्हें खा जाते हैं।'' ''हाँ, यह भी भ्रष्टाचार ही है। यदि स्टूडेंट्स के लिए जो पैसे या दूसरी चीजें आती हैं और टीचर उन्हें खा जाते हैं तो,'' गजराज सर ने एक-एक शब्द पर जोर डालते हुए कहा।

गजराज सर की पढ़ाने की गति एकदम मंद पड़ गई। फिर वह हाथ में पकड़ी हुई पुस्तक को वहीं एक डेस्क पर रखकर पीछे के एक खाली डेस्क पर जा बैठे। दो सप्ताह पहले की घटना उनके मन में उमड़ने-घुमड़ने लगी। गजराज सर पढ़ाई के मामले में थोड़े नहीं बहुत सख्त हैं। बिना पाठ्य पुस्तकों के विद्यार्थियों को अपनी क्लास में नहीं, बैठने देते। गुस्सा करते हैं, सो अलग। पूरे स्कूल में केवल उन्हीं की क्लासेज में सौ प्रतिशत छात्र पुस्तकें लेकर आते हैं। रजनीश के पास पुस्तक नहीं थी। गजराज सर ने पूछा, ''पुस्तक कहाँ है? लेकर क्यों नहीं आए? तुम्हें पता नहीं मैं बिना टेक्स्ट बुक्स के किसी भी स्टूडेंट को क्लास में नहीं बैठने देता?'' रजनीश ने कहा, ''सर पता है।'' ''फिर?'' गजराज सर ने पूछा। ''खो गई '', रजनीश ने कहा। गजराज सर ने गुस्से से कहा, ''तो नई ले आओ।''

रजनीश ने कहा, ''एग्जाम्स का एक महीना ही तो बचा है, काम चला लूँगा। घरवाले पैसे देते भी नहीं।'' सर ने पूछा, ''क्यों?'' ''उनके पास हैं ही नहीं'', रजनीश ने कहा। गजराज सर ने सौ रुपए का नोट निकालकर रजनीश को देते हुए कहा, ''कल पुस्तक लेकर आनी है, चाहे जहाँ से भी मिले।'' अगले दिन जब गजराज सर क्लास में आए तो देखा कि रजनीश के पास पुस्तक है। पुस्तक साठ या पैंसठ रुपए की थी। गजराज सर चाहते थे कि रजनीश बाकी पैसे उन्हें लौटा दे, लेकिन उन्हें बाकी पैसे वापस माँगने में झिझक हो रही थी। अचानक गजराज सर के दिमाग में पैसे वापस माँगने की एक तरकीब आई। उन्होंने रजनीश से पूछा, ''पैसे कम तो नहीं पड़े?'' रजनीश ने किंचित् विनम्रतापूर्वक धीरे से अत्यंत संक्षेप में कहा, ''नहीं सर।''

ए.डी.-१०६-सी, पीतमपुरा,
दिल्ली-११००३४
दूरभाष : ०९५५५६२२३२३

साँझी पर्व संजा सहेलड़ी

● सुधा तैलंग

ग्रामीण लोक संस्कृति की सोंधी महक बिखेरता हुआ संजा सहेलड़ी पर्व नारी के अंतर्मन की भावनाओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करता है। भाद्रपद मास की पूर्णिमा से शुरू होकर आश्विन मास की पितृमोक्ष अमावस तक चलने वाला १६ दिवसीय पर्व संजा श्राद्ध पक्ष में पूर्वजों के प्रति श्रद्धा, सम्मान प्रकट करने के साथ धरती माता का शृंगार करके कलात्मक सौंदर्य-बोध का संदेश देनेवाला एक सामाजिक पर्व है।

संजा को ब्रह्मा की मानस पुत्री माना गया है। संजा की अपूर्व सुंदरी के रूप में कल्पना की गई है। संजा देवी स्वरूपा हैं, जो सूर्य के रथ पर आरूढ़ होकर आती हैं। चाँद-सूरज उसके भाई हैं। कन्याएँ अच्छे वर, सुखी भावी संसार की कामना लिये संजा पर्व सहेलियों के साथ मनाती हैं। सहेलियों के संग पूजन के कारण इस पर्व को निमाड़ में 'संजा सहेलड़ी' या 'छावड़ी' कहते हैं। राजस्थान व ब्रज मंडल में इसे साँझी कहा जाता है तो महाराष्ट्र में 'गुलाबाई' के नाम से संबोधित किया जाता है।

श्राद्ध पक्ष के सोलह दिन नित नई आनुष्ठानिक कलाएँ, कल्पनाएँ, गीतों, हँसी-ठिठोली और रंगों की सौगात लेकर संजा की अगवानी भाद्रपक्ष की पूर्णिमा को लड़कियाँ घर के द्वार पर करती हैं। इन सोलह दिनों में बेटियाँ प्रात: स्नान करके अपने घर की दहलीज को गोबर से लीप-पोतकर पवित्र करती हैं। द्वार पर दीपक प्रज्वलित कर पुरखों का स्वागत करती हैं। पूर्वज प्रसन्न होकर बेटियों को आशीर्वाद देते हैं। ऐसी मान्यता है कि संध्या समय सब सखी-सहेलियाँ एकत्र होकर घर के बाहर व आँगन को पवित्र भूमि पर गोबर से कलात्मक आकृतियाँ बनाती हैं। गोबर से लीपकर पवित्र भूमि में संजा देवी की आकृति बनाई जाती है। साथ में पूनम पाटला, सतिया, चाँद और सूरज की आकृतियाँ बनाकर उनको रंग-बिरंगे फूलों की पँखुड़ियों से चमकीली पन्नियों, कागज के टुकड़ों से सजाया जाता है। गीत गाकर लड़कियाँ संजा देवी का पूजन करके आरती उतारती हैं। पंजीरी व लाई का भोग-प्रसाद बाँटा जाता है, आकृति मिटाई नहीं जाती।

दूसरे दिन शाम को सहेलियाँ इकट्ठी होकर संजा देवी का स्वागत करके पहले दिन की आकृतियाँ मिटाकर अपनी कल्पनाओं का सृजन संसार रचाती हैं। पंद्रह दिनों तक यही क्रम चलता रहता है।

रूढ़िगत परंपराओं के चलते एकम को पाँचा, द्वितीया को बीज, तृतीय को छाबड़ी, चतुर्थी को बिजौरा, पंचमी को गौरा-पार्वती, षष्ठी को चौपड़ा, सप्तमी को सप्तर्षि तारामंडल, अष्टमी को फूलों की आकृति, नगाड़े-ढोल नवमी को डोकरा-डोकरी, दशमी को बिजना पंखा, एकादशी को केले का झाड़, द्वादशी को मोर-मोरनी, त्रयोदशी को किला-कोट की आकृति बनाई जाती हैं, जो अमावस तक रहती हैं।

सुपरिचित लेखिका। देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लगभग ३०० से अधिक कहानी व साक्षात्कार प्रकाशित। मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान द्वारा उत्कृष्ट शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित। संप्रति मध्य प्रदेश स्कूल शिक्षा विभाग में संस्कृत शिक्षक।

पितृमोक्ष अमावस को संजा पर्व का समापन विदाई समारोह होता हैं। कलाकोट की विशाल आकृति में पूरा रचना-संसार समा जाता है। कला कोट में आसपास घर-गृहस्थी की सभी वस्तुओं का चित्रांकन किया जाता है। हाथी, घोड़ा, बैलगाड़ी, मोटर, हवाई जहाज, चूल्हा-चक्की, मोर-मोरनी, तोता-कौवा, ऊँट, घर-जेवर, बारात-बराती, दूल्हा-दुल्हन, पंडितजी, रिद्धि-सिद्धि, जसोदा, ढोल की आकृतियाँ आदि। लड़कियाँ अपने कला-कौशल से उनको फूलों, रंग-बिरंगे कागजों, पन्नियों के टुकड़ों से सजा-सज्जा करती हैं। मानव आकृतियाँ प्रतीकात्मक होती हैं। एक ओर चाँद-सूरज बनाए जाते हैं।

संजा सहेलड़ी अपने आप में एक लोक उत्सव है, कल्पनाओं को साकार करने का प्रतीक पर्व है। पूजन, आरती के बाद सभी सहेलियाँ १६ दिनों की आकृतियों को एक बाँस की टोकनी में रखकर, ओढ़नी से ढककर गाजे-बाजे के साथ गीत गाती हुई चल पड़ती हैं। बेटियों की बाल-सुलभ चंचलता, चेष्टा व कला सृजनात्मकता को मूर्तरूप प्रदान करता यह लोकोत्सव बेटियों में लोकप्रिय है। प्रत्येक जाति-वर्ग की लड़कियाँ आपस में मिलकर सामाजिक समरसता व परस्पर प्रेमभाव का संचार करती हुई साँझी पर्व में अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा व सम्मान प्रगट करती हैं। विदाई की पीड़ा के अगले वर्ष शीघ्र आने की मंगल कामना करते हुए कुँवारी कन्याएँ अपने घर लौट आती हैं। शादी के बाद जब बेटी मायके आती है तो वह संजा देवी का उद्यापन अवश्य करती है। विदाई के लिए पास ही के नदी, तालाब या कुएँ में संजा आकृतियों का विसर्जन कर दिया जाता है। एकता, सौहार्द और सामाजिकता का संदेश देनेवाला यह पर्व आज भी हमारी परंपराओं को जीवित रखे हुए है। खेल ही खेल में सीख देनेवाला संजा सहेलड़ी नारी के अंतर्मन व सौंदर्य-बोध को प्रगट करनेवाला अनूठा संयोजक पर्व है।

सिमरन अपार्टमेंट-२
त्रिलंगा, भोपाल
दूरभाष : ०९३०१४६८५७८

बाल-कविता

पापा बोलो तो!

● संजीव ठाकुर

जाने-माने रचनाकार। 'नौटंकी जा रही है', 'फ्रीलांस जिंदगी', 'अब आप अली अनवर से···' *(कहानी-संग्रह)*, 'झौआ बैहार' *(लघु उपन्यास)*, 'इस साज पर गाया नहीं जाता' *(कविता-संग्रह)*, 'यहाँ ऐसा, वहाँ वैसा', 'मैं भी गीत लिखूँगा', 'बड़ों का बचपन', 'चुन्नू-मुन्नू का स्कूल' *(बाल साहित्य)* प्रकाशित।

मुश्किल हो गई

पापाजी की टाँग टूट गई,
अब तो भाई मुश्किल हो गई!
कौन मुझे नहलाएगा?
विद्यालय पहुँचाएगा?
सुबह की सैर कराएगा?
रातों को टहलाएगा?
चिप्स-कुरकुरे लाएगा?
कोल्ड-ड्रिंक पिलवाएगा?
आइसक्रीम खिलाएगा?
मार्केट ले जाएगा?

सुबू ने खाई ढेर पकौड़ी

सुबू ने खाई ढेर पकौड़ी
एक छीन ली पापा से
एक झटक ली मामा से
मम्मी ने अपने हिस्से की
दे दी उसको एक पकौड़ी!

फिर आई उसकी थाली
जिसमें थी दस-बीस पकौड़ी,
प्याज और आलूवाली
उसने न दी एक किसी को
खुद ही खा ली बीस पकौड़ी!

कैसे लिख लेते हो कविता?

आज लिखी कितनी कविता
पापा बोलो तो?
मैं भी पढ़ लूँ कोई कविता
डायरी खोलो तो?
यह तो आपने कल ही लिखी थी
यह लिखी थी परसों
आज आपने कुछ नहीं लिखा
पापा बोलो तो?
मैं भी लिखना चाह रही हूँ
पर ना लिख पाती,
कैसे लिख लेते हो कविता
पापा बोलो तो?

मोबाइल की बात

सुनो, सुनाता हूँ मैं तुमको
मोबाइल की बात,
एक बार रीचार्ज कराओ
कर लो जी भर बात।
कहीं भेजना हो संदेश
लिखकर भेजो इसमें
तुम्हें जरा भी पता नहीं है?
क्या-क्या होता इसमें?
कितना कुछ है, तुम्हें बताऊँ
कैलकुलेटर, वीडियो गेम

इंटरनेट कनेक्शन ले लो
खेलो ऑनलाइन तुम गेम!
दुनिया भर के फोन नंबरों
को कर सकते सेव
और कभी फोटो खींचो तो
हो जाएगा सेव!
लेकिन एक बुराई भी तो
होती है इसकी,
बहुत बुरी होती है भैया
रेडिएशन इसकी!

आसमान में कितने तारे

आसमान में कितने तारे
होते हैं बच्चो?
बतलाने पर तुम्हें मिलेगा
एक इनाम बच्चो!
सिर के बालों के जितना
यह तुम मत कहना
बिना गिने न पाओगे
तुम इनाम बच्चो!
और अगर कह डालोगे
तारों को रेत बराबर,
बूढ़े हो जाओगे उनको
गिनते तुम बच्चो!

एस.एफ २२, सिद्ध विनायक अपार्टमेंट,
अभय खंड ३, इंदिरापुरम्,
गाजियाबाद-२०१०१०
दूरभाष : ०१२०-४११६७१८

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक प्राप्त हुआ। इस बार की लंबी संपादकीय टिप्पणी तथ्य और ज्ञान से भरपूर है। स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित सभी रचनाएँ अच्छी लगीं। यह संग्रहणीय अंक है। गद्य के साथ-साथ पद्य की रचनाएँ भी सरस, रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं। स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित विपुल सामग्री इस अंक में एक साथ उपलब्ध है। यह सराहनीय प्रयास है। 'साहित्य अमृत' का वर्ष में कई बार विशेषांक के रूप में पाठकों के बीच आना एक बड़ी उपलब्धि कही जाएगी। ***—श्रीकांत व्यास, पटना (बिहार)***

'साहित्य अमृत' का स्वाधीनता विशेषांक एक यादगार धरोहर है। संपादकीय स्वाधीनता की कहानियों से ओत-प्रोत कर गया। इतना यादगार संपादकीय पढ़कर मन खुशी से गद्‌गद हो गया। खुश रहो अहले वतन, उत्तर प्रदेश एवं क्रांतिकारी आंदोलन, स्वतंत्रता संग्राम में उत्तर पूर्वांचल का योगदान, जब कश्मीर ने जिन्ना को खाली हाथ लौटाया, गोवा का स्वतंत्रता संग्राम, स्वतंत्रता संग्राम में हिमाचल का योगदान आदि सभी आलेख ज्ञानवर्धक और उत्साहवर्धक लगे। ***—बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान', गोरखपुर (उ.प्र.)***

'साहित्य अमृत' का स्वाधीनता विशेषांक प्राप्त हुआ। संपादकीय में देश के सभी राज्यों में किए गए स्वतंत्रता संग्राम की चेतना और क्रांतिकारियों के द्वारा किए महान् कार्य का उल्लेख किया है। पूरा एक इतिहास-पटल सामने रख दिया है। जितना कहा जाए थोड़ा ही है, पर एक वाक्य में कहना चाहूँगी कि आपने गागर में सागर भरने का काम किया है। शत-शत प्रणाम स्वीकार करें। आपने जिसे झलकियाँ मात्र कहा है, वे सिर्फ झलकियाँ नहीं वरन् इस ओर निर्देश है कि जो प्रकाश में नहीं आ पाए हैं, असावधानतावश छूट गए हैं, उन पर नवीन रूप से लिखा जाए। शोध छात्र इस दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। यह एक दस्तावेजी अंक है। सभी विद्वानों को मैं प्रणाम करती हूँ।

—विद्या केशव चिटको, नासिक (महा.)

'साहित्य अमृत' का अगस्त अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में आजादी की जद्‌दोजहद और बलिदान की लंबी कहानी को त्रिलोकीनाथजी ने बड़े विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है। अन्य मूर्धन्य लेखकों ने भी इस कार्य में भरपूर योगदान किया है। यह स्वाधीनता अंक एक दस्तावेज है, जिसमें न केवल उक्त काल की जानकारी है, अपितु देश पर मर मिटने की और बलिदान का स्रोत भी है। इसलिए यह अंक पठनीय होने के साथ-साथ संग्रहणीय भी है। रवि शर्मा 'मधुपजी' के भी समाज आभारी हैं कि अपने लेखन द्वारा आजादी की लड़ाई को एक चलचित्र की तरह प्रस्तुत किया है। ***—बी.डी. बजाज, दिल्ली***

'साहित्य अमृत' का स्वाधीनता विशेषांक अपने आवरण पृष्ठ में भरपूर कलात्मकता के साथ पूरा इतिहास दोहरा देता है। संपादकीय गागर में सागर है। माधवराव सप्रे का आलेख भारत के इतिहास पर उठाए गए प्रश्न का सशक्त उत्तर देता हुआ भविष्य में इतिहास लेखन की आवश्यकता को निर्दिष्ट करता है। श्री प्रकाश मनु के आलेख में जिस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम में समान भागीदारी की चर्चा उदारता से की गई है, उसमें मानवता आधार बनकर रेखांकित होती है। श्रीकृष्ण सरल की छोटी बलिदान गाथाएँ देशभक्ति के साथ नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के प्रति त्याग, साहस और शौर्य के साथ प्रतिबद्धता का बहुत बड़ा संदेश देती हैं। हम रशीदा इकबाल के शुक्रगुजार हैं कि उन्होंने अंडमान निकोबार की काला पानी की प्रचलित अवधारणा से पृथक् वहाँ के 'राष्ट्रीय स्मारक' से परिचित कराया। ***—प्रमिला मजेजी, कोरबा (छ.ग.)***

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक मिला। प्रतिस्मृति में जो भी कहानी, लेख आदि छपते हैं, सभी उच्चकोटि के होते हैं। भीष्म साहनीजी की कहानी 'शिष्टाचार' पढ़ी, बहुत अच्छी लगी। व्यंग्य लेखों में 'जन्मदिन का अर्थशास्त्र' श्री बजरंग लाल गुप्ता का व श्री हरीश नवल जी का 'जब बने हर चौराहा गौशाला' व एक और व्यंग्य 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' भी बहुत ही अच्छे लगे। व्यंग्य सामाजिक विकृतियों और दुर्बलताओं का उद्‌घाटन करता है तथा व्यंग्य समकालीन समाज और राजनीति का दर्पण होता है, ऐसा विद्वान् लोगों का कहना है। कहानियों में मैंने शालिनी गोयल की 'वृद्धाश्रम' पढ़ी, जिसमें 'माँजी' को वृद्धाश्रम में रहने के लिए किस प्रकार राजी किया गया, अच्छा लगा। तेलुगु कहानी 'राह', स्पेन की कहानी 'गुलाबी मोती', क्षमा चतुर्वेदी की 'क्षितिज के उस पार' बहुत अच्छी लगीं। श्री अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी का ललित निबंध 'कदंब कहाँ है' बहुत अच्छा लगा। उसको आत्मकथ्य या और क्या नाम दूँ? मृदुला कीर्ति के संस्मरण बहुत ही अच्छे लगे। ***—विनोद शंकर गुप्त, हिसार***

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक बहुत अच्छा, प्रेरक एवं शिक्षाप्रद लगा। आलेख 'भोजपुरी के भारतेंदु : भिखारी ठाकुर' लोक साहित्य में चमकता तारा सा लगा, भगवती प्रसाद द्विवेदी को धन्यवाद। भीष्म साहनी की कहानी 'शिष्टाचार' बहुत अच्छी लगी। लोकमान्य तिलक पर आलेख भी उम्दा लगा। 'कदंब कहाँ है' ललित निबंध पठनीय एवं उम्दा है। पत्रिका की अन्य निबंध, कहानी, कविताएँ भी अच्छी लगीं।

—विजयपाल सेहलांगिया, महेंद्रगढ़ (हरि.)

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय अपने विचारों के कारण भाता है। अंक की छह कहानियों में से पाँच महिला कथाकारों की थीं, जो सभी भावुक कर गईं। रजनी मोरवाल की 'मोगरा महकता रहा' तो बार-बार पढ़ने को जी करता है। अधिकांश घटनाएँ हमारी जिंदगी में वैसी ही घटित हो चुकी हैं, जैसी उसमें हैं। क्षमा चतुर्वेदी की 'क्षितिज के उस पार' अच्छी लगी। भीष्म साहनी की 'शिष्टाचार' के बारे में क्या कहें, कहानी स्वयं बोलती है। काव्य पक्ष काफी समय से कमजोर प्रतीत हो रहा है। मृदुल कीर्ति का आत्मकथ्य आईना दिखा गया कि हम ऐसे क्यों नहीं हो सकते? 'नाम में क्या रखा है' रुला गई। भिखारी ठाकुर पर पढ़कर समझा कि व्यक्तित्व की सरलता क्या होती है। ***—आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर, उज्जैन***

'साहित्य अमृत' का जुलाई अंक देखा। भीष्म साहनी की कहानी 'शिष्टाचार', बजरंग लाल गुप्ता का व्यंग्य 'जन्मदिन का अर्थशास्त्र', शालिनी गोयल की 'वृद्धाश्रम', कविता विकास की कहानी 'नाम में क्या रखा है, अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी का आलेख 'कदंब कहाँ है', रीता गुप्ता की 'शिद्‌दत-ए-एहसास', निर्मल विनोद की कविता 'आह बुरी निर्धन की बच', संजय कृष्ण का 'गाजीपुर में स्वामी विवेकानंद', तन्वी सिंह की कविता 'दर्द बाँट लो', क्षमा चतुर्वेदी की 'क्षितिज के उस पार', रुक्मणी संगल का 'बिताएँ वीरभूमि पर चंद दिन' रुचिकर, प्रेरक और सुखद लगे। भगवती प्रसाद द्विवेदी का 'भोजपुरी के भारतेंदु : भिखारी ठाकुर' एक खोजपूर्ण रचना लगी। सचमुच जिन चीजों में रस मिले, वही काव्य। सभी रचनाकारों को बहुत-बहुत धन्यवाद।

—नंद किशोर तिवारी, मारुति नगर (उ.प्र.)

वर्ग पहेली (१३२)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान–विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० सितंबर, २०१६ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम–पते नवंबर २०१६ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१३०) का शुद्ध हल

१ प्र	ति	२ रो	३ ध	■	४ स	५ प	त्ती	६ क
शं	■	७ च	क्क	८ र	खा	ना	■	म
९ स	१० ब	क	■	व्य	■	११ ह	१२ त्या	रा
१३ नी	ल	■	१४ श	त	१५ क	■	ग	■
१६ य	का	य	क	■	१७ र	सि	क	१८ ता
■	र	■	१९ ल	२० क	वा	■	२१ र	ज
२२ अं	क	२३ क	■	ल	■	२४ ई	ना	म
जा	■	२५ ह	२६ ल	फ	२७ ना	मा	■	ह
२८ म	त	वा	ला	■	२९ द	म	क	ल

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री राजेंद्र कुमार टेलर प्रिंसीपल**
राजकीय उ.मा. विद्यालय
रायपुर पाटन, जिला–सीकर
राजस्थान–३३२७१८

२. **सुश्री श्वेता निगम**
१०४–ए/३१५, रामबाग
कानपुर–२०८०१२ (उ.प्र.)

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई !

वर्ग–पहेली १३० के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं— सर्वश्री ब्रह्मानंद 'खिच्ची', विजयपाल सेहलंगिया, सी.आर. नाहड़िया (महेंद्रगढ़), प्राची रूहिल (जींद), शिवशरण दुबे (कटनी), नीलाक्षी खुराना (बैतूल), सैयद अख्तर हसन (दरभंगा), एम. मोइनुद्दीन (समस्तीपुर), नीरजा शर्मा (अहमदाबाद), देवकीनंदन कांडपाल (अल्मोड़ा), रुक्मणी संगल (पटियाला), कविता जैन, सुभाष शर्मा, दिनकर सहल, निर्मला गुजराती (दिल्ली), शालिग्राम एस. तिवारी, विनीता सहल (मुंबई), गिरधारीलाल अग्रवाल (यवतमाल), रचना वार्ष्णेय (पुणे), मोहन उपाध्याय (अजमेर), राम किशन पंवार (हनुमानगढ़), राजेश्वर प्रसाद मिश्र (इलाहाबाद), ओंकार नाथ मिश्र (लखनऊ), शिवानंद सिंह 'सहयोगी' (मेरठ), योगेंद्र वर्मा व्योम, लीना रस्तोगी (मुरादाबाद)।

बाएँ से दाएँ—

१. वृंदावन के समीप एक गाँव, जो नंद का वासस्थान था (३)
३. सिमटी सी रहना (२, ३)
७. दान करनेवाला (४)
९. नशा (२)
१०. श्रीरामचंद्र (४)
१२. धन देनेवाली (३)
१४. ईख (२)
१५. किसी कार्य को पूरा करने हेतु तैयार होना (३, ३)
१९. लाज रखना (३, ३)
२३. कीमत (२)
२४. जिसमें रस हो (३)
२५. मकान बनानेवाला कारीगर (४)
२७. पिता का पिता (२)
२८. लुटेरा (४)
३०. क्षमा–प्राप्त (५)
३१. अनुमान करना (३)

ऊपर से नीचे—

१. निपट मूर्ख (६)
२. बोझ (३)
३. अपने देश का (२)
४. श्रीकृष्ण के बड़े भाई (४)
५. श्रीराम का सेवक हनुमान (४)
६. आवाज (२)
८. वह स्थान जहाँ बहुत कष्ट हो (३)
११. अपने मनोभावों को अपने में ही रखनेवाला (२)
१३. किसी के हाव–भाव का अनुकरण (३)
१६. किरण (३)
१७. आपत्ति सी आ जाना (२, २, २)
१८. अविनाशी (३)
२०. स्वादिष्ट (४)
२१. पारा (४)
२२. अप्रसन्न (३)
२३. जिस पर दाग लगा हो (२)
२६. उत्पादक (३)
२७. एक चर्म रोग (२)
२९. दूर करनेवाला (२)

वर्ग पहेली (१३१) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१३२)

१		२	■	३	४		५	६
	■	७	८			■	९	
१०	११			■	१२	१३		■
१४		■	१५	१६				१७
	■	१८	■		■		■	
१९	२०		२१		२२	■	२३	
■	२४			■	२५	२६		
२७		■	२८	२९			■	
३०					■	३१		

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

'मेरी इतनी बात सुनो' कृति लोकार्पित

विगत दिनों नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री बलदेवभाई शर्मा की अध्यक्षता में प्रसिद्ध लेखिका गोवा की राज्यपाल श्रीमती मृदुला सिन्हा द्वारा डॉ. देवेंद्र दीपक के कविता-संग्रह 'मेरी इतनी बात सुनो' का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री कमलकिशोर गोयनका, शत्रुघ्न सिन्हा एवं रवि टेकचंदानी ने अपने विचार व्यक्त किए। □

'बालवाटिका' विशेषांक लोकार्पित

९ जुलाई को दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल एनेक्सी हॉल में श्री बालस्वरूप राही की अध्यक्षता में प्रसिद्ध साहित्यकार स्व. श्री आनंदप्रकाश जैन पर आधारित 'बालवाटिका' विशेषांक का लोकार्पण किया गया, जिसमें विशिष्ट अतिथि श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला, साहित्यकार सर्वश्री शेरजंग गर्ग, प्रकाश मनु, दिविक रमेश, सुरेश्वर त्रिपाठी, हरिसिंह पाल, शकुंतला कालरा, वेदमित्र शुक्ल, सुनीता, रेनू चौहान, मंजुरानी जैन, रश्मि गौड़, सुरेंद्रपाल गौड़, मानस गौड़, प्रभाकिरण जैन एवं किशोरकुमार कौशल ने अपने विचार व्यक्त किए। समारोह में आनंदजी की बेटी सुश्री रश्मि गौड़ की चुनिंदा कहानियों के संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' का लोकार्पण भी किया गया। संचालन श्री श्याम सुशील ने किया। □

दो पुस्तकें लोकार्पित

विगत दिनों डॉ. गुरुचरण सिंह के ७३वें जन्मदिवस के अवसर पर उनकी दो पुस्तकों 'समकालीन कविता का सच' और 'नाट्यानुभूति नरेंद्र मोहन के नाटक' का लोकार्पण सर्वश्री रामदरश मिश्र, बलदेव वंशी, नरेंद्र मोहन, प्रेम जनमेजय, सादिक, प्रताप सहगल द्वारा किया गया। □

विमोचन कार्यक्रम संपन्न

विगत दिनों भिलाई नगर में श्री परदेशीराम वर्मा के सातवें कथा-संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' का विमोचन अध्यक्ष डॉ. मुकेश कुमार वर्मा, मुख्य अतिथि डॉ. शिव कुमार पांडे, विशिष्ट अतिथि सर्वश्री रमेश नैयर, सुशील त्रिवेदी, रवि श्रीवास्तव, विनोद साव व मदन कश्यप द्वारा किया गया। जय महाकाल राऊत नाचा पार्टी मुंहरेगा को 'संत पवन दीवान स्मृति सम्मान', मेधावी छात्र शाश्वत बन्छोर एवं योगेंद्र साहू को 'अगासदिया प्रतिभा सम्मान' से सम्मानित किया गया। प्रशस्ति वाचन श्रीमती स्मिता वर्मा एवं श्रीमती प्रतिभा वर्मा ने किया। कार्यक्रम में सुश्री खुशबू वर्मा ने भजन गायन किया। श्री राजेंद्र साहू ने छत्तीसगढ़ महतारी वंदना प्रस्तुत की। संचालन श्री नारायण चंद्राकर ने किया। □

'अकाल में उत्सव' पर संगोष्ठी संपन्न

विगत दिनों भोपाल में श्री महेश कटारे की अध्यक्षता में श्री पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' पर केंद्रित विचार संगोष्ठी में सर्वश्री ब्रजेश राजपूत, राजेश मिश्रा एवं समीर यादव ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर 'अकाल में उत्सव' के दूसरे संस्करण का लोकार्पण भी किया गया। □

डॉ. बानो सरताज सम्मानित

विगत दिनों मुंबई में हिंदी-उर्दू लेखिका डॉ. बानो सरताज को उनकी बाल कृति 'दुनिया कार्टून एवं कॉमिक-कैरेक्टर्स की' के लिए 'सोहनलाल द्विवेदी बाल साहित्य' से सम्मानित किया गया। □

सम्मान समारोह संपन्न

११-२० जून को मुरादाबाद में इनाल्को यूनिवर्सिटी, पेरिस एवं अंतरराष्ट्रीय साहित्य-कला मंच के संयुक्त तत्त्वावधान में 'हिंदी का वैश्विक पर्यावरण' विषय पर आयोजित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में मुख्य वक्ता डॉ. घनश्याम शर्मा 'आचार्य', विशिष्ट अतिथि डॉ. विद्याबिंदु सिंह, डॉ. अजय जनमेजय एवं सर्वश्री हरित जोशी, मारगुरीत ग्रीको, डी.एन. मंतो, एनी कस्तां, रचना शर्मा, फातिमा जीम, जो राम अनियाताना, संगीता, मधु सिसोदिया सहित ६० लोगों ने अपने विचार व्यक्त किए। देश-विदेश में हिंदी के संवर्धन के लिए १९ साहित्यकारों को विशिष्ट सम्मान से सम्मानित किया गया। □

गोइन्का हिंदी साहित्य सम्मान घोषित

कमला गोइन्का फाउंडेशन द्वारा हिंदी साहित्य के लिए घोषित एक लाख रुपए का 'महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य पुरस्कार' (२०१६), वरिष्ठ साहित्यकार विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को उनकी कृति 'अस्ति और भवति' के लिए प्रदान किया जाएगा। वरिष्ठ महिलाओं के लिए इक्यावन हजार रुपए का 'रत्नीदेवी गोइन्का वाग्देवी पुरस्कार' (२०१६) डॉ. कुसुम खेमानी को 'कुछ रेत, कुछ सीपियाँ विचारों की' हेतु दिया जाएगा। इसी अवसर पर डॉ. कमल किशोर गोयनका को 'गोइन्का हिंदी साहित्य सारस्वत सम्मान' से सम्मानित किया जाएगा। □

अमृत महोत्सव संपन्न

विगत दिनों दिल्ली में वरिष्ठ साहित्यकार एवं वैदिक चिंतक डॉ. सुंदरलाल कथूरिया की ७५वीं वर्षगाँठ पर डॉ. रामदरश मिश्र की अध्यक्षता में आयोजित अमृत महोत्सव एवं अभिनंदन समारोह में उनके प्रकाशित ग्रंथ 'साहित्य एवं समाजशास्त्री बोध : विविध आयाम' का लोकार्पण स्वामी आर्यवेश द्वारा किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री पृथ्वीराज साहनी, विजय प्रकाश त्रिपाठी एवं रमानाथ त्रिपाठी ने अपने विचार व्यक्त किए। □

प्रो. अभिराज राजेंद्र मिश्र सम्मानित

२३ जुलाई को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव द्वारा संस्कृत सेवा के लिए शासन के सर्वोच्च संस्कृत-सम्मान विश्वभारती पुरस्कार से उत्तर प्रदेश के भास्वर साहित्य-नक्षत्र प्रो. अभिराज राजेंद्र मिश्र को सम्मानित किया गया। सम्मान स्वरूप उन्हें शॉल, श्रीफल, प्रतीक चिह्न, धातु निर्मित अलंकृत प्रमाण-पत्र तथा पाँच लाख रुपए की राशि भेंट की गई। □

श्रीमती संतोष श्रीवास्तव सम्मानित

१६ जुलाई को मुंबई के मणिबेन नानावटी महाविद्यालय में एक भव्य आयोजन में प्रसिद्ध अभिनेता श्री राजेंद्र गुप्ता ने वरिष्ठ कहानीकार श्रीमती संतोष श्रीवास्तव को हिंदी कहानी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पाने

के उपलक्ष्य में पचास हजार रुपए की राशि और प्रतीक चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया। इस अवसर पर श्री बिभु राउत ने अपने विचार व्यक्त किए। □

सुश्री शुभमश्री सम्मानित

विगत दिनों नई दिल्ली में समकालीन कविता के लिए दिए जानेवाले प्रतिष्ठित 'भारत भूषण अग्रवाल कविता पुरस्कार-२०१६' से युवा कवयित्री सुश्री शुभमश्री को उनकी कविता 'पोयट्री मैनेजमेंट' के लिए सम्मानित किया गया। □

श्री अशोक गुजराती पुरस्कृत

संपादक-द्वय 'अरविंद' एवं 'मंजुश्री' द्वारा मुंबई से प्रकाशित प्रख्यात पत्रिका 'कथाबिंब' द्वारा प्रवर्तित साल भर में छपी साठ-सत्तर कहानियों में से पाठकों के अभिमतों पर आधारित श्रेष्ठ कहानी का चयन कर 'कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१५' जाने-माने साहित्यकार श्री अशोक गुजराती को उनकी कहानी 'भगदड़' के लिए देने की घोषणा की गई। □

काव्य गोष्ठी संपन्न

६ अगस्त पटना के पारिजात साहित्य परिषद् के तत्त्वावधान में डॉ. शंकरदयाल सिंह स्मृति पुस्तकालय कामता सदन के प्रांगण में डॉ. शंकरदयाल सिंह के ज्येष्ठ पुत्र और पत्रकार-फिल्मकार श्री रंजन कुमार सिंह की अध्यक्षता में काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री भगवती प्रसाद द्विवेदी, श्रीकांत व्यास, सिद्धेश्वर, भावना शेखर, आनंद किशोर शास्त्री, हरिशंकर सिंह, रूपेश दिग्विजय, राम उपदेश सिंह विदेह ने कविता-पाठ किया। संचालन श्री संजय कुमार ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री वीरेंद्र कुमार ने किया। □

नवलेखक शिविर आयोजन संपन्न

विगत दिनों हरिद्वार में केंद्रीय हिंदी निदेशालय तथा देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में आठ दिवसीय हिंदीतर भाषी हिंदी नवलेखक शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री कामेश्वर राव, योगेंद्र नाथ शर्मा, सुरेश चंद्र ममगाई, सुशील उपाध्याय, सविता मोहन, ज्ञानेंद्र गौतम, राखी उपाध्याय, राजकुमार उपाध्याय, प्रणव पांड्या, नरेंद्र प्रताप सिंह सहित ३५ नवलेखकों ने अपना योगदान दिया। □

सम्मान समारोह एवं पावस राग कार्यक्रम संपन्न

२२ जुलाई को मुरादाबाद में साहित्यिक संस्था 'अक्षरा' के तत्त्वावधान में नवीन नगर स्थित 'हरसिंगार' भवन में सुप्रसिद्ध नवगीतकार डॉ. माहेश्वर तिवारी के रचनाकर्म के साठ वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर 'सम्मान समारोह एवं पावस राग' कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री यश मालवीय, राजेंद्र गौतम, जयकृष्णराय तुषार, हरिपाल त्यागी एवं ब्रजभूषण सिंह गौतम 'अनुराग' को अंगवस्त्र, मानपत्र, प्रतीक चिह्न, श्रीफल भेंटकर 'माहेश्वर तिवारी नवगीत सृजन सम्मान' से सम्मानित किया गया। संचालन श्री योगेंद्र वर्मा 'व्योम' ने किया तथा आभार श्री समीर तिवारी एवं सुश्री आशा तिवारी ने व्यक्त किया। □

'उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान' के सम्मान घोषित

विगत दिनों लखनऊ में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा श्री उदय प्रताप सिंह की अध्यक्षता में हुई बैठक में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को 'भारत-भारती पुरस्कार' के अंतर्गत पाँच लाख रुपए की राशि देने का निर्णय लिया गया। डॉ. शेरजंग गर्ग को 'हिंदी गौरव सम्मान'; श्री गंगा प्रसाद विमल को 'महात्मा गांधी साहित्य सम्मान'; डॉ. रमानाथ त्रिपाठी को 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय साहित्य सम्मान'; डॉ. दीन मुहम्मद दीन को 'अवंतीबाई साहित्य सम्मान'; हिंदी प्रचार सभा को 'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन सम्मान' देने की घोषणा की गई, प्रत्येक सम्मान में चार लाख रुपए की राशि दी जाएगी। सर्वश्री रवींद्र वर्मा, रमाकांत पांडेय 'अकेले', दिनेश पालीवाल, राजाराम सिंह, महाश्वेता चतुर्वेदी, संजीव, दामोदर दीक्षित, विजय किशोर मानव, राजेंद्र राजन, सुधाकर अदीब को 'साहित्य भूषण सम्मान'; श्री नंद किशोर खन्ना को 'कला भूषण सम्मान'; डॉ. रामानंद शर्मा को 'विद्या भूषण सम्मान'; श्री कालीशंकर को 'विज्ञान भूषण सम्मान', श्रीमती शीला झुनझुनवाला को 'पत्रकारिता भूषण सम्मान'; श्री शेर बहादुर सिंह को 'प्रवासी भारतीय हिंदी भूषण सम्मान'; श्री बाबूलाल शर्मा को 'बाल साहित्य भारती सम्मान'; श्री योगेश मिश्र को 'मधुलिमये साहित्य सम्मान'; श्री अरविंद तिवारी को 'पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी साहित्य सम्मान'; श्री शैलेंद्र कुमार को 'विधि भूषण सम्मान'; श्री कैलाश मड़बैया को 'लोक भूषण सम्मान' स्वरूप दो लाख रुपए की सम्मान-राशि दी जाएगी। सर्वश्री ओम प्रकाश गासो, विश्वास पाटिल, श्याम किशोर सिंह, स्मरप्रिया, मीनाक्षी जोशी, सुब्रह्मण्यम, माधवी एस भंडारी, प्रत्यूष गुलेरी, महाराज कृष्ण शाह, एहतराम इस्लाम, जी.एल. अग्रवाल, रजनीप्रभा, जे. रामचंद्रन नायर, उषाकिरण खान, प्रभुनाथ द्विवेदी को 'सौहार्द सम्मान' तथा श्री रामदेव धुरंधर व श्री आलोक मिश्र को 'हिंदी विदेश प्रसार सम्मान' स्वरूप एक लाख रुपए एवं डॉ. अनिल कुमार त्रिपाठी व प्रो. वसिष्ठ अनूप को 'विश्वविद्यालय स्तरीय सम्मान' स्वरूप पचास हजार रुपए की राशि से सम्मानित किया जाएगा। □

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली स्थित हिंदी भवन में संगीत नाटक अकादेमी के अध्यक्ष श्री शेखर सेन के मुख्य आतिथ्य तथा आचार्य राधागोविंद थोडम व प्रो. चमनलाल सप्रू के विशिष्ट आतिथ्य में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन की १३४वीं जयंती पर पत्रकार पंडित भीमसेन विद्यालंकार की स्मृति में हिंदी भवन द्वारा दिए जानेवाले 'हिंदी रत्न सम्मान' से डॉ. सी.एच. निशान निडतंबा एवं डॉ. बीना बुदकी को मंचस्थ अतिथियों सहित सर्वश्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, रत्ना कौशिक, हरिशंकर बर्मन द्वारा सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें रजत श्रीफल, शॉल, सरस्वती प्रतिमा, प्रशस्ति-पत्र एवं ५१-५१ हजार रुपए की राशि भेंट की गई। संचालन श्रीमती प्रभा जाजू ने किया। □

उद्घाटन समारोह संपन्न

विगत दिनों दिल्ली में डॉ. अभय रंजन की अध्यक्षता में हिंदू कॉलेज की हिंदी नाट्य संस्था 'अभिरंग' का उद्घाटन समारोह आयोजित किया

गया, जिसमें सर्वश्री स्वयं प्रकाश, चंचल सचान, शिवानी शमा, शशि उज्ज्वल गुप्ता, आशुतोष कुमार शुक्ल, पल्लव ने रचना पाठ किया। इस अवसर पर अभिरंग से जुड़े विद्यार्थी श्री त्रिलेख आनंद के असामयिक निधन पर श्रद्धांजलि दी गई। आभार सुश्री पूजा पांचाल ने व्यक्त किया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

१५ अगस्त को नई दिल्ली के मावलंकर सभागार में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्मृति न्यास द्वारा आयोजित समारोह में उनकी कृति 'रश्मिरथी' के माध्यम से 'जाति के आधार पर भेदभाव स्वीकार नहीं' विषय पर सर्वश्री कर्ण सिंह, पद्मा सचदेव, विजय कुमार मल्होत्रा, रामजी सिंह, लीलाधर मंडलोई, रतन कुमार पांडेय, सुभाषचंद्र राय, बी.एन. मिश्रा ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर डॉ. कर्ण सिंह द्वारा पद्म विभूषण कथक सम्राट् पंडित बिरजू महाराज को विश्व सांस्कृतिक समाज की परिकल्पना को साकार रूप देने के लिए 'दिनकर संस्कृति सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें एक लाख ग्यारह हजार रुपए की राशि और रजत-पत्र भेंट किए गए। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री मनजीत सिंह द्वारा रश्मिरथी पर आधारित चित्र प्रदर्शनी लगाई गई। संचालन श्री विनीत चौहान ने किया। ☐

व्याख्यानमाला आयोजित

२३-२४ जुलाई को भोपाल में २३वीं पावस व्याख्यानमाला आयोजित की गई। उद्घाटन सत्र में पद्मश्री प्रो. रमेशचंद्र शाह की अध्यक्षता एवं प्रो. पुष्पेश पंत के मुख्य आतिथ्य में 'हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक बोध' विषय पर विचार व्यक्त किए गए। द्वितीय सत्र में डॉ. चितरंजन मिश्र की अध्यक्षता में सर्वश्री सुधीर कुमार, कुमुद शर्मा, ध्रुव शुक्ल, मनोज पांडेय, स्मृति शुक्ला, शिवदयाल, ललिता त्रिपाठी एवं कृष्णगोपाल मिश्र ने 'समकालीन हिंदी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि' पर अपने विचार व्यक्त किए। सत्र का संचालन श्री नरेंद्र दीपक ने किया। तृतीय सत्र में डॉ. संतोष चौबे की अध्यक्षता में सर्वश्री डी.एन. प्रसाद, शरद सिंह, नीरजा माधव, सूर्यबाला ने 'समकालीन हिंदी उपन्यासों में सामाजिक दृष्टि' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्रीमती शीला मिश्रा ने किया। चतुर्थ सत्र में डॉ. सदानंद गुप्त की अध्यक्षता में सर्वश्री कृष्णगोपाल मिश्र, शंकर शरण, विजेंद्र त्रिपाठी, राधेश्याम शुक्ल ने 'हिंदी निबंध और संस्मरण : दशा और दिशा' विषय पर अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. मैथिली साठे ने किया तथा आभार श्री युगेश शर्मा ने व्यक्त किया। ☐

साहित्यिक क्षति

श्रीमती महाश्वेता देवी नहीं रहीं

२८ जुलाई को प्रख्यात साहित्यकार श्रीमती महाश्वेता देवी का देहांत हो गया। उनका जन्म १४ जनवरी, १९२६ को ढाका (अब बांग्लादेश) के एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। जन-आदिवासी लेखन और जनजातियों की वाचिक परपंरा को पहली परपंरा माननेवाली महाश्वेता देवी ने हमेशा लोक को प्रमुखता दी। वे बांग्ला सहित समस्त भारतीय भाषाओं की प्रिय लेखिका रहीं। 'हजार चौरासी की माँ' और 'अरण्येर अधिकार' सहित विपुल साहित्य की रचना करनेवाली महाश्वेताजी ने लेखन के नए प्रतिमान स्थापित किए। उनको ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य अकादेमी पुरस्कार, रेमन मैग्सेसे तथा पद्म विभूषण अलंकरण सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत किया गया।

श्री नीलाभ अश्क नहीं रहे

२३ जुलाई को महत्त्वपूर्ण कवि, गद्यकार और अनुवादक श्री नीलाभ का निधन हो गया। वे ७२ वर्ष के थे। उनकी साहित्यिक-वैचारिक सक्रियता लगातार बनी हुई थी। उनकी कविताओं के अनेक संग्रहों में प्रमुख हैं—'शब्दों से नाता अटूट है', 'शोक का सुख', 'खतरा अगले मोड़ के उस तरफ है', 'ईश्वर को मोक्ष'। उनका गद्य भी अद्भुत है। एक समय में नीलाभ के संस्मरणों ने हिंदी साहित्य में भीषण उथल-पुथल मचा दी थी। अनुवादक के रूप में उनका योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा।

श्री योगेंद्र कुमार लल्ला नहीं रहे

२४ जुलाई को वरिष्ठ पत्रकार और बाल साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान देनेवाले श्री योगेंद्र कुमार लल्ला का निधन हो गया। सेवानिवृत्त होने के बाद भी वे निरंतर सक्रिय थे और फेसबुक आदि अनेक मंचों पर उनकी उपस्थिति रहती थी। लल्ला उस समय की याद दिलाते थे, जब पत्रकारिता एक मिशन हुआ करती थी।

श्री सत्यनारायण मिश्र नहीं रहे

१ अगस्त को हिंदी साहित्य के वरिष्ठ संपादक, पत्रकार, लेखक श्री सत्यनारायण मिश्र का निधन हो गया। वे ८२ वर्ष के थे। वे बहुमुखी प्रतिभा और शांत स्वभाव के व्यक्ति थे। वे साहित्यिक पत्रिका 'अणुव्रत' और 'नवनीत' के संपादक रहे। धर्मयुग, सरिता, साप्ताहिक हिंदुस्तान, नंदन, दीपशिखा, राम संदेश जैसी अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया। सन् १९६७ में 'जीवन प्रभात' साहित्यिक पत्रिका प्रारंभ की, फिर १९७० में 'जीवन प्रभात प्रकाशन' प्रारंभ किया। उन्होंने अपना सारा जीवन हिंदी साहित्य को समर्पित कर दिया था।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।